प्रकाशकीय निवेदन

जैन समाज के प्रखर ज्योतिर्धर परम पूज्य स्व० श्री जवाहरलालजी महाराज एक युगप्रधान महापुरुष हो चुके हैं। पूज्यश्री का शास्त्रीय चिन्तन गंभीर और तलस्पर्शी था। उनकी प्रतिभा व्यापक थी। वाणी में अद्‌भुत प्रभाव था। साधारण-सी प्रतीत होने वाली घटना का वे विश्लेषण करते तो उसमें अपूर्व रस भर देते थे और उसमें से जीवनोपयोगी अनेक बहुमूल्य सूत्रों का सर्जन कर देते थे।

श्री हितेच्छुश्रावक मंडल रतलाम ने प्रारम्भ में पूज्यश्री का व्याख्यानसाहित्य प्रकाशित करने का शुभ समारंभ किया। तत्पश्चात् भीनासर (बीकानेर) की 'श्रीजवाहरसाहित्यसमिति' ने 'जवाहर-किरणावली' ग्रंथमाला के रूप में प्रारम्भ की। इस ग्रंथमाला ने बहुत-सा व्याख्यानसाहित्य, जो फाइलों में लिखा पड़ा था, प्रकाश में ला दिया और इस साहित्य ने समाज को इतना प्रभावित किया कि आज स्थानकवासी समाज में विभिन्न मुनियों के व्याख्यानों की अच्छी पुस्तक राशि तैयार हो गई है।

मगर उधर हितेच्छु श्रावक मंडल के कार्य में साधु सम्मेलन के नियमों को पालन करने के कारण शिथिलता आ गई जिससे वह पूज्यश्री के साहित्य के प्रकाशन से सर्वथा विरत है। इधर जवाहरसाहित्य समिति भीनासर के कार्यकर्त्ता भी प्रकाशन-कार्य के लिए पहले के समान उत्साहशील नहीं रहे हैं। यह परिस्थिति स्था० जैन समाज के लिए विचारणीय है।

यह परिस्थिति जब मंडल के कार्यकर्त्ताओं के सामने आई तो सदस्यों ने काफी विचार विमर्श किया। और निश्चय किया कि

पूज्यश्री के व्याख्यान-साहित्य के प्रकाशन का कार्य चालू रहना चाहिए।

एवं यह भी निश्चय किया गया कि फिलहाल नवीन साहित्य प्रकाशित करना यद्यपि इस संस्था के सामर्थ्य से बाहर है, तथापि पूर्व प्रकाशित साहित्य का नूतन संस्करण तो करते ही रहना चाहिए, जिससे सीरिज टूटने न पाए। इसी निश्चय के आधार पर श्री जैन जवाहर मित्रमंडल ने यह साहस किया है। जिसके परिणाम स्वरूप 'रामवनगमन' का प्रथम और द्वितीय भाग, जो किरणावली की १४ वीं और १५ वीं किरण है, पुनः प्रकाशन में आ रहा है। प्रथम भाग की पहली आवृत्ति सेठ अजीतमलजी पारख बीकानेर निवासी की ओर से और दूसरा भाग सेठ घेवरचन्दजी सीपाणी उदरामसर (बीकानेर) वालों की ओर से जवाहरसाहित्य समिति ने प्रकाशित की थी। मगर दोनों भाग समाप्त हो चुके थे, अतएव दूसरी आवृत्ति श्री जैन जवाहर मित्र-मंडल को प्रकाशित करनी पड़ी।

दोनों भागों की केवल ५००-५०० प्रतियाँ ही छपाई गई हैं। यद्यपि कम प्रतियाँ छपाना महँगा पड़ता है, परन्तु मण्डल के पास अधिक आर्थिक सुविधा नहीं है।

इससे पहले इस संस्था ने तेरहवीं किरण 'धर्म और धर्मनायक' का प्रकाशन किया है। तथा अन्यान्य पुस्तकों का भी वह प्रकाशन करती रही है। साहित्य के प्रचार में यह सदा अग्रसर रही है। विदेशों में जैन साहित्य भेज कर भी अपने आवश्यक कर्त्तव्य का पालन किया है।

उपाचार्यश्रीजी के गोगोलाव-चातुर्मास के समय, श्रीमती अचरज कुँवर बाई ने अपनी दीक्षा के पुण्य-प्रसंग पर साहित्य

प्रकाशन के हेतु २००) रु० की सहायता प्रदान की थी। इस रकम का इन किरणों के प्रकाशन में सहयोग मिला है। इसके लिए उन्हें अनेकानेक धन्यवाद !

पूज्यश्री के साहित्य प्रेमियों की संख्या कम नहीं है। हम आशा करते हैं कि उनमें से साहित्यप्रेमी सज्जन आगे आएंगे और हमें अपना सहयोग प्रदान करेंगे, जिससे हम पूज्यश्री के साहित्य के प्रचार में पर्याप्त सेवा प्रदान कर सकें।

ता० २६-५-५७

मन्त्री—
श्री जैन जवाहर मित्र मंडल
ब्यावर

: राम-वनगमन :

विषय-प्रवेश

बहुत से लोग अपने जीवन को उन्नत बनाना चाहते है। जिन्हे अपने जीवन की महत्ता का कुछ कुछ भान हो गया है, वे पवित्र जीवन व्यतीत करने की अभिलाषा रखते हैं। मगर सामने कुछ अड़चने आ जाती है। उन अड़चनों में एक बड़ी अड़चन है गृहस्थावस्था। अधिकांश लोग यही सोचते हैं कि हम पवित्र तो बनना चाहते है, मगर गृहस्थी के काम-काज से छुटकारा नहीं पा सकते। और गृहस्थी में रहते हुए ऊँचे किस प्रकार बन सकते हैं?

रामकथा का महत्व

यहाँ जो कथा आरंभ की जा रही है, वह ऐसा सोचने वालों के बड़े काम की है। इस कथा से प्रतीत होगा कि एक गृहस्थ भी किस प्रकार धर्म का ऊँचा आदर्श उपस्थित कर

सकता है ? यह कथा साधुओं के लिये भी उपयोगी है। यह जगत्प्रसिद्ध कथा है। इसमें आए हुए चरित्र लौकिक, धार्मिक राजनीतिक तथा गार्हस्थ्य-किसी भी दृष्टि से देखे जाएँ, लाभ-प्रद ही हैं। योग की दृष्टि से देखने पर योगी भी इससे लाभ उठा सकते हैं।

आज जिस महापुरुष की कथा मैं कहना चाहता हूँ, उस महापुरुष का नाम रामचन्द्र है। राम की कथा विश्वव्यापी है। वह चिरकाल से आर्यजाति को विविध प्रेरणाएँ देती रही है। न जाने कितने कवियों ने रामचन्द्र सरीखा आदर्श पात्र पाकर अपनी कल्पनाशक्ति और प्रतिभा को अमर बनाया है। वास्तव में रामचन्द्र का चरित अद्भुत है। भारतीय साहित्य में अनेकों चरित्र ऐसे विद्यमान हैं, जो भारतीय आर्य जनता की परमोच्च संस्कृति के स्तम्भ हैं और जिनपर आर्य जाति अभिमान कर सकती है। यह लोकोत्तर चरित भारत की अनमोल निधि हैं। इन चरितों की सम्पत्ति के कारण ही भारत का स्थान संसार में सदैव ऊँचा बना रहेगा। किन्तु इन चरितों में भी राम-चरित अनूठा है। रामचन्द्र के जीवन-चरित का पूरी तरह परिचय देना सम्भव नहीं है। अतएव आदि से अन्त तक की कथा कहने का उत्तरदायित्व न लेकर बीच का ही कुछ भाग कहना चाहता हूँ। उस पर जो विचार करेगा, अवश्य ही कल्याण का भागी बनेगा।

राम का विवाह

रामचन्द्रजी, सीता को व्याह कर दशरथ आदि के साथ घर लौट आए। राम का विवाह होने से अवधवासियों के हर्ष का पार न रहा। पहले वे यह सोचते थे कि राम जैसे दिव्य और उत्कृष्ट महापुरुष के अनुरूप कन्या कहाँ मिल सकेगी, जो राम की ज्योति को अधिक जाज्वल्यमान कर सके! लेकिन सीता सरीखी सुयोग्य कन्या मिल जाने से लोगों की यह चिन्ता दूर हो गई।

क्या स्त्री, पुरुष को ऊँचा उठाती है? क्या पत्नी, पति की ज्योति चमकाती है? आजकल लोग स्त्री की निन्दा करते हैं, लेकिन नीति में कहा है—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते यत्र देवताः।

जहाँ स्त्रियो की कद्र की जाती है वहाँ दिव्य शक्ति से संपन्न पुरुषों का जन्म होता है। जिस समाज में स्त्रियाँ शक्तिशालिनी होती हैं, उसके उत्थान में देर नहीं लगती। जो काम पुरुष के बूते से बाहर होता है, जिस काम के लिए पुरुष की शक्ति कुंठित हो जाती है, उसका मार्ग स्त्रियां सहज ही सरल बना देती हैं। व्यावहारिक और आध्यात्मिक-दोनों प्रकार की शक्तियाँ उनमें मौजूद हैं।

सीता के साथ राम का विवाह होने से अवधवासी बहुत प्रसन्न हुए। सोचने लगे-अब तक राम आधे ही थे। उन्हे पूरा

बनाने के लिए विवाह होने की आवश्यकता थी। उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए राम को जगज्जननी देवी या शक्ति-कुछ भी कहा जाय, कन्या मिली है। यह कन्या ऐसी है कि राम को पूरा राम भी बना देगी और स्त्रियों के लिए आदर्श भी होगी। अब तक अकेले राम थे। सीता नहीं थी। अब दोनों का संयोग हुआ है। अतएव अब सब के सभी मनोरथ पूरे होंगे।

विवाह तो बहुत लोग करते हैं, मगर क्या वे सब विवाह का असली उद्देश्य समझ भी पाते हैं? क्या उन्हें विवाह के उत्तरदायित्व का पता होता भी है ?

कन्या का कर्त्तव्य है कि वह वधू बनकर आने के बाद यह देखे कि मेरे आने से पहले ससुर का घर कैसा था। और मैंने आकर उसमें क्या परिवर्त्तन किया है? मेरे आने से इस घर मे भीतरी और बाहरी क्या सुधार हुआ है? मेरे आने से पहले क्या अच्छाई नहीं थी जो अब उत्पन्न हो गई है? सीता ने किस खूबी के साथ अपने इस कर्त्तव्य का पालन किया, यह बात उसके चरित्र से विदित हो जायगी।

अवधवासी कहने लगे-अयोध्या में सीता क्या आई, जैसे लक्ष्मी की बाढ़ आई है! शास्त्र में चौदह राजू कहे हैं। पुराणों में चौदह भुवन बतलाये गए है और कुरान में चौदह तब तक का उल्लेख है। नाम कुछ भी हो पर चौदह की संख्या सभी को मान्य है। यह चौदह राजू-लोक मानों जनक के यहां पहाड़

बन गये हैं और सब शक्तियां बादल बन गई हैं। पहाड़ का काम बादलों को खींचकर पानी बरसाना है। मानो जनक पहाड़ बन कर समस्त शक्ति रूपी मेघो का संग्रह करके महान् शक्ति रूपी पानी बरसाने लगे। पहाड मेघो को अपनी ओर खींचता है. पानी बरसाता है, पर अपने ऊपर बरसे हुए पानी को नदियों के द्वारा बाहर निकाल देता है; जिससे सैकड़ों कोस की दूरी पर भी जल की सुविधा होजाती है। नदियों का पानी अन्ततः समुद्र में जा मिलता है। और फिर मानसून बन कर बरसता है। सृष्टि का ऐसा क्रम है।

अवधवासियों की मान्यता है कि जैसे अयोध्या समुद्र बन गई और सीता रूपी नदी इस समुद्र में मिलने आई है। सीता रूपी नदी पहाड़ से यहां आई है। जनक रूपी पहाड़ पर बहुत-सा सम्पत्ति रूपी जल इकट्ठा होगया था। वही जल सीता रूपी नदी के द्वारा अयोध्या सागर मे मिलने आया है अब तक सीता रूपी नदी किसी समुद्र की प्रतीक्षा मे थी। राम रूपी मार्ग मिल जाने से वह अयोध्या आ पहुँची है।

सीता अयोध्या में क्या आई, उसने अयोध्या के निवासियों को जैसे माणिक मोती बना दिया। मानो पत्थर कोई नहीं रह गया। महाराज दशरथ मंदराचल पर्वत की भांति सुशोभित होने लगे।

पुराणों की बहुत-सी बातें आलंकारिक भाषा में लिखी गई

हैं। उनका ठीक-ठीक मर्म समझने के लिए अलंकारों का पर्दा हटाने की आवश्यकता होती है। अलंकारों का पर्दा हटा कर सत्य को समझने का प्रयत्न करने वाले ही उनकी वास्तविकता को समझ पाते हैं। इससे विपरीत जो ऊपर-ऊपर से ही पुराणों को देखते हैं उनकी दृष्टि सम्यक् नहीं होती और उन्हें पुराणों के कथन झूठे मालूम होते हैं। सम्यग्दृष्टि ही पुराणों की यथार्थता समझ पाते हैं। पुराण का एक कथन है कि मंदराचल पर्वत को समुद्र में डाल कर समुद्र मथा गया था।

मानो अयोध्या रूपी समुद्र मे दशरथ मंदराचल के समान हैं और समुद्र को मथने मे राम और सीता दशरथ की सहायता कर रहे हैं। सीता और राम, दशरथ रूपी मथानी को किस प्रकार घुमाते हैं और किस प्रकार उस मंथन से रत्न उत्पन्न होते हैं, यह बात इस कथा से मालूम होगी।

आज लोगों में ऐसा आलस्य घुस गया है कि उनके लिए संसार रूपी समुद्र को मथना कठिन हो रहा है। और ना-समझी इतनी अधिक फैली है कि कोई दूसरा उसे मथ कर और अमृत निकाल कर लोगों के मुँह मे देता है तो उसे भी गले न उतार कर वे जहर पी रहे हैं। धर्मध्यान अमृत के समान है और बाजारू बातें ज़हर के समान हैं। फिर भी लोग अमृत न पीकर जहर पी रहे हैं। जीवन को निकम्मा बनाने वाले काम बिना ही उपदेश के बल्कि मना करने पर

भी करते हैं और धर्म की बातों पर उपदेश देने पर भी कान नहीं देते।

संसार रूपी समुद्र मथने में दशरथ रूपी मंदराचल को कष्ट उठाना होगा। राम और सीता को भी परीक्षा देनी होगी। मथनी हिलाये विना मक्खन खाने को नहीं मिलता। मगर लोग तो सीधा बाजार से लेकर खाने में पाप का टल जाना मान बैठे हैं। लोग समझते हैं कि बाजार से खरीदकर खा लिया तो आरम्भ समारंभ के पाप से छुटकारा पा लिया। सीधा खाने से पाप टल जाने के भ्रमपूर्ण विचार ने ऐसी-ऐसी बुराइयाँ पैदा कर दी हैं कि कुछ कहा नहीं जा सकता। इस मिथ्या धारणा ने बहुतों का धर्म भी बिगाड़ा है और स्वास्थ्य को भी चौपट कर दिया है।

सीधा खाने से पाप टल जाना मानने वाले लोगों के समक्ष एक प्रश्न उपस्थित किया जा सकता है। इस प्रश्न पर उन्हें प्रामाणिकता के साथ विचार करना चाहिए। कल्पना कीजिए, एक आदमी सीधी वस्तु के उपभोग से पाप का टल जाना मानता है। वह कहता है कि सांसारिक प्रवृत्ति जितनी कम हो और पाप जितना कम लगे, उतना ही अच्छा है। ऐसी स्थिति में अगर मैं अपना विवाह करता हूँ तो बहुत आरंभ समारंभ होगा। औरत तथा बाल-बच्चों को खिलाने पिलाने आदि के लिए बहुत-सी प्रवृत्तियाँ करनी पड़ेगी। इतना ही नहीं, विवाह से जो संतान-परम्परा चालू होगी, उसकी भांति-

भांति की प्रवृत्तियों का निमित्त भी मैं ही बनूंगा। इस प्रकार विवाह करने से लम्बी आरंभ-परम्परा चल पड़ेगी जिसका अन्त कौन जाने कब होगा या नहीं भी होगा। ब्रह्मचर्य पालने की मुझ में शक्ति नहीं है। ऐसी स्थिति मे क्या करना चाहिए ? बस, यही मार्ग धर्म के अनुकूल हो सकता है कि वैश्या को पैसे देकर अपनी काम वासना तृप्त कर लूँ। उसके बाद न कोई आरंभ न कोई समारंभ। वेश्या मरे या जीए, मुझे कोई मतलब नहीं!

क्या सीधी वस्तु के उपभोग से कम पाप मानने वाले इस मनुष्य के उपर्युक्त विचार का समर्थन करेंगे ? कोई भी समझदार ऐसे निन्दनीय विचार का समर्थन नहीं कर सकता। जिसमें तनिक भी विवेक है वह तो यही कहेगा कि ऐसा सोचने वाला व्यक्ति धर्म के नाम पर पाप का सेवन करना चाहता है और धर्म की ओट में आलस्यमय जीवन बिताने का इच्छुक है।

इसी प्रकार जो यह सोचता है 'दूध तो अवश्य चाहिए। दूध के बिना काम नहीं चलता। मगर गाय-भैंस रक्खी जाए तो उसे हरा घास भी खिलाना पड़ेगा। पानी पिलाना पड़ेगा। गाय-भैंस का गोबर भी होगा और उसमें कीड़े भी पड़ेंगे। इस तरह बहुत पाप लगेगा। इसके अतिरिक्त गाय-भैंस की सेवा में बहुत-सा समय लग जाएगा तो धर्मध्यान में विघ्न होगा। इसलिए पैसे देकर बाजार से सीधा दूध खरीद लेना

ही अच्छा है। क्या यह विचार ठीक कहा जा सकता है? पहले आदमी के कथन को आप निःसंकोच होकर गलत कह देते हैं मगर इसके विचार को गलत कहने मे आपको क्या कुछ संकोच है? मगर यह मत भूल जाओ कि सीधा दूध खाने वाले आलसियों की बदौलत हजारो लाखों गायें और भैंसे कसाई के हाथ लगती है और उनके गले पर छुरी चलाई जाती है। अकेले वम्बई शहर में ही प्रतिवर्ष हजारो गायों-भैंसों का कत्ल होता है। पहाड-सी भैंसे और गायें जब तक खूब दूध देती है तब तक घोसी लोग उन्हे रखते है और जब दूध कम देने लगती हैं तो उन्हे कसाई के हवाले कर देते हैं। शहरो मे उन्हे रखने या खिलाने की गुँजाइश कहाँ? अगर लोग सीधा दूध खाने का गलत ख्याल छोड़ दे और यह निश्चय कर लें कि हम पशु का पालन-पोषण करके ही उसका दूध ग्रहण करेंगे तो इतनी पशुहत्या क्यो हो? दूध बेचने वाले लोग पशुओं की परवाह नहीं करते। उनकी दृष्टि तो पैसों पर रहती है। पशु मरे या जीए, इससे उन्हे मतलब नहीं, देश के पशुधन के नष्ट हो जाने से उन्हे सरोकार नहीं, फलस्वरूप देश की प्रजा सत्वहीन, निर्बल, रुग्ण और अल्पायु होगी, इसकी उन्हे चिन्ता नहीं। उन्हे पैसा चाहिए, देश के बनाव-बिगाड़ की फिक्र उन्हें नहीं है। ऐसी हालत में जो लोग सीधा दूध खाने मे ही भलाई समझते हैं, वे परोक्ष रूप में घोर पाप का समर्थन करते हैं।

सच्चा श्रावक पशु की रक्षा करके ही दूध प्राप्त करेगा। अतएव अपनी भ्रमपूर्ण धारणा को हटाओ। सीधा खाने की बात चित्त से निकाल दो। आलस्यमय जीवन मिटाने के लिए श्रीकृष्ण गोपाल बने थे सीधी चीज खाने से पाप घुस रहा है। सीता और राम के चरित को देखो, उन्होंने क्या किया उन्होंने गृहस्थाश्रम का मथन करके जो मक्खन निकाला है, आप उसका उपयोग करके आनन्द प्राप्त कर सकते हैं।

अब प्रकृत विषय पर आइए। राम का विवाह हो गया। राम जैसे महापुरुष और सीता सरीखी सती को विवाह करने की आवश्यकता नहीं थी। वे इतने संयत और समर्थ थे कि ब्रह्मचर्य का आदर्श उपस्थित कर सकते थे। वे विषयभोग के कीड़े नहीं थे। विवाह की उन्हें कामना नहीं थी। विवाह करके भी उन्होंने कष्ट ही उठाया। लेकिन, जान पड़ता है, राम-सीता ने लग्नविधि और पति-पत्नीधर्म को समझाने के लिए ही विवाह किया।

कुछ लोगों का कहना है कि लक्ष्मण कुँवारे ही रहे, पर ऐसी बात नहीं है। जैन रामायण के कथनानुसार तो लक्ष्मण का विवाह हुआ ही था, पर तुलसीदासजी की रामायण के अनुसार भी सीता की बहिन उर्मिला के साथ लक्ष्मण का विवाह होना सिद्ध है। भरत और शत्रुघ्न का विवाह भी जनक के भाई आदि की कन्याओं से हुआ था।

महाराज दशरथ का गृहस्थसुख

राजा दशरथ के चारों लड़के विवाहित हो गए। उस समय दशरथ को कितना हर्ष हुआ होगा ? चार दिग्गजों सरीखे या मेरुपर्वत के चार गजदन्तों सरीखे या चार लोकपालों के समान जिसके चार शक्तिशाली पुत्र हों, उस राजा दशरथ के हर्ष का क्या ठिकाना है ? चारों पुत्र चार मंत्रियों का सा काम दे रहे हैं। चारों पुत्र और उनकी चारों पत्नियां इस प्रकार व्यवहार कर रही हैं जैसे पति-पत्नि में आगे बढ़ने की होड़ लग रही हो। इस प्रशस्त वायुमंडल में राजा दशरथ के यहां आनन्द की सीमा नहीं है। चहुं ओर महाराज दशरथ का यश फैल रहा है। सर्वत्र उनकी प्रशंसा सुन पड़ती है। एक मुँह से सभी कहते हैं-दशरथ-सा भाग्यशाली कौन होगा जिनके चार पुत्र और वे भी रामचन्द्र जैसे !

कोई कहता है-राम का भरत-सा भाई न होता तो राम की ऐसी शोभा न होती। राम बड़े तो है ही, फिर भी भरत में राम की अपेक्षा कोई कला कम नहीं है। भरत जैसे राम का ही दूसरा अवतार या प्रतिबिम्ब है।

दूसरा कहता-हम तो लक्ष्मण और शत्रुघ्न की जोड़ी खूब मानते हैं ! और भरत को तो कहना ही क्या है ! हमारी समझ में राम तो केवल कलेवर हैं। शक्ति तो इन्हीं तीनों भाइयों की है।

कोई कहता-शत्रुघ्न है तो सबसे छोटा, मगर राम उसका कितना आदर करते हैं! राम उससे सलाह लिये बिना कोई काम नहीं करते। छोटा बनने में, सचमुच बड़ा आनन्द है। छोटे को सभी बड़ों के स्नेह की अतुल सम्पत्ति मिलती है।

लोग बड़ा बनना चाहते हैं। छोटा होना कोई पसन्द नहीं करता। पर वे यह नहीं देखते कि बड़े का बड़प्पन किस पर टिका है? बड़े का बड़प्पन छोटे के छुटपन पर टिका है या बड़ा आप ही बड़ा बन गया है? एक पर एक लगाने से ग्यारह हो जाते हैं अर्थात् दस गुनी वृद्धि हो जाती है। अब अगर पहला एक अकेला ही रहना चाहे और दूसरे एक को न रहने दे तो वह एक ही रह जाएगा। उसकी दस गुनी वृद्धि नष्ट हो जाएगी। इसी प्रकार जो बड़ा बनकर छोटे को नष्ट कर देना चाहता है-छोटे को भुला डालना चाहता है, उसका बड़प्पन कायम नहीं रह सकता। उसकी शक्ति का ह्रास हुए बिना रह नहीं सकता। इससे विषमता भी फैलेगी, संघर्ष भी होगा, अशांति की आग भी भड़क उठेगी और दुःख का दावानल भी सुलग उठेगा। अगर बड़े और छोटे, एक दूसरे की सुख-सुविधा का खयाल रखकर चलेंगे तो आनन्द होगा और विषमता का विष नहीं व्यापेगा। एक और एक ग्यारह तभी होते हैं जब दोनो समश्रेणी में हों। अगर दोनो में ऊँचाई-निचाई हो तो उनका योग ग्यारह नहीं होगा। इसी

प्रकार मानव—समाज में जब ऊँच—नीच का भेद मिटेगा, सब समान रूप से मिलकर रहेंगे तभी समाज की शक्ति बढेगी। इसी में सब की शोभा है। बड़ों को राम का आदर्श अपनाना चाहिए। राम अपने छोटे भाइयों से किस प्रकार हिल-मिल-कर रहते थे? दशरथ के घर से प्रजाजनो को एकता का ज्व-लंत और जीवित पाठ सीखने को मिलता था। यह पाठ सीख-कर लोग छोटे-बड़े का भेद भूल-से गये थे। बड़े, छोटों पर अत्यधिक कृपा रखते थे।

बाप बड़ा और बेटा छोटा होता है पर बाप स्वयं गहने पहनता है या बेटे को पहनाता है? बाप स्वयं गहने न पहनकर प्रसन्नता का अनुभव करता है। गहने पहनाकर वह बेटे की गर्दन नहीं कटवाता वरन् उसकी रक्षा का उत्तरदा-यित्व भी अपने ऊपर लेता है। सारांश यह है कि जो बड़ा बनता है वह छोटो की सुख—सुविधा का पहले विचार करता है और उसकी रक्षा के लिए जिम्मेवार बनता है। असल में बड़ा वही है जो छोटों की रक्षा के लिए ही अपने बड़प्पन का उपभोग करता है और उनकी रक्षा में ही अपने बड़प्पन की सार्थकता समझता है। जो छोटों की रक्षा के लिए अपने बड़प्पन का बिना किसी हिचकिचाहट के त्याग नहीं कर सकता वह बड़ा नही कहा जा सकता। बड़प्पन छोटों के प्रति एक प्रकार का बड़ा उत्तरदायित्व है जो स्वेच्छा से

स्वीकार किया जाता है। बड़प्पन सुख-सुविधा के उपभोग में नहीं, उसके त्याग मे है। छोटों को गिराने में नहीं उठाने मे है।

राम बड़े थे पर अपना बड़प्पन निभाने के लिये क्या करते थे? और आप बड़े होकर छोटो के लिए क्या करते हैं? जरा तुलना करके देखो। बड़े छोटों की गर्दन काटने के लिए नहीं होते। राम के चरित का अनुसरण करो। राम और रामायण घर—घर मे, यहाँ तक कि घट—घट में मौजूद होगी फिर भी लोग राम—विहीन हो रहे हैं। राम का सच्चा स्वरूप पहचानने के लिए हृदय से छोटो के प्रति दुर्भावना निकालनी होगी।

अवधवासी कोई किसी की और कोई किसी भाई की प्रशंसा करते हैं। कोई दशरथ की प्रशंसा करता है। मगर तारीफ़ यह है कि एक की प्रशंसा मानों सभी की प्रशंसा है। जैसे उनके हृदय अभिन्न हैं, वैसे ही उनकी प्रशंसा भी अभिन्न है। दशरथ के लिए कवि कहते हैं—

मंगलमूल राम सुत जासू
जो कुछ कहिय थोर सब तासू।

जिनके पुत्र मंगलमूल राम हैं, उनकी महिमा में जो कुछ कहा जाए, कम ही है जितनी उपमा दी जाय कम ही है।

एक पुरुष के पास चिन्तामणी हो और दूसरा पुरुष उसकी प्रशंसा करे तो प्रशसा की वाणी चिन्तामणि की समता कैसे कर सकती है। इसी भांति जगत् का कल्याण करने वाले रामचन्द्र जिनके घर में वसते हैं उन दशरथ की महिमा इन्द्र भी कैसे गा सकता है ?

राजा दशरथ के दिन आनन्दपूर्वक व्यतीत हो रहे थे। आप सोचते होंगे कि आनन्द के दिन जैसे के तैसे बने रहें तो अच्छा है। आपको इसी में मंगल दिखाई देता है लेकिन ऐसा होता तो रामायण ही न बनती। यह तुच्छ बुद्धि का फल है कि जरा-सी संपत्ति मिली और कहने लगे कि हे-प्रभो ! यह संपत्ति ऐसी ही वनी रहे। लोग नही सोचते कि इस जरा-सी संपत्ति मे क्या विशेषता है ? विशेषता तो तब है जब इस सपत्ति के द्वारा मुझमे नवीन क्रांति जाग उठे। मंदराचल पर्वत अगर स्थिर बना रहता तो समुद्र में से रत्न न निकलते। इसी प्रकार दशरथ अगर इसी सम्पदा को छाती से लगाये बैठे रहते तो संसार को वह रत्न न मिलते जो मिले हैं। मटकी में दही तभी तक वना रहता है जब तक उसमें मथानी नहीं फिरती। कोई स्त्री मटकी में दही डालकर और मथानी वगल में रख कर कहने लगे कि दही ऐसा ही बना रहे, तो फिर मक्खन कैसे निकलेगा ? इसी प्रकार अगर दशरथ का वह आनन्द ज्यो का त्यो वना रहता तो वह

अमृत कैसे निकलता, जिसने उन्हें अमृत बना दिया है! मक्खन निकालने के लिए दही को मथना ही पड़ता है।

दही जमा न हो और उसे मथ दिया जाय तो मक्खन नहीं निकलता। इसके अनुसार राजा दशरथ की अब तक की समस्त सम्पदा दही जमने के समान है। अब देखना है कि उस दही में से मक्खन कैसे निकलता है?

जहाँ से यह कथा आरंभ की जा रही है, वह जैन रामायण का तो वनवास की तैयारी का प्रकरण समझिए। और तुलसी-रामायण का अयोध्याकाण्ड समझिए।

कथा का प्रारंभ

मंगलाचरण

प्रसन्नतां या न गताऽभिषेकत-
स्तथा न मम्ले वनवासदुःखितः ।
मुखाम्बुजश्री रघुनन्दनस्य मे,
सदाऽस्तु तन्मञ्जुलमङ्गलप्रदम् ॥

यह तुलसीदास का किया हुआ मंगल है। वे कहते हैं कि रामायण तो फिर समझाएंगे, पहले यह समझ लो कि उस मंथन में से क्या निकला ? उस मंथन से समभाव निकला ! अर्थात प्रत्येक दशा में मनुष्य को समभाव रखना चाहिए, यह शिक्षामृत उस मंथन से निकला है।

लोग कहते हैं-'यों तो समता रखते हैं परन्तु संसार के काम में जब गड़बड़ हो जाती है तो समता नहीं रहती।' मगर उन्हें सोचना चाहिए कि समता की आवश्यकता तो तभी है जब संसार के काम में गड़बड़ हो जाए। गड़बड़ न होने की हालत में तो समता की आवश्यकता नहीं है। समता का उपदेश

तो विकट प्रसंग के लिए ही है। शस्त्र वही काम का कहलाता है जो वक्त पर काम आवे। जो शस्त्र आवश्यकता के समय बेकार साबित होता है, वह शस्त्र, शस्त्र ही क्या? इसी प्रकार विषमता के कारण उपस्थित होने पर भी विषमता न पैदा होना समता रहना ही सच्ची समता है। कहावत है—

सब ही बाजे लश्करी, सब ही लश्कर जाय।
शैल धमाका जो सहे, सो जागीरी खाय॥

हथियार बांधकर स्त्रियों में घूमना और बात है और रणभूमि में जाकर जूझना और बात है। अब आप सोच लें कि आपको कैसा वीर बनना है!

रामायण के दोहन से जो अमृत निकलेगा, उसे कवि पहले ही सब के सामने रख देते हैं। वह कहते हैं कि हमें उस अमृत की पूजा करनी है।

राम को राज्य देने की तैयारियाँ हो रही हैं। राम को जब मालूम हुआ कि मुझे राज्य मिलने वाला है; तब भी उन्हें न प्रसन्नता हुई, न उत्सुकता ही। अनुकूल या प्रतिकूल घटना घटने पर हर्ष या विषाद न होना ही समता है। राम को राजा होने की प्रसन्नता नहीं हुई, यह राम जैसे महापुरुषों से ही बन सकता है। इतना ही नहीं, जिस मुहूर्त्त में राजा बनना था, उसी मुहूर्त्त में वनवासी बनना पड़ा, फिर भी इसका उन्हें दुःख नहीं हुआ। जब थाली में

अमृत परोसा जाने की आशा हो, तब अमृत के बदले अगर विष परोस दिया जाय तो दु:ख होना स्वाभाविक है या नहीं ? उस समय मुँह कुम्हला जाएगा या नहीं ? लेकिन राम साधारण मानव नहीं थे। साधारण जन जिसे स्वाभाविक समझते हैं, उस स्वाभाविकता पर विजय प्राप्त कर लेने वाले पुरुष ही संसार में असाधारण कहलाते है। राम को न राज्य-प्राप्ति का आनन्द है और न वनवास का दु:ख ही है राम वह अथाह सागर हैं जिसे वायु का साधारण झौंका क्षुब्ध नहीं बना सकता। राम की मुखश्री न राज्य-प्राप्ति की कल्पना से हर्षित हुई और न वनवास की तैयारी से कुम्हलाई। तुलसीदासजी कहते हैं—प्रभो ! मै हाथ जोड़कर यही मांगता हूं कि आपकी वह मुखश्री सदा सुन्दर और मंगल प्रदान करने वाली हो।

मित्रो ! अगर आप भी राम की मुख लक्ष्मी मानते हो तो समता धारण करो। समभाव का अभ्यास करने के लिए ही सामायिक है। अतएव शत्रु मित्र पर समभाव रक्खो। संपद्-विपद् में हिम्मत रखकर राम को याद रखो। ऐसे अवसर पर यही सोचो कि इससे भी मक्खन ही निकलेगा। इस प्रकार समताभाव सदैव कल्याणकारी होता है।

राजा दशरथ के यहाँ सभी सुख मौजूद है। स्वर्ग और पाताल में भी राजा दशरथ की प्रशंसा होने लगी। जिनके राम

लक्ष्मण, भरत, और शत्रुघ्न सरीखे चार पुत्र हैं, उनका यश कौन नहीं गाएगा ?

मैंने पहले कहा था कि अयोध्या का मथन दशरथ रूपी मंदराचल से होगा श्री मैथिलीशरण गुप्त ने बुद्ध के विषय में जो कविता लिखी है, उसका इस कथन के साथ मिलान किया जाय तो मालूम होता है, जैसे उनकी कविता दशरथ को लक्ष्य करके ही लिखी गई हो ! वह कविता अकेले दशरथ पर ही नहीं, वरन् प्रत्येक आत्मा पर घटित हो सकती है ।

घूम रहा है कैसा चक्र ।
वह नवनीत कहा जाता है,
रह जाता है तक्र ।
घूम रहा है कैसा चक्र ।
पिसे पड़े हो इसमें जब तक,
क्या अन्तर आया है अब तक,
सहें अन्ततोगत्वा कब तक,
हम इसकी गति वक्र ।
घूम रहा है कैसा चक्र ।
कैसे परित्राण हम पावें,
किन देवों को रोवें-गावें,
पहले अपनी कुशल मनावें,
वे सारे सुर शक्र,
घूम रहा है कैसा चक्र ।

बाहर से क्या जोडूं जाडूं,
मैं अपना ही पल्ला झाडूं,
तब हूँ जब वे दांत उखाडूं,
रह भव-सागर नक्र।
घूम रहा कैसा चक्र।

इसमें वृद्ध के भावों का वर्णन है और मैं राम की कथा सुना रहा हूँ। पर यह कथा राम की ही कथा नहीं, दूसरे शब्दों में आत्मा की कथा और तीसरे शब्दों में आपके घर में नित्य होने वाली घटनाओं की कथा है। एक बहिन छाछ कर रही है। वह खूब हाथ-पैर हिला रही है। पूरी शक्ति लगा रही है। दही मथा जा रहा है। लेकिन उसका पति, जो दही का मथना देख रहा है, दुःख से व्याकुल हो रहा है। वह कहता है, यह चक्र कब तक घूमता रहेगा ? इतना समय हो गया है, बच्चे भूखे हैं और यह मथानी घुमाने में ही लगी है ! यह कहकर वह मटकी में देखने लगा और कहने लगा-तुझे दही मथते इतनी देर हो गई, फिर भी नवनीत नहीं निकला। वह कहाँ चला गया ? इस मटकी में तो छाछ ही छाछ है।

अगर आपके घर यह बनाव बन जाए तो आपको चिन्ता होगी या नहीं ? उस पुरुष ने या आप ने जिस मथानी की गति को देखकर चिन्ता की, उसी प्रकार ज्ञानी जन सारे संसार की चिन्ता करते हैं। वे सोचते हैं-यह संसारचक्र आखिर

कब तक घूमा करेगा।

बुद्धि घूमती है, उछल-कूद मचाती है और कुछ न कुछ करती ही रहती है, लेकिन उससे पूछो कि मक्खन मिलता है या छाछ ही छाछ पल्ले पड़नी है ?

जठर में जन्म लिया है, कष्ट सहे हैं; वहां का मल-मूत्र सहन किया है और बड़ी कठिनाई उठाकर बाहर निकले हैं। फिर भी आत्मतत्त्व रूपी मक्खन हाथ नहीं आया। बालकपन खेल में खो दिया। कुछ बड़े हुए तो पाठशाला में गए और पढ़कर कुछ होशियार हो गए। बुद्धि को खूब दौड़ाया, खूब जोर लगाया परन्तु मक्खन हाथ न आया। केवल छाछ हाथ लगी। जीवन तो छाछ से भी रह सकता है, मगर जिन्हे शरीर की पुष्टि चाहिए, उन्हें वह छाछ से नहीं मिल सकती। पुष्टि के लिए तो मक्खन ही चाहिए। इतनी दौड़ धूप करते हो सो जीवित तो हो, पर ज्ञानी कहते हैं कि मक्खन हाथ नहीं आया। छाछ ही हाथ आई है। अतएव देखना चाहिए कि जीवन का तत्त्व कहां जा रहा है ? दो पैसे गुम जाने का तो रंज होता है मगर समग्र जीवन बीता जा रहा है इसकी कोई चिन्ता ही नहीं है।

कवि ने आगे कहा है—जब तक इस चक्र में पड़े हो, पिसते रहो। हाथ क्या आया ? शरीर दगा दे गया। इन्द्रियाँ शिथिल होने लगी। अब मक्खन न मिलने का विचार आया

है। केवल छाछ पीकर कब तक जीते रहोगे ? जैसे पहिले चौरासी लाख योनियों में भटकते रहे हो, वैसे अब कब तक भटकते रहोगे ? जीने को तो कुत्ता-बिल्ली भी जीते हैं; पर इस तरह का जीना क्या मक्खन पाना है ?

मक्खन किस प्रकार निकलता है, यह बात रामायण से समझो। क्या आप मक्खन लेने की इच्छा करते हैं ?

कवि का कथन है कि वक्र गति वालो ने संसार में कितनी बार जन्म लिया और कितनी बार मौत के शिकार बने; फिर भी क्या इसी मे पड़ा रहना है ?

कवि कहते हैः-संसार की गति टेढ़ी है। इसमें जन्म-मरण के अनन्त दुःख हैं। हम किसकी शरण ग्रहण करें, जिससे हमारा जन्म-मरण मिटे और मक्खन हाथ लगे ? जिस मनुष्य-जन्म के लिये देव भी तरसते हैं, वह हमारा जन्म निरर्थक जा रहा है। किस देव की शरण जाकर हम इसकी रक्षा करें ? किस देव के आगे जाकर अपना दुखड़ा रोवें ? जो देव और इन्द्र पहले अपनी ही कुशल चाहते हैं, वे हमारी क्या रक्षा कर सकेंगे ? वे तो स्वयं छाछ के पीछे पड़े हुए हैं। मक्खन तो उनके हाथ भी नहीं लग रहा है।

हमें मक्खन पाने के लिये अपने ही सहारे खड़ा होना चाहिये। जब हम अपने पैरों पर खड़े होंगे तो दूसरे भी हमारी सहायता करने के लिये उद्यत हो जाएंगे। मगर कठि-

नाई तो यह है कि हमें कोई मक्खन दिखलाता है और उसे पाने का उपाय बतलाता है तो हम उसकी मानते नहीं।

एक स्त्री दही मथ रही थी। उसका मक्खन बिगड़ गया और हाथ नहीं आने लगा। इतने में उसकी एक पड़ौसिन आई। कहने लगी—लाओ मैं अभी मक्खन निकाले देती हूँ। इस दही में थोड़ा गर्म पानी डालने दो। पर दही वाली कहने लगी—'नहीं, मेरे दही को हाथ मत लगाओ। जैसा वह है वैसा ही रहने दो।' ऐसी दशा में क्या उसे मक्खन हाथ लगेगा ? इसी प्रकार आप परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि, हे प्रभो ! हमारा कल्याण कर। लेकिन जब परमात्मा कहता है कि कल्याण चाहिए तो संसार के जाल से बाहर निकलो। तब आप कहते हैं नहीं, हमारा जो कुछ जैसा है वैसा ही रहने दो। ऐसी स्थिति में आपने क्या परमात्मा पर विश्वास किया है ? क्या आप सचमुच कल्याण के भाजन बन सकते हैं ?

कवि कहता है—बाहर का सब जोडना छाछ बिलोना है। धन और जन की वृद्धि हो गई तो इससे क्या हुआ ? अब मैं सब कुछ छोडकर उन मगरमच्छों के दांत उखाडूंगा, जो मेरा मक्खन खा जाते हैं अर्थात् काम क्रोध आदि को नष्ट कर दूँगा। जब मैं उनके दाँत ही उखाड दूँगा तो मेरा मक्खन कैसे खाएँगे ?

अयोध्याकाण्ड के मंगलाचरण पर साधारण दृष्टिपात किया गया है; परन्तु समयाभाव से वह पूरा नहीं हो सका। अब इतना ही कहना काफी होगा कि कवि ने राम की उस मुखश्री को, जो राज्य से प्रसन्न और वनवास से खिन्न नहीं हुई, मंगलप्रदा होने के लिए कहा है। बहुत से लोग कहते हैं कि राम का राज्य चला गया और राम को बहुत कष्ट उठाने पड़े। हे भगवन् ! मुझ पर तेरी कृपा बनी रहे मुझे ऐसे कष्ट न झेलने पड़ें और न मेरी संपदा जाए। लेकिन ऐसा कहने वाले लोग छाछ ही मांगते हैं, मक्खन नहीं मांगते। उन्होंने राम को नहीं पहचाना जो राम को पाएगा वह ऐसी प्रार्थना कदापि नहीं करेगा। उसके अन्तःकरण से एक ही आवाज़ गूँजेगी और वह यही कि-प्रभो ! काम क्रोध आदि बलवान् लुटेरे मेरा मक्खन खा जाते हैं। उनसे मेरे मक्खन की रक्षा कर। वे मेरा मक्खन न खाने पावें।

लोगों का मुँह जरा-सी हानि होने पर ही उतर जाता है। दो पैसे की हँड़िया फूटी कि मुख कुम्हला गया और रोने लगे। पर राम को पहिचानने वाला विशाल राज्य जाने पर भी विषाद नहीं करता। वह प्रार्थना करता है—'प्रभो ! भले ही मेरा सर्वस्व लुट जाए पर मेरा अन्तःकरण मलीन न होने पावे।' राम का भक्त सोचता है कि संसार कैसा भी हो, पर मैं राम को जानता हूँ, इसलिए सुख और दुःख को समान भाव से ग्रहण करूँगा।

दशरथ का वैराग्य

जैन शास्त्रों में राजा की अंतिम दशा का दो प्रकार का वर्णन किया गया है। राजा या तो रण में लड़ता हुआ मरता है या संसार से उपरत होकर संयम धारण करता है। पहले के राजा खाट पर पड़े-पड़े मरना पसंद नहीं करते थे।

आर्य संस्कृति समाज के साथ-साथ व्यक्ति (आत्मा) को भी महत्व देती है। जैसे समाज के प्रति मनुष्य का पवित्र दायित्व है उसी प्रकार आत्मा के प्रति भी आत्मा की उपेक्षा करके समाज की स्थायी और सच्ची भलाई नहीं की जा सकती। इसी प्रकार समाज की उपेक्षा करने से आत्मा की भलाई नहीं हो सकती। समाज व्यक्तियो का समूह है और व्यक्ति समाज का एक अंग है। दोनों मे इतना घनिष्ट संबंध है कि एक की उपेक्षा करना दूसरे की भी उपेक्षा करना है और दूसरे को भुलाये बिना एक को भुलाया नहीं जा सकता। आज इस तथ्य की उपेक्षा की जा रही है आजकल के कथित समाजवादी लोग व्यक्ति अर्थात् आत्मा की उपेक्षा करते हैं। नतीजा यह है कि संसार में कहीं शान्ति नजर नहीं आती और ऐसी अवस्था मे शांति की संभावना भी

नहीं की जा सकती। आत्मा को भुलाकर शान्ति की खोज करना आकाश के फूलों की खोज करना है। सच्ची शान्ति तभी नसीब हो सकती है, जब लोग समाज की तरह आत्मा को भी प्रधानता देंगे। आत्मा की उपेक्षा करने से समाज में घोर अव्यवस्था फैले बिना नहीं रह सकती। इस गये-बीते जमाने मे भी अगर शान्ति का किंचित् आभास होता है तो उसका श्रेय आत्मवाद को ही मिलना चाहिए। साधारण जनता मे आत्मा के अस्तित्व के प्रति जो निष्ठा है और जिसकी जड़ चिरकालीन संस्कारो के कारण काफी गहरी घुसी हुई है, वही मनुष्य को मनुष्य बनाये हुए है।

तात्पर्य यह है कि पुरातन आर्य संस्कृति मे समाज और व्यक्ति दोनों तत्त्वों को महत्त्व दिया जाता था। यही कारण है कि राजा लोग, जो समाज के मुखिया माने जाते थे, अपना सामाजिक कर्त्तव्य अदा करने के बाद आत्मा के प्रति उन्मुख होते थे। वे राजसिंहासन तज कर आत्मा के उत्थान में (अपने आध्यात्मिक विकास मे) तन्मय हो जाते थे। उस समय उनका सारा उद्योग अपने आत्मसाधना के लिए होता था, फिर भी समाज की उनसे कम भलाई नहीं होती थी। वे अपने संयममय जीवन से समाज को आदर्श का नूतन पाठ सिखाते थे। उनका व्यवहार जनता के आध्यात्मिक जीवन का रक्षक था। इस प्रकार आर्य संस्कृति मे समाज और व्यक्ति दोनो की प्रधानता थी।

राजा दशरथ के घर सब प्रकार का आनन्द था। एक दिन दशरथ ने विचार किया—मैंने किसी जन्म में अच्छा पुण्य कमाया था और इस पुण्य के फलस्वरूप मुझे सब प्रकार की सुख-सामग्री मिली है। राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न सरीखे पुत्र, सीता जैसी पुत्रवधू कौशल्या जैसी महारानी और अवध का जैसा विशाल राज्य मिला है। लेकिन क्या मुझे अपना सुकृत भोग कर यहीं समाप्त कर देना चाहिए? दीवालिया की यह स्थिति मुझे शोभा नहीं देती। मेरे आत्मा का अन्त यहीं नहीं है। आगे मुसाफिरी करनी है। जो कुछ कमाया है उसे समाप्त कर देना और आगे की चिन्ता न करना उचित नहीं है। मुझे अगले सफर की तैयारी करनी चाहिए। सफर करना ही होगा। वह रुक नहीं सकता। मौजूदा जीवन तो उस अनन्त यात्रा का एक पड़ाव है, जो यात्रा अनादि काल से जारी है और जिसका अन्त न मालूम कहां और कब होगा?

वर्त्तमान सीमित है और भविष्य असीम है। ऐसी दशा में वर्त्तमान के लिए लम्बे भविष्य को भूल जाना मूर्खता होगी। बुद्धिमत्ता इस बात में है कि असीम और अनन्त भविष्य को उज्ज्वल बनाने के लिए ही वर्त्तमान का उपयोग किया जाय। अर्थात् इस समय हमें जो सामर्थ्य प्राप्त है उसे भविष्य के हित के लिए उत्सर्ग कर दिया जाय। हमारा मनोबल भविष्य को मंगलमय बनाने में ही लग जाय। हमारी वाणी,

हमारा पुरुषार्थ, हमारा विवेक, हमारी बुद्धि और हमारी समस्त, शक्तियां हमारे मंगलमय भविष्य का निर्माण करने में ही लगें। इस प्रकार सुन्दर भविष्य निर्माण करने में ही वर्त्तमान की सार्थकता है।

राजा दशरथ सोचने लगे-मुझे पुण्य के प्रबल योग से जो सामग्री मिली है, उससे आगे के लिए कुछ कर लेना उचित है।

जैन रामायण के अनुसार महाराज दशरथ को एक वृद्ध से शिक्षा मिली थी और पुराण के अनुसार स्वयं बुढापे से ही उन्हें शिक्षा प्राप्त हो गई थी। मगर दोनों कथाओं का आशय एक ही है। बूढ़े और बुढापे में कोई अधिक अन्तर नहीं है। बूढा, बुढापे का प्रतिबिम्ब है-बुढापे की जीवित मूर्ति है-प्रतिनिधि है। बूढ़े को देखने का अर्थ बुढापे को देखना है और बुढापे को देखने का मतलब बूढ़े को देखना है। बुढापे के बिना बूढा नहीं दिखता और बूढ़े के बिना बुढापा नहीं दीखता। अस्तु, तुलसीदास जी रामायण में कहते हैं—

राउ स्वभाव मुकुर कर लीना.
बदन विलोकि मुकुट सम कीना।
श्रवण समीप देखि सित केशा,
मनहु चौथपन अस उपदेशा ॥

एक दिन दशरथ ने सहज भाव से दर्पण हाथ में उठा लिया। वे दर्पण में चेहरा देखकर मुकुट ठीक करने लगे।

मगर दर्पण केवल मन चाही अच्छी बात ही नहीं बतलाता। सामने की भली-बुरी सभी बातें बतला देना उसका स्वभाव है। राजा को चेहरा देखते समय कान के पास कुछ सफेद बाल दिखाई दिये। यह देखकर वह चौंक पड़े। सोचने लगे-यह सफेद केश मुझे क्या सन्देश सुनाने आये हैं? यह मानों कह रहे हैं—सावधान हो जा राजा, हम यम के दूत आ पहुँचे हैं। हम जरा के आगमन के निशान हैं।

जैन रामायण में बतलाया गया है कि दशरथ ने एक दिन किसी वृद्ध पुरुष को कोई काम कर लाने के लिए कहा और साथ ही एक युवती दासी को भी किसी काम के लिए कहा। दासी चटपट काम कर आई और वृद्ध को विलम्ब हो गया। दशरथ ने वृद्ध से पूछा—तुमने इतनी देरी क्यों लगाई? तब वह बोला—महाराज! मेरा शरीर जीर्ण हो गया है। काम होता तो है नहीं, विवश होकर करना पड़ता है।'

बुढापे के कष्टों का वर्णन करते हुए एक कवि ने कहा है:—

मुख से टपके लार कान दोउ बहिरा पड़िया,
नहीं साता को तार हाड़ सब ही खड़खड़िया।
घटी आंख की जोत छोत सब घर का करता,
देखत आवे सूग डोकरा क्यों नहीं मरता?
जीव्या करे फजीत रीत लोकां मे खोवे,
कह जैनी जिनदास जरा में ये दुख होवे॥

तपस्वी मुनि श्री मोतीलालजी महाराज बुढ़ापे के विषय में एक भजन यह गाया करते थे—

बूढापे बालपने की हर आवे,
लाडू पेड़ा जलेवी मंगावे।
घर से करड़ी रोटी आवे,
दांता से चावो नहीं जावे॥
बेटो अवलो सबलो बोले,
बोलिया मुंडे नहीं बोले।
बऊअर बड़ा रे घरांरी तू जाई,
दे नी खाट गूदड़ो बिछाई॥
सुसरा थारा रे छांदे चालूं,
रेंट्या में पूणी कद घालूं।
म्हारा बालक बिलबिल रोवे,
झोली में सुलाया नहीं सोवे॥
सुसरा खों-खों करतो थूके,
बहू उठ नित आंगन लीपे।
सुसरा बड़ पीपल पण झड़िया,
सुसरोजी हजी नहीं मरिया॥

यहां बुढ़ापे की दशा का चित्र खींचा गया है। यह कोई कल्पनाचित्र नहीं है। प्रतिदिन आखों के आगे आने वाला यह चित्र है। यह मनुष्य मात्र के जीवन का चित्र है, जिमसे कोई बड़भागी ही बचता है।

उस वृद्ध ने दशरथ से कहा-मेरा शरीर शिथिल हो गया। नसों में खून की वह तेजी नहीं रही, जोड़ ढीले पड़ गए हैं। अब मुझ से काम नहीं होता। लेकिन घर-द्वार लिए बैठा हूँ। बिना किये चलता भी नहीं है। काम न करूं तो क्या खाऊँ और क्या खिलाऊँ? इस पर भी आप उपालम्भ देते हैं महाराज!

साधारणतया वृद्ध की बात सुनकर महाराज क्रुद्ध हो सकते थे। कह सकते थे-काम नहीं होता तो जा, मौज कर। क्या मुफ्त में काम करता है जो हमें धौंस बतलाता है! पैसे लेगा तो काम भी करना पड़ेगा। लेकिन नहीं, राजा ने यह नहीं कहा, न सोचा ही। वृद्ध की बात सुनकर राजा ने उपदेश ही ग्रहण किया।

बुढ़ापाना दुख तो
राजाजी जाणे हो।
विषय थकी मन वाय ने
वैरागे आणे हो।

वृद्ध की बात सुनकर राजा दशरथ विचारने लगे-यह क्या उपदेश दे रहा है? इसके कथन का सार क्या है? मानों साक्षात् जरा की मूर्ति मेरे सामने आ उपस्थित हुई है।

जैन रामायण में यह घटना आई है। वैदिक पुराण में अपने सफेद बाल देखने का उल्लेख मिलता है। मगर दोनों

का मूल आशय एक ही है दशरथ ने बुढ़ापे के विषय मे विचार किया। वह कहने लगे—

देखी मैंने आज जरा
हो जावेगी क्या ऐसी ही
मेरी यह अधरा। देखी०।
हाय मिलेगा मिट्टी में यह वर्ण सुवर्ण खरा,
सूख जाएगा मेरा उपवन जो है आज हरा।
सौ-सौ रोग खडे हों सन्मुख पशु ज्यो बाघ परा,
धिक जो मेरे रहते मेरा चेतन जाय चरा।
रिक्त मात्र है क्या सब भीतर बाहर हरा-भरा,
कुछ न किया यह सूना भव भी यदि मैंने न तरा।

यह कविता भावमयी है। वृद्ध पुरुष की बात सुनकर या अपना सफेद बाल देखकर राजा दशरथ कहते हैं-आज ही मुझे जरा का रूप नजर आया है। हे वृद्ध, तूने आज जरा का रूप दिखला कर मेरी मोह निद्रा भंग करदी है, मुझे सोते से जगा दिया है। क्या एक दिन मेरी भी यही अवस्था नहीं होगी ?

लोग बूढ़ा आदमी तो देखते ही हैं, पर क्या सबको ऐसा विचार आता है ? जवानी की मस्ती ऐसा विचार नहीं आने देती। यौवन की कोमल और मधुर प्रतीत होने वाली कल्पनाओं मे यह कठोर और नीरस सत्य स्थान नहीं पाता। असत् के बाजार में सत् की कोई पूछ ही नहीं है ! लेकिन अन्त में तो

सत् ही सामने आता है ।

एक जवान आदमी जवानी के नशे मे अकड़ता जा रहा था। सामने की ओर से एक बूढा लकड़ी के सहारे से आ रहा था। जवान आदमी की टक्कर से वह बूढ़ा गिर पडा। यद्यपि बूढ़े को गिराने का अपराध जवान का ही था, फिर भी वह बूढ़े पर नाराज़ होकर कहने लगा—'क्या जानते नहीं हो कि यह सड़क जवानों के चलने के लिए है। तुमने मेरे चलने में बाधा पहुँचाई है। क्या मुझे जानते नहीं? आइन्दा ऐसी हरकत की तो हड्डियां चूर-चूर कर दी जाएँगी।

बूढ़ा दबने वाला नहीं था। उसने कहा-अड़कते क्यों हो? मैं तुम्हे ही नहीं, तुम्हारी बुनियाद को भी जानता हूँ।

जवान—मेरी बुनियाद को क्या जानते हो?

बूढा—तुम्हारी बुनियाद दो बूंद पेशाब ही तो है। दो बूंद पेशाब से मांस का लोथ बना, वह बढ़ा और तब तुम बाहर आये। यह तो तुम्हारी बुनियाद है और उस पर इतना घमंड करते हो।

कहने का आशय यह है कि कोई तो इस जवान की तरह अकड़बाज है और कोई दशरथ जैसे गुणग्राही भी होते हैं। महाराज दशरथ सोचते हैं—यह बूढ़ा मेरा दर्पण है, जो मेरा भविष्य भी मुझे दिखला रहा है। क्या यही अवस्था मेरी नहीं हो जाएगी? सुवर्ण की तरह चमकने वाली मेरी यह देह,

जिस पर एक भी दाग नहीं है, क्या मिट्टी में नहीं मिल जाएगी ? मेरा यह शरीर रूपी उपवन, जिसे मैंने खूब सींचा, नहलाया-धुलाया और खिलाया-पिलाया है, जो अभी हरा-भरा है, क्या एक दिन सूख नहीं जाएगा ? लेकिन नहीं, मैं अपनी कंचन-सी काया को व्यर्थ मिट्टी में नहीं मिल जाने दूँगा। मैं इसका ऐसा उपयोग करूँगा, जिससे सारे संसार को लाभ पहुँचे। अब मैं संसार के भोगों में नहीं लुभाऊँगा। मैं विषय-वासना के पाश से अपने को मुक्त कर डालूँगा।

इस प्रकार राजा दशरथ ने तो जरा को देखकर राज्य तज देने और संयम ग्रहण करने की तैयारी शुरु कर दी; मगर आपसे गांजा, तमाखू आदि हानिकारक वस्तुएँ भी नहीं छूटती ! आप अपना यौवन इन्हीं विषैली वस्तुओं के सुपुर्द कर रहे हैं।

महाराज दशरथ कहते हैं—यह जरा अपने साथ सैकड़ों रोग रूपी पशु लाती है। यह रोग-पशु मेरे जीवन के उपवन को चर जाएँगे। लेकिन मैं इन्हें ऐसा नहीं करने दूँगा। शरीर जाय तो जाय, अपने चेतन को मै नहीं चरने दूँगा। अब मैं त्याग मार्ग का ऐसा पथिक बनूँगा कि देखकर संसार चकित रह जाएगा। मैं अब पांच इन्द्रियों पर, मन पर और क्रोध मान, माया तथा लोभ रूप आन्तरिक विकारों पर राज्य करूंगा। इस राज्य की अपेक्षा वह राज्य अधिकार स्थायी, संतोपकर

और सुखप्रद होगा।

राजा दशरथ सोचने लगे—मैं अभी तक बाहर से दिखाई देने वाले इस ढाँचे के ही पीछे लगा रहा हूं। मगर इस ढाँचे के भीतर अनन्त शक्तियों का एक पुंज छिपा है। उसी की यह सब करामात है। मैं उसी शक्तिपुञ्ज चेतना की शुद्धि के लिए उद्योग करूँगा! उसी के कल्याण में लग जाऊँगा और इस प्रकार यह ढाँचा भी सार्थक हो जाएगा। अगर सभी प्रकार की सामग्री पाकर के भी मैंने आत्मा का कल्याण न किया तो यह मानव-देह और यह सब राज्य सिंहासन आदि किस काम आएगा?

महाराज दशरथ के चार पुत्र हैं। विशाल राज्य है। अक्षय खजाना है। उनकी ऋद्धि इन्द्र को भी शर्मिन्दा करने वाली है। स्वयं दशरथ समर्थ हैं। प्रजा के प्रेम और श्रद्धा के पात्र हैं। शक्तिशाली सेना उनके इशारों पर नाचती है! लेकिन हाय जरा, तुझ पर किसी का वश नहीं चलता। तेरे सामने संसार की समस्त भौतिक शक्तियां बेकार साबित हो जाती हैं। तू इतनी अनिवार्य है, ध्रुव है, कि तेरा कोई प्रतीकार नहीं। इसी कारण तुझे देखकर महाराज दशरथ भयभीत हो गए। उन्होंने कहा—हे जरा! तू मुझे सूचना दे रही है कि मैं जिस भाड़े की कोठरी में रहता हूँ, वह अब तुझे चाहिए! यह कोठरी मैं तेरे लिए खाली कर दूँ? जब तेरी ओर से यह

नोटिस मुझे मिल गया है तो अब ज़िद करना व्यर्थ है। कोई और मकान होता तो राजकीय कानून का आसरा लिया जा सकता था और उसे हाथ से न जाने देने का प्रयत्न किया जा सकता था, पर हे जरा ! तेरे आगे कोई बहाना नहीं चल सकता। तू वह सर्वोच्च सत्ता है, जिसकी कहीं सुनवाई नहीं। मुझे किसी के सामने पराजित नहीं होना पड़ा मगर तेरे आगे मैं हार गया। मेरी इच्छा के विरुद्ध तू ने मेरे बाल सफेद कर दिये हैं। इस पर मेरा कोई वश नहीं चला। मैं विशाल राज्य का स्वामी हूं, पर अपने शरीर का नहीं। बड़े-बड़े वीर योद्धा मेरी भृकुटि चढते कांप उठते हैं, मगर अपने ही बालों पर मेरी आज्ञा नहीं चलती। यह कैसी विवशता है ! सामर्थ्यशाली पुरुष की यह पामरता कितनी दयनीय है !

मरने को जग जीता है।
रीता है जो रंध्रपूर्ण घट,
भरा हुआ भी रीता है।
यह भी पता नहीं कब किसका,
समय कहाँ पर बीता है।
विष का ही परिणाम निकलता,
कोई रस क्या पीता है !
कहां चला जाता है चेतन,
जो मेरा मन चीता है।

खोजूँगा मैं उसको जिसके,
विना यहां सब तीता है ।
हे भुवन भावने ! आ पहुँचा मैं,
अब तू क्यों भय-भीता है ?
अपने से पहले अपनों की.
सुमति गौतमी गीता है ।

क्या कभी मन में सोचते हो कि हम मरने के लिये ही जी रहे हैं ? कमाना-खाना, सोना-जागना आदि सब कुछ मरने के लिए ही है, यह कभी सोचा है ? इस धरती की पीठ पर कोई ऐसा है जिसे नहीं मरने का परवाना मिला हो ? नहीं, तो फिर क्यों न माना जाय कि जीव मात्र मरने के लिए ही जी रहा है ! आप कह सकते हैं कि मरने की बात कहना सुनना और सोचना अमंगल है, मगर यह तो वैसी ही बात हुई कि दही मंगल है, अतएव उसे मथकर उसमें से मक्खन निकलना अमंगल है। ऐसा सोच कर क्या कोई दही को यों ही पड़ा सड़ने देता है ?

मरने से डर कर दुनियां अमंगल के नाम पर अमंगल अपने मे घुसेड़ती है, मगर ज्ञानी जन कहते हैं:—

मरने से जग डरता है, मो मन परमानन्द ।
कब मरिहौं कब भेटि हौं, पूरण परमानन्द ॥

ज्ञानी कहते हैं कि जगत् के जीव मरने से डरते हैं मरने

की बात सुनकर नाराज़ होते है और करोड़ युग जीवित रहने के लिए कहें तो प्रसन्न होते हैं। यानी झूठी बात सुनकर प्रसन्न होते है। लेकिन हम मरण का स्वागत करते है।

दशरथ कहते हैं—हे जरा! तू ने मुझे भला समझाया कि मरने से डरने की आवश्यकता नहीं।

दशरथ जागृत हो गये। आप भी जागृत हो जाइए। तप से मत घबराइए। खाली चूल्हे में फूंक मारने से मुँह पर राख उड़ेगी। हाँ, कुछ आग हुई तो फूँकने से वह सुलग उठेगी। ऐसे ही अन्तरात्मा में ज्योति जगी हो और उसे तप से सुलगाओ तो वह और तेज होगी। तप न करने के कारण ही खाते पीते भी मुँह सूखता है।

मरने से डरने पर भी मरना तो पड़ता ही है। फिर डरने से क्या लाभ? बल्कि मरने से तो प्रसन्न होना चाहिए। स्कूल में पढ़ने वाले लड़के का उद्देश्य परीक्षा मे उत्तीर्ण होकर प्रमाणपत्र प्राप्त करना होता है। लेकिन कोई लड़का परीक्षा के समय रोने लगे तो उसे क्या कहा जायगा? ज्ञानी जन कहते हैं-मरने से डरना क्या? मौत की कल्पना से रोना क्यों? मरना तो परीक्षा है। मरकर 'सर्टिफिकेट' लेना है। मनुष्य को मरना सीखना चाहिए। जो मरना जानेगा वह पाप से डरेगा। वह मरने से क्यों डरेगा? मरने से डरने की आवश्यकता ही क्या है? मृत्यु के विना क्या यह जीवन

पाना शक्य था ?

किसी मनुष्य ने राजा की महत्वपूर्ण सेवा की। राजा ने प्रसन्न होकर उसे लाने के लिए पालकी भेजी। उस समय वह हँसेगा या रोएगा ? यदि वह रोता है तो उसे क्या कहा जायगा ?

'पागल'

मगर देखना, कहीं आप भी तो यह पागलपन नहीं करते हैं ? आपको समझना चाहिए कि मरना, मरना नहीं, जीवन भर किये हुए पुण्य-धर्म का फल भोगने का अवसर मिलना है। और यह सुअवसर मृत्यु रूपी मित्र की सहायता से मिलता है। तब मृत्यु के आगमन पर रोना क्यों ? 'मरने को जग जीता है' यह जानकर भी जो मरने के समय रोता है, वह मानो राजा के यहाँ से आई हुई पालकी को ठुकराता है।

मैंने एक कथा पढ़ी थी। वह कथा जैसे जैन शास्त्र की इस गाथा के आधार पर रची गई हो। गाथा इस प्रकार है—

कणकुंडगं चइत्ताणं विट्ठं भुंजइ सूयरो।
एवं सीलं चइत्ताणं दुस्सीले रमइ मिये॥

अर्थात्—अज्ञान और मूर्ख जीव का स्वभाव ग्रामीण शूकर के स्वभाव के समान होता है। ग्राम्य शूकर के सामने एक ओर उत्तमोत्तम पकवानों के थाल हों और दूसरी ओर विष्ठा हो तो वह पकवान छोड़कर विष्ठा की ओर ही झुकेगा। सूअर को ऐसा करते देखकर आप उसकी निन्दा करेंगे मगर जब

सूअर की निन्दा करने पर उद्यत होओ तो जरा अपनी ओर भी नजर डाल लेना। दया, क्षमा, परोपकार आदि उत्तम भोजन के समान हैं और चुगली, निन्दा, व्यभिचार आदि विष्ठा के समान हैं। फिर भी आप दया क्षमा आदि को छोड़ कर चुगली निन्दा आदि की ओर झुकते हैं या नहीं ? अगर झुकते हैं तो सूअर की निन्दा करने का आपको क्या अधिकार है।

शास्त्र की यही बात 'विशालभारत' पत्रिका मे आई। महाभारत की एक कथा में देखी। संक्षेप मे कथानक इस प्रकार है—

एक ऋषि थे। उनसे कोई चूक हो गई। चूक के प्रताप से वह मर कर शूकरी हुए। कर्म की गति बड़ी विचित्र है। जैन शास्त्र के अनुसार भी मुनि को चण्डकौशिक सांप होना पड़ा था।

तो वह ऋषि मर कर शूकरी हुए उनके तप का कुछ पुण्य तो था ही; मगर चूक के कारण उन्हें इस निकृष्ट योनि में जन्म लेना पड़ा। शूकरी बड़ी हुई। इधर-उधर कूड़ा-कचरा खाने लगी और उसी में प्रसन्न रहने लगी। इस अवस्था में वह ऐसा आनन्द मानने लगी कि मानो इन्द्राणी हो। थोड़े दिनों बाद उसे मस्ती चढ़ी। सूअर के साथ क्रीड़ा करने लगी। गर्भवती हुई। बच्चे हुए। वह उन बच्चो पर बहुत प्रेम करने लगी।

इतने में उसके वृक्ष के कर्म का भोग पूरा हो गया। धर्मराज के घर से विमान आया। धर्मराज के दूतों ने उससे कहा–चल अब स्वर्ग में चल, तेरा कर्मभोग पूरा हो गया है।

सूअरी यह सुन कर रोने लगी। रोती रोती बोली–अभी मुझे मत ले चलो। मेरे बच्चे अभी छोटे हैं। देखो वह मैला पड़ा है, मुझे वह खाना है। थोड़े दिन और दया करो। मुझे बचाओ।

सूअरी की बात पर देवदूत हँसने लगे। उन्होंने सोचा–इसकी दृष्टि में स्वर्ग के सुख इन सुखों में भी तुच्छ हैं!

फिर देवदूतों ने कहा—नहीं, तुझे अभी चलना पड़ेगा। साथ लिये बिना हम मानने वाले नहीं।

अन्ततः सूअरी रोती रही और देवदूत उसे ले चले। स्वर्ग पहुंचने पर उसका हृदय पलट गया। उन यमदूतों ने उससे कहा–चल, तुझे वापिस लौटा आते हैं। अपने अधूरे काम पूरे कर ले। मगर वह अब लौटने को तैयार नहीं थी। स्वर्ग में पहुँचने के बाद कौन अभागा ऐसा होगा जो सूअर का काम करने के लिए स्वर्ग छोड़कर आएगा!

इस कथा के आधार पर प्रत्येक मनुष्य को अपनी स्थिति पर विचार करना चाहिए कि हमारी स्थिति भी कहीं इस कथन की 'नायिका' जैसी ही तो नहीं है?

दो छोरा दो छोकरी, सो करती ममता माया,
लाख-लाख बेटा हुआ, एक काम नहीं आया।

परतख देखलो, दुख पड़े सारा, बिललावे जावे चेतन एकलो।
गाफिल मत रह रे, मुश्किल यह अवसर फिर पावणो ॥

देवदूत की पालकी सामने खड़ी है। जिसे उसमें सवार होना हो, हो सकता है। लेकिन, सवार होने की इच्छा रखने वाले को आसुरी प्रकृति की बातें छोड़कर दैवी प्रकृति की बातें आचरण में लानी पड़ेंगी। अगर कोई यह कहता है कि आसुरी प्रकृति के बिना काम नहीं चलता तो यह तो सूअरी की जैसी ही बात हुई या नहीं? आसुरी प्रकृति के काम करना गन्दगी खाना है या नहीं? इस गन्दे जीवन के लिये उच्च जीवन को क्यों भूलते हो? संसार बड़ा विषम है। यहां बड़ी-बड़ी स्थिति वाले भी नहीं रहे तो तुम्हारी हैसियत ही क्या है? इस बात को भूलकर अगर ऐसी ही स्थिति में पड़े रहे तो समय बीत जाने पर पछताने से भी क्या लाभ होगा?

रावण को सोचना चाहिए था कि जब मैं हनुमान् को ही न जीत सका तो राम को कैसे जीत सकूँगा? अतएव सीता को लौटा कर संधि कर लेना ही मेरे लिए श्रेयस्कर है। पर उसने ऐसा नहीं सोचा। आखिर उसका नतीजा क्या निकला? आप रावण को जाने दीजिए। अपने विषय में ही सोचिए कि जब हम जरा को भी नहीं जीत सकते तो मरण को कैसे जीत सकेंगे?

जरा के उपदेश से दशरथ संयम की तैयारी करने लगे। तुलसी रामायण के अनुसार दशरथ राम को राज्य देने की तैयारी करने लगे और जैन रामायण के अनुसार संयम ग्रहण करने की तैयारी करने लगे।

बुढापा बहुतों को आया है और जिन्हें नहीं आया वे बूढों को देख कर बुढापा आने की अनिवार्यता समझ सकते हैं। लेकिन क्या सभी लोग आत्मकल्याण का विचार करते हैं? उन्हें यह क्यों नहीं सूझता कि जग मरने को ही जीता है। रोते-रोते मरने से लाभ क्या है?

यं यं वापि स्मरन् भावं, त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय! सदा तद्भावभावितः॥

रोते-रोते मरने से रोती योनि मे उपजना पड़ेगा और हँसते हुए मरने से वैसे ही योनि में जन्म मिलेगा अतएव मृत्यु को सुधार लेने मे ही कल्याण है।

दशरथ का चिन्तन

दशरथ की सम्पदा की तुलना इन्द्र की सम्पदा से की जाय तो इन्द्र भी लज्जित होकर कहेगा कि दशरथ ने जैसी प्रतिष्ठा प्राप्त की है, वैसी प्रतिष्ठा एकच्छत्र स्वर्गीय साम्राज्य पाकर भी मुझे प्राप्त नहीं है। इन्द्र के राज्य मे रत्नों के महल और कल्पवृक्ष आदि हैं, जो दशरथ के राज्य

में नहीं थे। फिर भी जैसी महिमा दशरथ की थी, इन्द्र की नहीं। कारण यह कि जो स्वावलम्बी है, जिसे मानव-भव मिला है और जो सादगी से रहता है, उसकी समता इन्द्र कदापि नहीं कर सकता। महाभारत में कहा है कि व्यास की झोंपड़ी और युधिष्ठिर के महल की तुलना में व्यास की झोंपड़ी ही बड़ी ठहरी। व्यास ने युधिष्ठिर से कहा था—अगर तुम्हारा महल बड़ा था तो महल छोड़कर, तत्त्व ग्रहण करने के लिए मेरी झोंपड़ी पर क्यों आए! इसी प्रकार इन्द्र कहते थे—देवलोक अयोध्या पर ठहरा है, अयोध्या देवलोक पर नहीं टिकी है।

आज जिन हवेलियों में रहते हैं, वे हवेलियां झोंपड़ियों से बनी हैं या झोंपड़ियां हवेलियों से बनी हैं? पत्थर इकट्ठे करके, महल बनाने का काम झोंपड़े वालों ने किया है और आप हवेली पर गरूर करते है! मनुष्यलोक की सादगी से ही स्वर्ग निकलता है।

दशरथ सोचते हैं—मैंने राज्य की प्रजा आदि सभी को सुखी बनाने के लिए उद्योग किया, लेकिन अपने आत्मा की शान्ति के लिए कुछ भी न किया तो सब करना बेकार हुआ। मैंने जरा का रूप देखा है। यह वृद्ध पुरुष मेरे राज्य में रहता है। मैं इसका रक्षक कहलाता हूँ, पर यह जरा से नहीं बच सका। ऐसी दशा में मेरा शासन किस काम आया? अतएव

मैं प्रयत्न करूँगा कि जरा मुझ पर विजय प्राप्त न कर सके। मैं जरा को जीतने के लिए जरा भी कसर नहीं रहने दूंगा। उसे जीतूँगा और तब तक जन्म-मरण पर भी विजय प्राप्त हो सकेगी। मैं अजर-अमर-अजन्मा बनने का प्रयत्न करूंगा, जो मेरा सच्चा स्वरूप और साम्राज्य है। इस मृगमरीचिका के चक्कर से अपने को अलग कर लूँगा।

'मरने को जग जीता है,' ठीक है। फौज में जो भर्ती होता है सो अपना सिर कटाने को ही। कोई कायरता दिखलाकर लड़ाई के मैदान से तो भाग भी सकता है, लेकिन संसार में जन्म लेकर मरने से कोई नहीं बच सकता।

मगर मरना एक बात है और मरने के लिए जीना दूसरी बात है। दुनियां मरने के लिए जीती हो तो जीए। मैं मरने के लिए नहीं जीऊंगा, बल्कि जीने के लिए मरूंगा। मै शाश्वत जीवन, अक्षय अस्तित्व और ध्रुव स्थिति प्राप्त करने के लिए देह का उपसर्ग कर दूंगा। यही जीने के लिये मरना है। इस प्रकार मैं सर्वसाधारण से उलटा कदम उठाऊंगा। मैं अब तक मरने के लिये जीता था, अब जीने के लिये कायोत्सर्ग करूंगा। मैं अपनी मृत्यु को अमृत बनाऊँगा।

उपनिषद् में कहा है—

असतो मा सत्यं गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मा अमृतं गमय।

ज्ञानी पुरुष मृत्यु से छूटकर अमृत बनने की भावना करते हैं और इसी में अपने जीवन की सफलता मानते हैं।

दशरथ कहते हैः—मैं भी अमृत बनूंगा। अब मुझे सावधान हो जाना चाहिये। मुझे पता नहीं कि मेरा आयु रूपी पानी कब सूखने वाला है? संसार में सभी कुछ मिल सकता है, मगर आयु नहीं मिल सकती। मैं किसी को जागीर दे सकता हूं, मगर पल भर की आयु नहीं दे सकता। ऐसा यह आयुष्य कहाँ जा रहा है? आयु का कभी हिसाब भी तो नहीं लगाया कि मेरा बहुतसा आयुष्य कहां चला गया है?

मैं जो रस ग्रहण करता हूँ, वह चाहे अमृत-सा ही क्यों न हो, विष रूप में ही परिणत होता है। घी, दूध आदि अमृत माने जाने वाले पदार्थों से भी विष का ही परिणाम निकलता है। कैसा ही अच्छा क्यों न खाया जाय, निकलेगी गंदगी ही। गाय के गोबर का सभी स्वागत करते हैं, मगर अरे मनुष्य, तेरा शरीर कितना अपावन है। इसे शारीरिक विष समझ!

मीठा भोजन करने पर भी वचन से विष निकलता है। गरीब को गाली देना क्या अमृत है? अमृत खाने पर भी मुख से ज़हर निकलता है। यह ज़हर वाचनिक विष है।

अन्तःकरण की ओर दृष्टिनिपात किया जाय। अमृत-सा भोजन करने के पश्चात भी क्या हृदय में विषैली वासनाएँ

उत्पन्न नहीं होती ? अमुक का गला काटूँ अमुक को धोखा दूं, इत्यादि भावनाएं क्या अन्तःकरण का विप नहीं हैं ? इस प्रकार कितना ही मधुर भोजन क्यों न किया जाय, अन्तःकरण में अगर विप भरा है तो सब का परिणाम प्राय' विषमय होता है।

दशरथ कहते हैं—'इस देह मे प्रकट होकर चेतन ने इतना प्रकाश पाया है, मगर चिन्ता का विषय यह है कि अब यह चेतन कहां जाएगा ? इसे कैसा देह मिलेगा ? अगर मैं अपनी चेतना को अपने अभीष्ट स्थान पर न ले जा सका तो मैं दशरथ ही काहे का ? अब मैं यह नहीं होने दूंगा कि कर्म की प्रकृति जहाँ चाहे वहीं मुझे (चेतना को) घसीट ले जाय और वही मुझे जन्मना-मरना पड़े । मैं सर्वज्ञभाव लाकर स्वाधीन बनूँगा। मेरे चेतन पर मेरा ही अधिकार होगा और किसी का नहीं। मैं उस ज्ञान की खोज करूँगा जिसके अभाव में ससार कडुआ है। मैं कर्म पर विजय प्राप्त करके मरूँगा, यों नहीं मरूँगा। अब यही मेरी दृढ़ भावना होगी।

आत्मा के लिए भावना बहुत बडी चीज है। गीता में कहा है—

श्रद्धामयोऽयं पुरुषः यो यच्छ्रद्धः स एव सः ।

भावना अर्थात् श्रद्धा। जिसकी जैसी भावना होती है, वह वैसा ही बन जाता है। ईश्वर की भावना करके ईश्वर बनना

और पशु की भावना करके पशु बनना आत्मा के ही हाथ की बात है ?

दशरथ कहते हैं—ऐ मेरी अवधपुरी ! मैं तेरा नाथ होकर भी क्या खाली ही चला जाऊँगा ?

अवधभूमिभावि ! क्या तेरा,
यही परम् पुरुषार्थ हाय !
खाय पिये बस जिये मरे तू,
यों ही फिर-फिर आए जाय ।
अरे योग के अधिकारी को,
यही तुझे क्या योग्य हाय,
भोग भोग कर मरे रोग में,
बस वियोग ही हाथ आय ।
सोच हिमालय के अधिवासी,
यह लज्जा की बात हाय,
अपने आप तपे तापों से,
तू न तनिक भी शांति पाय ।
बोल युवक ! क्या इसलिए है ।
यह यौवन ! अनमोल हाय !
आकर इसके दांत तोड़ दे,
जरा भंग कर अंग काय,
बता जीव ! क्या इसलिए है,

यह जीवन का फूल हाय !
पक्का और कच्चा फल इसका,
तोड़-तोड़ कर काल खाय ।
एक वार तो किसी जन्म के,
साथ मरण अनिवार्य हाय,
वार-बार धिक्कार किन्तु यदि,
रहे प्रेत का शेष हाय ।
अमृतपुत्र ! उठ कुछ उपाय कर,
चल, चुप हार न बैठ हाय,
खोज रहा है क्या सहाय तू,
मेट आप ही अन्तराय ।

दशरथ अवध के राजा हैं। लोग उन्हे अवधेश अथवा अवध के नाथ कहते हैं; लेकिन उन्हें इसका अभिमान नहीं। वे कहते हैं—हे अवधवासी, तू ने क्या पुण्य किया होगा, जिसके प्रताप से तुझे अवध में जन्म मिला है ?

आप लोग यहां जन्म पाना अच्छा मानते हैं या स्वर्ग में जन्म पाना अच्छा समझते हैं ? अगर स्वर्ग मे जन्म होना अच्छा समझते हैं तो मैं पूछना चाहता हूँ कि क्या स्वर्ग में तीर्थङ्कर या महात्मा पुरुष जन्मते हैं ? आप कह सकते हैं—वहाँ किसी प्रकार का झगड़ा झंझट नहीं है। केवल भोग है। लेकिन भोग का कीड़ा बनने से आत्मा का कल्याण हो सकता है ? भोग

के कीड़े भले ही स्वर्ग में जन्मना चाहें; अन्यथा स्वर्ग के देव भी मनुष्य लोक में जन्म पाने के लिये लालायित रहते हैं।

अमेरिका में डाक्टर थोर नामक एक आध्यात्मिक विद्वान् हो गया है। सुना है-एक दिन वह अपने शिष्य के साथ हवा खाने गया। वहां शिष्य ने डाक्टर से पूछा-कौनसी भूमि अच्छी है-यहां की या स्वर्ग की? डाक्टर थोर ने उत्तर दिया-जिस भूमि पर तू दोनों पैर टेक कर खड़ा है उसे अगर स्वर्ग भूमि से बढ़कर न माने तो तेरे समान कोई कृतघ्न नहीं और तू इस भूमि पर खड़ा रहने का अधिकारी नहीं।

यही बात सब को लागू होती है। आपको स्वर्ग भी इसी भव में याद आता है। कुत्ता, बिल्ली होते तो स्वर्ग याद ही न आता। ऐसा होने पर भी अगर आप स्वर्ग भव को ही श्रेष्ठ मानें तो ऐसा मानना इस भव के प्रति कृतघ्नता होगी। इस भूमि को तुच्छ समझकर स्वर्गभूमि को श्रेष्ठ समझना पतिव्रता को छोटी और वेश्या को बड़ी समझने के समान है। कोई स्त्री गरीब घर की है। उसके पति का घर भी गरीब है और पिता का घर भी गरीब है। इस कारण वह फटे पुराने कपड़े पहनती है पर वह पतिव्रता और सती है। क्या ऐसी स्त्री वेश्या से खराब है? कहावत है:—

पतिव्रता फटा लाता,
नहीं गले में पोत।

भरी सभा में ऐसी दीपे,
हीरा की सी जोत।

ऐसी पतिव्रता को छोड़कर उसका पति अगर वेश्या के पास जाए और उसके सुन्दर बहुमूल्य वस्त्र देखकर कहने लगे-मेरी पत्नी तो कुछ भी नहीं है, जो है सो तू ही है। तो क्या ऐसे मूर्ख ने पातिव्रत्य का माहात्म्य जाना है ? वह नहीं समझता कि वेश्या के नखरों और कपड़ों ने मेरे हृदय मे आग लगा दी है। इसी कारण मेरा धर्मभाव भस्म हो गया है और मैं पातिव्रत्य धर्म की महिमा भूल गया हूँ।

सारांश यह है कि पतिव्रता के सामने विलासिनी वेश्या किसी गिनती मे नहीं। मगर भोग के कीड़े उसी नाचीज और वेश्या को बड़ी चीज़ समझते हैं। यही कथन उन पर चरितार्थ होता है जो आर्यभूमि का अन्न-जल-वायु सेवन करते हैं और पेरिस की प्रशंसा करते नहीं थकते। स्वर्ग के सम्बन्ध में भी यही बात है। मनुष्यजन्म आत्मिक उत्थान का मार्ग है जब कि स्वर्ग भोगों की क्रीड़ाभूमि है। इसी मनुष्यभव की साधना से आत्मा अक्षय कल्याण प्राप्त कर सकता है। ऐसी स्थिति में मनुष्य हो करके भी जो मनुष्यभव की निन्दा और स्वर्ग की प्रशंसा करता है, वह नादान है। इस भूमि की महिमा न समझकर, भोगो मे लुभाकर स्वर्ग को बड़ा बतलाने वाले अज्ञानी को क्या कहा जाय ? ज्ञानी पुरुष स्वप्न में भी

स्वर्ग की कामना नहीं करते। आप जिस भूमि में रहते हैं और आपको जिस धर्म की प्राप्ति हो सकी है, उसके लिए देव यह कहते हैं—

सुट्ठिए सावए चेडो, नाणदंसणलक्खणो।
धम्मे रयस्स कुलस्स, मा होऊ चक्कवट्टिया॥

स्वर्ग के देव कहते हैं–धर्मात्मा श्रावक की दासता अच्छी, लेकिन धर्मविहीन चक्रवर्त्ती का पद अच्छा नहीं।

दशरथ कहते हैं—मुझे अवध में जन्म मिला है, लेकिन क्या मेरा पुरुषार्थ फिर-फिर जन्म-मरण करने में ही है? खाना-पीना और 'पुनरपि जननं पुनरपि मरणं' अर्थात् बार-म्बार जनमना-मरना ही मेरा पुरुषार्थ है? इसलिए अब उठ। हे योग के अधिकारी! क्या तू भोग में ही फँसा रहेगा? तू योग के लिए जन्मा है या भोग के लिए?

मित्रो! आप किसलिए जन्मे हैं? आपको भी इस प्रश्न पर विचार करना चाहिए। योग के अनेक अर्थ होते हैं, मगर आपको मैं बहुत गहराई में नहीं ले जाना चाहता। आपको योग का सीधा-साधा अर्थ ही बतलाता हूँ। सरल भाषा में यह कहा जा सकता है कि एकाग्र चित्त से किसी काम में लग जाना योग है। मगर वह कार्य श्रेयस्कर होना चाहिए। इस दृष्टि से संयम, भक्ति और सत्य के योग में लगना उचित है।

कोई कह सकता है कि हम क्या योग के लिए जनमे हैं? ऐसा कहने वाला अगर अपने जन्म का उद्देश्य भोग भोगना मानता है तो उसे यह भी सोचना होगा कि उसके और पशु-पक्षी के जीवन में क्या अन्तर है? भोग तो पशु-पक्षी भी भोगते हैं। आप जो पकवान खाते हैं, वह सूअर भी खा सकता है। आप जो कपड़े पहनते हैं वही कपड़े क्या पशु नहीं पहन सकते? क्या उन कपड़ों से पशु की ठंड नहीं जाएगी? यह बात दूसरी है कि पशुओं को ऐसी चीज़ प्राप्त नहीं है, लेकिन यदि मिले तो क्या पशु उनका उपभोग नहीं कर सकते? और क्या सभी मनुष्यों को असाधारण भोजन वस्त्र प्राप्त हो जाता है?

वास्तव में मानव-जीवन भोग के लिए नहीं, योग के लिए है। आप योग के हेतु ही जनमे हैं। योग को चाहे परमात्मा की सेवा कहो, चाहे मुनिवृत्ति कहो, चाहे धर्म कहो, कुछ भी कहो, आपका जन्म हुआ इसी निमित्त है। भोग के लिए आप नहीं जनमे हैं।

दशरथ कहते हैं-'मैं भोग के लिए नहीं योग के लिए जनमा हूँ अतएव मेरा कर्त्तव्य तप करना अर्थात् योग को अपनाना है। अब संयम लेकर मैं जगत् पर प्रकट कर दूंगा कि राज्यभोग भी मनुष्यजीवन का चरम-कर्त्तव्य नहीं है।'

दशरथ विचार करते हैं-'हे मन! अवसर बीत रहा है।

फिर पछताना पड़ेगा। जरा ने नोटिस दे दिया है और उसे तू समझ गया है। यह कुछ कम पुण्य की बात नहीं है।'

प्लेग के समय चूहे मरने लगते हैं। पहले मनुष्य नहीं मरते, चूहे ही मरते हैं। प्लेग से बचने के लिए लोग चूहो को मारने लगते हैं। मगर चूहे कह सकते हैं-हमें क्यों मारते हो? हम तो नोटिस दे रहे हैं कि इस घर की हवा खराब हा गई है। यह घर खाली कर जाओ।' इतने पर भी मनुष्य अगर घर नहीं छोड़ते तो उन्हें मरना पड़ता है। दशरथ कहते हैं—'हे मन! फिर पछताना पड़ेगा। यह दुर्लभ देह राजपाट की रखवाली के लिए ही नहीं है। इससे भगवान् का भजन कर ले।

क्या दशरथ घर में रहकर भगवद्-भजन नहीं कर सकते थे? फिर संयम लेने के लिए वे क्यो तत्पर हुए? आज कई लोग कहते हैं—घर में ही भजन कर लेना, साधुपन क्यों लेना? ऐसा कहने वालों को समझना चाहिए कि गिरस्ती के अठारह जंजालों में फँसा हुआ आदमी विक्षेप रहित होकर भगवान् का भजन नहीं कर सकता। बड़े-बड़े राजा लोग, जो राज्य करते हुए दान, शील, तप और भावना रूप धर्म का सेवन कर सकते थे, क्यों संयम लेने को दौड़ते थे?

महाजनो येन गतः स पन्थाः।

अपने को तो महापुरुष के मार्ग पर चलना है। 'आप कहते होंगे कि बड़े-बड़े राजाओं ने राज्य क्यों छोड़ा? पर

आप उन्हे बुद्धि देते हैं या उनके आदर्श व्यवहार से बुद्धि लेते हैं ? वे बड़े राजा ससार में रह कर राज्य का सुधार करते थे और फिर संयम लेकर बड़े तत्त्व की खोज करके अपना मरण सुधारते थे । इस प्रकार वे जीवन की कला में भी निष्णात थे और मृत्यु की कला में भी कुशल थे। दशरथ सोचते थे कि मेरे चाहे जितने बेटे हो, उनसे मेरा कल्याण न होगा। अन्त में या तो मैं उनको छोड़ जाऊँगा या वे मुझे छोड जाएँगे। फिर उन पर ममता स्थापित करने से क्या लाभ है ? जो वास्तव में मेरा नहीं है, उस पर ममता कैसी ? अतएव पहले ही उन्हे क्यों न छोड़ दूं !

एक जाट था। उसकी जाटनी हमेशा जाट को छोड़ जाने की धमकी दिया करती थी। जब चाहे तभी कहती—मुझे यह ला दो नहीं तो मैं छोड़ जाऊँगी। मुझे वह लाकर दो वर्ना मैं तुम्हारा घर त्याग दूंगी। जाट यह सुनते सुनते उकता गया। एक दिन उसने सोचा—रात-दिन की यह मुसीबत ठीक नहीं। जाटनी को अब न रखना ही उचित है एक दिन धमकी सुन-कर जाट ने कहा–तुझे जाना है तो चली जा, मेरे जेवर उतार कर रख जा। जाटनी जाने को तैयार थी। उसने जेवर उतार कर जाट को सौंप दिये। तब जाट बोला–अब तू सदा के लिए जा रही है तो एक खेप पानी की भर कर जा। घर में पानी नहीं है। मैं अभी–अभी कहाँ पानी लेने दौड़ूँगा ?

जाटनी ने यह स्वीकार कर लिया। वह पानी लेने चली गई। पीछे से एक डण्डा लेकर जाट चौराहे पर आ बैठा। उधर से जाटनी पानी भर कर लौटी। जाट ने पीछे से एक डन्डा मार कर घड़ा फोड़ दिया और जाटनी से कहा—चल, रांड कहीं की, मेरे घर से निकल जा।

जाटनी कहने लगी—तेरे घर में रहता ही कौन है?

जाट ने जवाब दिया—तू मेरे घर में रहने लायक है ही नहीं।

जाटनी चली गई। लोगों में हल्ला हो गया कि जाट ने जाटनी को निकाल दिया। लोग कहने लगे—उसमें कोई ऐब होगा, तभी तो उसे घर से निकाल दिया है। जाट को दूसरी लड़की देने वाले भी मिल गये और विवाह हो गया। दूसरी जाटनी पहली का हाल सुनकर जाट से डरती रहती और जाट की मर्जी के खिलाफ कोई काम नहीं करती।

सारांश यह है कि जाट ने स्वयं जाटनी को परित्याग कर दिया। अगर जाटनी जाट को छोड़ जाती तो जाट की इज्जत जाती और उसका दूसरा विवाह भी न होता।

अब इस दृष्टांत को अपने ऊपर घटाइये। संसार की माया जाटनी है। आप चाहे उसके पांवों में गिरें, फिर भी वह जाती हुई नहीं रुकेगी। जब वह जाने को ही है तो फिर उसे स्वेच्छा-पूर्वक ही क्यों न तज दिया जाय? जाट ने अपनी बात रख

ली। आप भी जाट की बुद्धि से काम लें। अन्यथा पछतावा ही पल्ले पड़ेगा।

संसार त्याग कर निकलने वाले मुनियों को आप क्यों नमस्कार करते है यों तो हजारों पुरुषों को उनकी पत्नियां छोड़ जाती हैं और हजारो आदमी भूकम्प आदि के कारण गृहहीन तथा अकिंचन हो जाते हैं, उन्हें नमस्कार क्यो नहीं किया जाता ? इसका कारण यही है कि उन्होंने स्वेच्छा से घर और संपत्ति नहीं त्यागी है; जब कि मुनि स्वेच्छा से त्याग कर अनगार और अकिंचन बनते हैं।

आग और भूकम्प आदि के कारण या अन्ततः मृत्यु आने पर सर्वस्व त्यागना ही पड़ता है तो फिर स्वेच्छा से क्यों नहीं त्याग देते ? इच्छापूर्वक त्याग करोगे तो देवता भी आपको नमस्कार करने में अपना अहोभाग्य समझेंगे।

उस समय भी शायद कुछ लोग कहते होंगे कि जिसके राम जैसा बेटा है, उसे घर छोड़ने की क्या जरूरत है ? पर ऐसा कहना नासमझी का लक्षण है। चक्रवर्ती का कल्याण भी त्याग से ही हो सकता है ? अतएव सौभाग्य से प्राप्त मनुष्य-जीवन को वृथा बर्बाद न करके त्याग को अपनाओ और परमात्मा का भजन करो। पाप को छोड़ो। धर्मपरायण बनो। जगत् के जीवों के प्रति प्रेम भाव बढ़ाए जाओ, स्नेह का दायरा विस्तृत बनाते चलो। इसी में आत्मा का सच्चा कल्याण है।

महाराज दशरथ कहते हैं—कल्पना कीजिए, एक आदमी हिमालय पहाड़ पर बैठा है। हिमालय पहाड़ सदा ठन्डा रहता है। वहाँ गर्मी में भी सर्दी रहती है। ऐसी स्थिति में अगर कोई आदमी वहां बैठा हुआ कहता है कि मैं गर्मी में मर रहा हूँ तो उससे क्या कहा जायगा ? उससे यही कहा जायगा कि किसकी कसर है, यह देख। इसी प्रकार इस आर्य देश में और उसमें भी अयोध्या में जन्म लेना बहुत कठिन था; फिर भी तुझे वहां जन्म मिला है तो किसलिए ?

शास्त्रकारों ने इस आर्य देश की बहुत महिमा गाई है। इस देश में जन्म मिलना बड़े सौभाग्य का फल है। मान लीजिए, एक जगह एक लाख आदमियों के बैठने योग्य मंडप बनाया गया और उसमे खास-खास आदमियों के बैठने के लिए एक 'स्टेज' बनाया गया। भारत के करोड़ों आदमियों में से एक लाख आदमी ही उस मंडप में बैठ सकेंगे। यह लाख आदमी भाग्यशाली माने जाएँगे या नहीं ? और खास तौर पर जिन्हें 'स्टेज' पर बैठने की जगह मिलेगी वे कितने भाग्य-शाली समझे जाएँगे ? लेकिन जिन्हें उस स्टेज पर बैठने का गौरव मिला है, उन्हें इस बात का ध्यान रखना होगा कि कहीं हमारे ऊपर मक्खी न बैठ जाए! इसी प्रकार सारे संसार में यह आर्यदेश और उसमें भी उस अवधपुरी में, जहां भगवान् ऋषभदेव, अजितनाथ, अभिनन्दनप्रभु, सुमतिनाथ स्वामी,

अनन्तनाथ भगवान आदि तीर्थङ्कर हुए हैं; भरत सगरादि चक्रवर्ती हुए हैं और जहां अनेक पुरुषों ने मुक्ति प्राप्त की है, जन्म पाना कितने सौभाग्य की बात है ?

दशरथ मन ही मन सोचते हैं—ऐसी अवधपुरी में तेरा जन्म हुआ है तो क्या यह जन्म यों ही गँवा देगा ? तू जिसे भोग कहता है, वह भोग नहीं रोग है, वियोग है। इस अयोध्या में सहज शान्ति देने वाले पुरुष हुए हैं और तू संसार सबन्धी अशान्ति से तप रहा है !

शास्त्रश्रवण और संतों का समागम क्या शान्ति के हिमालय नहीं है ? इस हिमालय पर बैठ कर भी भोगों की लालसा का न छूटना और भोगलालसा से तपते रहना क्या हिमालय पर बैठकर गर्मी से तपने के समान नहीं है ? संत बनना भी इस हिमालय पर बैठना है। लेकिन इस हिमालय पर बैठ करके भी जो रुपयों की लालसा नहीं छोड़ता वह हिमालय पर बैठा हुआ भी मानों तीव्र ताप से संतप्त हो रहा है।

लोग ठंड से बचने के लिए आग की शरण लेते हैं। अगर कहीं आग ही सर्दी देने लगे तो क्या उपाय किया जाय ? इसी प्रकार आप काम-क्रोध आदि के सताये हुए संतों के पास आवें और संत आप से भी अधिक सताये हुए हों, तब कहाँ जाएँगे ? लोग घी-शक्कर से अपनी भूख मिटाते हैं। अगर

घी-शक्कर उलटे भूख बढ़ाने लगे तो भूख का क्या इलाज किया जाय ? इसी प्रकार जो संत हजारों को तारने वाले हैं वही अगर दर-दर भटकते फिरें, जादू टोना करते फिरें तो फिर शान्ति कहां मिलेगी ? अगर हम कहे कि अमावस्या के दिन आना, ऐसा मंत्र देंगे कि सकल मनोरथ पूरे हो जाएँगे तो समझदार मनुष्य यह कहेगा कि पहले अपने हृदय को मंत्र तो दे लो, फिर हमें देना । जिसे त्यागी बनकर भी संसार कि कामना रही उसे क्या कहा जाय ? आप माला फिराते हैं संतों का समागम करते हैं, सामायिक करते हैं, फिर भी अगर दुनियां की छोटी-सी कामना भी नहीं त्याग सकते तो आपको क्या कहा जाय ? आप तीर्थ हैं । तीर्थ वह कहलाते हैं जो आप भी तिरे और साथ ही दूसरो को भी तारे ? आप भी अगर संसार के संताप से नही बच सकते तो कौन बच सकेगा ?

दशरथ कहते हैं—'अब मैं संसार के ताप से नहीं झुलसूँगा, वरन् शान्ति प्राप्त करूँगा और संसार में शान्ति का प्रसार करूँगा । मैं अपने जीवन को व्यर्थ नहीं जाने दूंगा ।'

नवयुवक संसार के भावी स्तम्भ हैं । उन पर मनुष्य-समाज का बोझा है । वे देश और जाति के आधार हैं । जिनके नाक-कान आदि का तेज अच्छा है, विकासशील हैं, जिनके पास अभी जरा नहीं आई है, जिनके हाथों-पैरों में ताकत है,

हृदय में उत्साह है, जिनमे सत्कार्य करने की स्फूर्ति है, वे नवयुवक कहलाते हैं। भगवान ने गौतम स्वामी से कहा था:

परिजूरइ ते सरीरयं, केसा पंडुरया हवंति ते।
से सव्व बलेय हायई समयं गोयम! मा पमायए ॥

अर्थात्-जब तक तेरे कान, नाक, आंख आदि इन्द्रियों की शक्ति बनी हुई है, तब तक अपना कल्याण कर ले। समय मात्र का भी प्रमाद मत कर।

भगवान ने युवकों को यह उपदेश दिया है। भगवान के उपदेश को लक्ष्य में रखते हुए यह देखना चाहिए कि आज के युवक क्या कर रहे हैं? आज के युवक ऐसे-ऐसे काम करते हैं कि जरा जल्दी आकर उन्हें थप्पड मारती है और उनके दांत गिरा देती है। वह लात मारकर उन्हें झुका देती है। क्या यौवन इसीलिए है? क्या मानव-जीवन का श्रेष्ठतर अंश यौवन इसीलिए प्राप्त हुआ है कि उसे जरा की खुराक बना दिया जाय? भगवान् का उपदेश तो यह है कि तनिक भी प्रमाद मत करो और यौवन का सदुपयोग करो।

कमर मरोड़ ने मारग चालेरे,
मूछां मरोडी वायां बल घालेरे,
भाई काल से जोर न चालेरे,
मानव डर रे।
मानव डर रे चोरसी में घर है,
रे मानव डर रे!

आप जवानी के मद मे मतवाले होकर लटकीली-लचकीली चाल चलना तो सीख गए हैं, मगर यह सोचो कि आपकी जवानी आत्मा का कल्याण करने में जाती है या भोग मे जाती है ? स्मरण रखना चाहिये कि अधिक कामभोग भोगने वालों का स्वागत बुढापा जल्दी करता है।

दशरथ सोचते हैं-'क्या यह जवानी इसलिये है कि जरा की थप्पड खाकर दाँत गिरवा लूँ ? क्या मानव-जीवन का यह हरा-भरा मनोहर बाग इसीलिये है कि इसका कच्चा-पक्का फल मौत खा जावे ? बाग सींचकर हम तैयार करें और फल दूसरा हड़प जाए ? मौत तो सभी को आती है और एक बार जो जनम चुका है उसे मरना ही पड़ेगा, मगर बारम्बार जंन्मते-मरने को धिक्कार है ! मैं बार-बार जन्म-मरण नही करूँगा।

आप गर्भी मे से आये हों और फिर आपको कोई गर्भी में भेजना चाहे तो क्या आप जाना पसन्द करेंगे ? थोड़ी देर सिर नीचा और पैर ऊँचे करके गर्भी का कष्ट सहकर तो देखो क्या अनुभव होता है ! ऐसा भयंकर दुःख कब तक सहन करते रहोगे ?

दशरथ कहते हैं-हे अमृतपुत्र ! उठ ! कुछ उद्योग कर। यह मत देख कि तेरा कौन साथी है ? यह मत सोच कि मैं राजा हूँ, बड़ा आदमी कहलाता हूं तो अकेला कैसे जाऊँ ?

साथी खोजने जाएँगे तो अमृत नहीं बन सकेगा अतएव अकेला ही चल दे।

अमृतपुत्र तो सभी हैं–आप भी हैं, मगर लोग अमृतपुत्र होकर भी विष बन रहे हैं। आप अपने को पहचानो। आप ईश्वर के पुत्र हैं। भगवान् ऋषभदेव की सन्तान हैं। इसलिये आप भी दशरथ की भांति जागो। साथीकी खोज में मत रहो। यह भावना रक्खोः—

असतो मा सदगमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मा अमृतं गमय।

साथी की खोज करने वाला कुछ नहीं कर सकता। मेरे साथ दीक्षा ग्रहण करने के उम्मीदवार पाँच थे। मेरे सांसारिक ताऊजी कहते थे कि इन सब को आज्ञा मिल जाएगी तो मैं भी तुझे दीक्षा लेने की आज्ञा दे दूंगा। तब मैं कहता–इनका और मेरा क्या साथ? मैं इनसे उम्र में छोटा होने पर भी इन्हें शिक्षा दे सकता हूं। ऐसी स्थिति में इनके लिये क्यों ठहरूं?

अन्त तक वे साथी संसार त्याग नहीं कर सके। ससार में फंसे हुए ही बुरी तरह मरे। मैंने दीक्षा धारण करली। मैंने अपने जीवन का सदुपयोग कर लिया। आप भी जीवन सुधार की ओर बढ़ो। अपने को अमृत बनाने का प्रयास करो–विप मत बनाओ। इसी में आपका कल्याण है।

क्षेमंकर मुनि का आगमन

सांसारिक गड़बड़ मिटाने के लिये और साथ ही आत्मिक शक्ति का विकास करने के लिये महापुरुषों की शरण ग्रहण करना चाहिये। राम का चरित तो प्रसिद्ध है ही, दशरथ का चरित भी कुछ कम महत्वपूर्ण नहीं है। जिस वृक्ष में राम जैसा फल लग सकता है, वह वृक्ष क्या साधारण कहा जा सकता है?

महाराज दशरथ एक बूढ़े का बुढ़ापा देखकर संयम ग्रहण करने की तैयारी में ही थे कि इतने में बागवान ने आकर उन्हे बधाई दी। उसने आकर दशरथ से कहा—'महाराज की जय हो! विजय हो! देवो के वल्लभ! आप बहुत दिनों से जिनकी प्रतीक्षा में थे, जिनके दर्शन के लिये लालायित थे और जिनका नाम सुनकर प्रसन्न होते थे, वही क्षेमंकर मुनि बाग में पधारे हैं।'

बागवान के मुख से यह प्रिय संवाद पाकर महाराज दशरथ की प्रसन्नता का पार न रहा। सोचने लगे—इधर मेरी यह भावना हुई और उधर मुनि का आगमन हुआ। अब मेरी

भावना का रहस्य वही बताएँगे। ज्ञानी जन ही भावना का असली मर्म समझते है। ज्ञानियो के सिवाय वास्तविक बात और कोई नही बता सकता।

बेल वृक्ष पर चढती है-बिना चढ़े नही रहती, होना चाहिए सामीप्य। इसी तरह दशरथ रूपी बेल भी मुनि रूपी वृक्ष पर न चढे, उनका सहारा न ले, यह कैसे हो सकता है ?

सत्संग की बड़ी महिमा है। सब ने सत्संग की महिमा गाई है। कोई भी शास्त्र उठाकर देखो, सत्संग की महिमा मिलेगी ही। सत्संग के बिना किसी भी पुरुष का कल्याण नहीं हुआ है। राम अवतार-पुरुष माने जाते हैं। जैनो ने, वैष्णवों ने यहां तक कि मुसलमानों ने भी उनके चरित का वर्णन किया है। ऐसे महापुरुषो को भी क्या सत्संग की आवश्यकता थी ? पर राम स्वयं क्या कहते है ? सुनिए।

तुलसीदासजी कहते हैं—राम सत्ताईस वर्ष के थे और सीता अठारह वर्ष की थी। अर्थात् दोनों भर जवानी में थे। उस समय राम सीता को उपदेश दे रहे थे और सीता नम्रता-पूर्वक उपदेश सुन रही थी। इतने मे ही एक तेजस्वी पुरुष आता दिखाई दिया। राम ने कहा—यह और कोई नहीं, नारदजी हैं। राम उठकर नारद के सामने गए और उनका सत्कार करके उन्हें ऊँचे आसन पर बिठलाया। तत्पश्चात् राम उनसे कहने लगे –

सुन मुनि विषयनिरत जे प्राणी, हम सरीखे देह-अभिमानी।
तिनके सत्संगति तब होई, करहिं कृपा जा पर प्रभु सोई॥
ता कहँ मुनि नाहिन भव आगे, जेहि बिन हेतु संत प्रिय लागे।
ताते नारद ! मैं बडभागी, यद्यपि गृह-कुटुम्ब अनुरागी॥

राम ने किन शब्दो में नारद का सम्मान किया है? इसी से संत पुरुष के माहात्म्य का खयाल आ सकता है। रामचन्द्र जैसे संत-शिरोमणि महापुरुष भी संत की बड़ाई करते है और संत-समागम होने के कारण अपने आपको सौभाग्यशाली समझते हैं।

राम नारद से कहते हैं—हे ऋषि ! हम सरीखे विषयानुरक्त देहाभिमानी के भाग्य जब अच्छे होते है, जब प्रभु की कृपा होती है, जब पुण्यकर्म का उदय होता है, तभी सत्संग का अवसर मिलता है। अच्छे भाग्य के विना सन्त-समागम नहीं होता। विना किसी स्वार्थ के सन्तो पर प्रेम हो तो समझना चाहिए कि जन्म-मरण का चक्र समाप्त होने वाला है।

राम अपने को 'विषयरत' कहकर संसार में फँसे हुए विषयलोलुप लोगों को शिक्षा दे रहे हैं। वे अपने आपको देहाभिमानी भी कहते हैं। देहाभिमान का अर्थ है-देह पर अहंकार होना। दुबला होने पर दुःख मानना और तगड़ा होने पर अभिमान करना भी देहाभिमान है। जैसे एम. ए

परीक्षा उत्तीर्ण शिक्षक छोटे बालक को पढ़ाते समय ए-बी-सी-डी रटाता है, उसी प्रकार राम भी सब बातें अपने ऊपर घटित करके ही कह रहे हैं।

राम कहते हैं-बिना हेतु सत्संग पर अनुराग होना बड़े भाग्य की बात है। मतलब की मनुहार तो सभी करते हैं, पर बिना स्वार्थ कौन किसे पूछता है? यो तो दुकानदार को दो पैसे का नमक लेने के लिए आया हुआ ग्राहक भी प्रिय लगता है, लेकिन जिनसे कोई ऐहिक प्रयोजन नहीं है, जादू-टोना या धन दौलत का स्वार्थ नहीं है, उन संतो पर प्रेम होने पर समझना चाहिए कि अच्छे भाग्य हैं। सिद्धान्त में कहा है:—

> दुल्लहाओ मुहादाई, मुहाजीवी वि दुल्लहा।
> मुहादाई मुहाजीवी दो वि गच्छन्ति सुग्गइं॥
>
> —दसवैकालिक

निष्काम भाव से सतों की सेवा करने वाले, उन्हें आहार पानी औषध आदि देने वाले और निष्काम जीवन जीने वाले (संत) विरले ही होते हैं। बहुत से संत कहलाने वाले भी यह सोचते हैं कि भक्त की मुराद पूरी नहीं करेंगे तो वह हमारे भक्त कैसे रहेंगे? इसलिए उन्हें कुछ यन्त्र-मंत्र देना चाहिए। ऐसा करने वालों मे साधुता-संतपन-नहीं है।

कई जगह यह भी होता है कि कोई लब्धप्रतिष्ठ, ख्यातनामा साधु आता है तो उस पर अधिक प्रेम होता है और छोटे साधु के आने पर कम। ऐसे दातार कम होंगे जो बिना मतलब अर्थात् निष्काम भाव से दे और ऐसे भी दातार हैं, जिन्होंने सत्संग के लिए अपना तन, मन, धन अर्पण कर दिया है।

सुना है—कई लोग अपने को श्रीनाथजी के लिए अर्पित कर देते हैं। ऐसे लोग अपने ही हाथ से बनाते खाते हैं, किसी के सहारे नहीं रहते। क्या आप भी स्वयं को महात्मा को समर्पण करोगे? अर्थात् इस प्रकार का अतिथि संविभाग व्रत धारण करोगे कि सत पुरुष जिस वस्तु का सेवन नहीं करते, हम भी वह वस्तु काम मे नहीं लेंगे? आप मुनि को अचित्त पानी देना चाहे भी पर घर में अगर वह होगा ही नहीं तो आप कहां से देंगे? इस व्रत का पालन करने के लिए श्रावक सचित्त खान-पान का भी त्याग करता है। जो श्रावक सचित्त खान-पान का त्यागी होगा उसके घर से शायद ही कोई साधु खाली लौटेगा।

भोजन-पानी के विषय मे विवेक की बहुत आवश्यकता है। जिन वस्तुओं में कीड़े निकलते हैं उन वस्तुओं को कोई कैसे खा जाते होंगे? और भोजन में लटें निकलना क्या विवेक है? अधिक दिनो के पिसे आटे और मिर्च आदि मसाले

मे अण्डे हो जाते हैं। लेकिन सीधी (तैयार खरीदी हुई) चीज खाने वाले गृहस्थ समझते हैं कि हम तो सीधी चीज खाते हैं सो पाप से बच रहे है। आटा पीस-पीस कर पुराने आटे में मिलाते जाना और उस संग्रह को समाप्त न होने देना क्या ठीक है? क्या उस पुराने आटे मे जीव जन्तु नहीं पड़ जाते होंगे? गृहस्थों को इस सम्बन्ध में खूब विवेक से काम लेना चाहिए। अविवेकी धर्म का भलीभांति पालन नहीं कर सकता और न कल्याण का भागी ही हो सकता है।

तात्पर्य यह है कि विना प्रयोजन संत से प्रेम होना सौभाग्य की वात है। मैं अगर व्याख्यान सुनाने के बदले श्रोताओं से एक एक पैसा लेने लगूँ तो मेरा अनमोल व्याख्यान मोल का हो जाएगा। लेकिन अगर आप मेरे पास धन दौलत के लालच मे आएँ तो यह क्या ठीक होगा? विना गरज के सत्संग की भावना बढाओ तो बस बेडा पार है।

राम, नारद से कहते हैं—हे ऋषि! आपके आने से मैं बड़भागी हो गया। यद्यपि मैं घर कुटुम्ब वाला हूं, फिर भी आपके आने से भाग्यवान हूँ।

नारद वीणा बजाने वाले थे। आकाश मे उड़ने वाले थे। कई तरह के कौतुक किया करते थे। उन्हे कलह कराने में मजा आता था और बड़े चाव से तमाशा देखते थे। जैन

साधु अठारहों प्रकार के पापों के त्यागी होते हैं। दशरथ अगर ऐसे साधु की भक्ति करते है तो यह बात किसे पसन्द न आएगी ?

राजा दशरथ क्षेमंकर मुनि का दर्शन करने गये। अब दशरथ किस प्रकार क्षेमकर मुनि की गोद मे बैठते है, यह देखकर आप भी अपनी भावना दौडाइए।

उस ग्रन्थ रचने वाले को धन्य है, जिसने हमारे लिए इस आदर्श और मंगलमय वस्तु का संग्रह किया है। उसका हमारे ऊपर अपरिमित उपहार है। उसकी कृपा न होती तो हम दशरथ या क्षेमंकर को कैसे जानते ?

दशरथ की कथा से साधारण पाठक यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि दशरथ जैसे राजा भी सत्सग को आनन्ददायक मानते थे तो हम भी सत्संग का लाभ क्यों न उठावें ? राम ने अपने को छोटा बतलाया है और सत्संग की महिमा बडी बतलाई है। राम की तरह लघुता धारण करने से ही सच्ची महत्ता मिलती है।

एक रोगी को, जो मोहताज है और जिसका रोग भी बढा हुआ है किसी डाक्टर ने नीरोग कर दिया। अब विचारणीय यह है कि किसने किस पर उपकार किया है ? समझदार डाक्टर तो यही कहेगा कि रोगी ने हम पर उपकार किया है। यदि हम स्वर्ग में होते तो वहाँ कोई रोगी न

मिलता और न हमे सेवा करने का अवसर ही प्राप्त होता। मैं मर्त्यलोक मे हूं अतएव मेरा कर्त्तव्य यही है कि मैं रोगियों की सेवा करूँ। मै रोगी का उपकार मानूँगा। मैं बदला नहीं चाहता।

दर्दे दिल के वास्ते, पैदा किया इन्सान को,
वर्ना तायत के लिए कुछ कम न थे कुरों बया ॥

आप भी यह भावना धारण कीजिए, पर कठिनाई तो यह है—

कहानी मिश्री खांड है रहनी विष की लोय।
कहानी सी रहनी रहे, ऐसा विरला कोय ॥

क्षेमंकर मुनि का आगमन सुनकर दशरथ की कली-कली खिल गई। उन्होंने बड़े उत्साह और चाव के साथ मुनि के दर्शन करने की तैयारी की। उन्हे ऐसा भास होने लगा, मानो चिर अभिलषित वस्तु हस्तगत होने वाली है। महाराज दशरथ, मुनिवर क्षेमंकर की सेवा में उपस्थित हुए। उनका वैभव देखकर चकित हो गये। मुनि की प्रशांत मुख-मुद्रा आन्तरिक तेज से दैदीप्यमान थी। उनके उन्नत ललाट पर स्पष्ट खिची हुई तीन रेखाये निर्मल रत्नत्रय के अस्तित्व को सूचित कर रही थीं या तीन गुप्तियों का परिचय दे रही थीं, या मुनि की त्रिलोकवत्सलता को व्यक्त रही थीं, यह निर्णय करना कठिन है नेत्रों मे विराग की लाली होने पर भी एक

अलौकिक सौम्यता, दीप्ति और संयम की धवलता थी। मुनि की दृष्टि नाक के अग्रभाग पर ठहरी थी, जिससे ऐसा प्रतीत होता था कि संसार की ओर से उन्होंने अपनी दृष्टि हटा ली है और अन्तरात्मा की ओर ही वह देख रहे हैं। कृश काय गौर वर्ण और प्रशस्त लक्षणों से सम्पन्न मुनि की शरीर संपत्ति दर्शनीय थी।

राजा दशरथ की आँखें मुनिवर का यह भव्य रूप देखकर निहाल हो गईं। उन्हें जान पड़ा, जैसे तीन लोक की समग्र सात्विकता और पवित्रता यहीं आकर इकट्ठी हो गई है। दशरथ यह सब देखकर मुनि के चरणों में झुक पड़े। विधिपूर्वक वन्दना-नमस्कार करने के पश्चात, विनयपूर्वक मुनि के सामने बैठ गये-न बहुत दूर, न बहुत पास।

मुनिराज और महाराज दशरथ की जो बातचीत हुई, वह बड़ी ही महत्वपूर्ण है। एक ओर राजर्षि दशरथ हैं और दूसरी ओर महर्षि क्षेमंकर। दोनों महानुभावों के वार्त्तालाप का वर्णन करना बड़ा ही कठिन काम है। फिर भी ज्ञानियो की दी हुई वस्तु आपके सामने रखता हूं। मेरा काम तो एक हरकारे का-सा है, जो दूसरो की भेजी हुई चिट्ठियों को तकसीम कर देता है। मैं ज्ञानियों की दी हुई वस्तु आपके पास पहुँचाता हूँ।

कहा जा चुका है कि मुनि को देखकर दशरथ को अपार

हर्ष हुआ। राजा के हृदय में मुनि के प्रति अनन्य प्रेम था। जिनके हृदय में मुनि के प्रति अनन्य प्रेम हो और जो यह समझते हो कि मुनि के समान संसार में और कोई हित कर नहीं है, समझना चाहिए कि ऐसे लोग अपना भव मिटा रहे हैं। दशरथ भी मुनि को बड़ी श्रद्धा और भक्ति की दृष्टि से देख रहे हैं। मुनि भी विचार करते है कि यह बड़ा राजा है। राजा के ऊपर बड़े-बड़े कार्यों का बोझ रहता है। फिर भी यह मेरे पास आया है तो इसे क्या देना चाहिए?

किसी पर कम और किसी पर ज्यादा बोझा होता है। पहले ही उसी को हल्का किया जाता है, जिस पर ज्यादा बोझ हो। इन राजा महाराजाओ ने जगत् का बोझ अपने ऊपर उठा रक्खा है। अतएव इन्हे धर्म देकर इनका उत्थान करना है। इनका पतन जगत् का पतन है और इनका उत्थान जगत का उत्थान है अतएव राजा को पहले धर्मोपदेश देना चाहिए।

राजा लोग पूर्वोपार्जित पुण्य लेकर आते हैं। प्रजा उनका अनुकरण करती है। कहावत है—'यथा राजा तथा प्रजा।' अतएव धर्म देकर पहले उन्हे सुधारना मुनि का कर्त्तव्य है।

उपदेश-श्रवण

क्षेमंकर मुनि राजा दशरथ से कहने लगे—'कौशलेश! हे नरेन्द्रकुल-कमल-दिवाकर! तुम परम्परा की उस गादी पर हो,

जो भगवान् ऋषभदेव के समय से चली आई है। भगवान् ऋषभदेव ने संसार को साची रखकर जो काम किया है, वह एक ही अंश से न रह जाए, तुम्हारे द्वारा उसके दोनों अंशों की पूर्ति होनी चाहिये। यह सत्य है कि तुमने राज्य को खूब उन्नत बनाया है और पुत्र को राज्य करने योग्य कर दिया है, लेकिन भूलना मत कि तुम्हारे कार्य का यह एक ही अंश पूरा हुआ है। तुम्हारे पुत्र राज्य की धुरा उठाने योग्य हो गये है, फिर भी इससे भगवान् के दोनों काम पूर्ण नहीं हो जाते। दूसरा अंश अभी तक अपूर्ण है। उसे पूर्ण करना चाहिए। अब तुम्हें अनन्त भाव-राज्य को सुधारने की तैयारी आरम्भ कर देनी चाहिए।

बुद्ध ने विचार किया था कि जब तक राजा-महाराजा धर्म को धारण न करेंगे और केवल तलवार के बल पर शांति स्थापित करने की चेष्टा करते रहेंगे तब तक वास्तविक और स्थायी शांति नहीं हो सकती। यह विचार कर उसने यह नियम बनाया था कि राजा के दो पुत्रों में से एक संयम-दीक्षा धारण करे और एक राज्य का भार वहन करे। अर्थात् शांति रखने के लिए एक धर्म के बल का उपयोग करे और दूसरा नीति से राज्य करे। इस प्रकार राजबल और धर्मबल से संसार की गाड़ी अच्छी तरह चल सकती है।

मुनि कहते हैं-हे राजन्! जो बात भगवान् ऋषभदेव ने अपने पुत्रों से कही थी वही मैं तुमसे कहता हूँ। उसे ध्यान

पूर्वक सुनो और फिर अपना कर्त्तव्य स्थिर करो।

भ० ऋषभदेव के पुत्रों का उदाहरण

भगवान् ऋषभदेव ने अपने पुत्रों से जो बात कही थी, वह सूयगडांग सूत्र के दूसरे अध्याय में लिखी है। भागवत के पांचवें स्कंध में भी है। सूयगडांग सूत्र में कहा है:—

> संबुज्झह किं न बुज्झह,
> संबोही खलु पेच्च दुल्लहा।
> नो हूवणमंति राइओ,
> नो सुलहं पुणरावि जीवियं॥

भगवान् ऋषभदेव के एक सौ पुत्र थे। दीक्षा लेने से पहले भगवान् ने अपने सब पुत्रों को राज्य का बँटवारा करके अलग कर दिया था। लेकिन भरत ने चक्रवर्त्ती होने की इच्छा की। भरत ने सोचा—मैं चक्रवर्त्ती तभी हो सकता हूँ, जब भारत क्षेत्र के छह खडों में से एक अंगुल भूमि भी दूसरे के अधिकार में न रहे। सभी पर मेरा आधिपत्य हो। यह सोचकर भरत ने अपने भाइयों के साथ भाई-भाई का सम्बन्ध न रखकर स्वामी-सेवक का सम्बन्ध स्थापित करना चाहा। बाहुबली को छोड़कर शेष ९८ भाइयों ने विचार किया कि यह भरत की अनीति है। हम पिता का दिया हुआ राज्य करेंगे, भरत का दिया हुआ राज्य नहीं करेंगे। भरत कहते

है-मेरा दिया हुआ राज्य भोगो, पर यह न होगा। भरत बलिष्ठ है सही, पर हम भी कायर नहीं हैं। हम भी भगवान् ऋषभदेव के पुत्र हैं। भले ही इस शरीर के टुकड़े हो जाएँ, हम भरत का आधिपत्य नहीं मानेंगे। अतएव भरत का सामना करने के लिये सेना सजानी चाहिये।

भ० ऋषभदेव के अट्ठानवे पुत्रों ने यह विचार किया। लेकिन फिर सोचा कि हमें पिताजी ने राज्य दिया है और सौभाग्य से अभी तक वे मौजूद हैं। इस कारण उनसे सलाह लिये विना लड़ाई लड़ना उचित नहीं है। उनसे सलाह लेकर ही लड़ाई करना ठीक होगा। अगर उनका आदेश होगा कि भरत के सामने झुक जाओ तो हमें झुक जाना होगा। उस दशा में हमारी कोई तोहीन नहीं होगी, क्योंकि हम भरत के झुकाये नहीं झुकेंगे, पिताजी के झुकाए झुकेंगे। अगर पिताजी ने हमें पहले ही भरत के आधीन कर दिया होता तो आखिर उनकी आधीनता में रहना ही पड़ता। हाँ, अगर पिताजी अड़े रहने का आदेश देंगे तो हर्गिज नहीं झुकेंगे। फिर संसार की कोई भी शक्ति हमें नहीं झुका सकेगी। पिताजी की सलाह लेने के बाद इन्द्र के रूठने की भी हमें पर्वाह नहीं।

आखिर यही विचार पक्का हुआ। सब भाई मिलकर भगवान् ऋषभदेव के समीप पहुंचे। भगवान् ने उन्हें देखते

ही कहा–पुत्रो ! आज तुम भरत के सताये हुए मेरे पास आये हो। भरत तुम्हारे राज्य पर अपनी मुहर लगाना चाहता है, जिसे मैंने तुम्हें प्रदान किया है। वह अब भाई-भाई के बदले स्वामी-सेवक का सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है। लेकिन मैंने तुम्हारे भीतर जो स्वाधीनता की भावना भरी है, उसे कहाँ निकाल फेंकोगे? क्या तुम सब भरत के गुलाम होकर रहोगे?

भरत के अधीन होकर रहना तुम्हें बुरा लगे, यह स्वाभाविक है। लेकिन राज्य का अधिकारी होकर भी क्या कोई स्वाधीन रह सकता है? राज्य का अधिपति भी अगर स्वाधीन होता तो मैं ही क्यों राज्य त्यागता? जिस चीज़ के लिए लोग अपनी मनुष्यता को भूलकर कुत्ते की तरह लड़ते हैं और जिसे मैंने तुच्छ समझ कर तज दिया है, क्या उसी चीज के लिए तुम लोग, मेरे पुत्र होकर भी, आपस में लड़ोगे? बच्चो! तुम अपना राज्य भोगते हुए भी सचमुच की स्वाधीनता नहीं पा सकते। अगर सच्ची स्वाधीनता प्राप्त करना है तो मेरे पथ का अनुसरण करो। राज्य को लात मार दो। मैं सच्चा, शाश्वत और सुन्दर राज्य पाने का उपाय बतलाता हूं। अब मैं वह पिता नहीं रहा कि ज़मीन का कुछ टुकड़ा देकर तुम्हें क्षणिक शान्ति पहुँचाऊँ और एक प्रकार से तुम्हें भुलावे में डालूँ। अब मैं तुम्हारे लिए त्रिलोकी का राज्य लाया हूँ। इसलिए बोध प्राप्त करो। यह समय

लड़ाई का नहीं है। जागृति का यह अनमोल अवसर है। भरत की दशा देखकर ही तुम्हे बोध पाना चाहिये। उसकी दशा दयनीय है। उसकी लोभवृति देखकर तुम्हे समझना चाहिए कि राज्य पा लेने पर भी सच्ची शान्ति प्राप्त नहीं होती। राज्य के लोभ ने उसे ठग लिया है। तुम जानबूझ कर क्यों ठगाई में आना चाहते हो? अक्षय साम्राज्य का अधिकार तुम्हारा स्वागत करने को उद्यत है। उस ओर पैर क्यों नहीं बढ़ाते ?

यह सूयगडांग सूत्र की गाथा का भाव है। वेदव्यासजी भागवत मे क्या कहते हैं, यह भी सुन लीजिए:—

> नायं देहा देहभाजां नृलोके,
> कष्टान् कामान् नाहते विड्भुजां ये
> तपो दिव्यं पुत्रकायेन सत्वं,
> सिद्धयेद्यस्माद् ब्रह्मसौख्यं त्वनन्तम् ॥

अरे पुत्रो! देहधारियों की यह देह उन भोगो को भोगने के लिए नहीं है, जिन्हें प्राप्त करने में घोर कष्ट सहन करना पड़ता है, भोगने मे भी कष्ट सहन करना पड़ता है और भोगने के बाद भी कष्ट सहन करना पड़ता है। ऐसे कष्टमय काम भोग भोगने के लिये यह काया नहीं मिली है। अतएव इन भोगों पर गर्व मत करो। यह भोग तो विष्टा खाने वाले

पशु भी भोगते हैं। तुम कह सकते हो कि हम राजपुत्रों का शरीर अगर भोग भोगने के लिये नहीं तो किसलिये है? हे पुत्रो! यह शरीर वह दिव्य तप करने के लिये है, जिस तपसे अन्तःकरण शुद्ध होता है और शुद्ध अन्तःकरण से अनन्त ब्रह्म सुख की प्राप्ति होती है।

क्षेमंकर मुनि कहते हैं—हे राजन् दशरथ! भगवान ऋषभदेव की एक ही बात से उनके अट्ठानवे पुत्र जाग गये। उनका मोह नष्ट हो गया। वे भगवान् से कहने लगे—प्रभो! हम तो पहले ही यह निश्चय करके आये हैं कि आपका आदेश हमें मान्य होगा। जो आप कहेंगे वही हम करेंगे। आपकी सलाह सही है। राज्य के जिस टुकड़े का भरत को लोभ हुआ है, वह अगर हमने भरत को जीतकर बचा भी लिया तो उससे क्या होगा? और यह भी क्या असंभव है कि हम उसकी तलवार से मारे जाएँ? अतएव हम आपके आदेश को शिरोधार्य करके अक्षय राज्य ही प्राप्त करना चाहते हैं।

हे राजन्! अपने पूर्वजों के इस वृत्तांत से तुम भी अपने लिए मार्ग खोज सकते हो। भगवान् और उनके पुत्रों की इस कथा को मथकर मक्खन निकालो और उससे लाभ उठाओ।

मुनिवर क्षेमंकर द्वारा यह वृतांत सुनकर दशरथ कहने लगे—हम उस महिमा मंडित वंश में उत्पन्न हुए हैं, जिसमें के महापुरुष शक्ति और सत्य का पक्ष होते हुए भी राज्य को तज

गए। भगवान् के तनिक से उपदेश से अट्ठानवे भाई मुनि बन गए। उसी बड़भागी वंश में मेरा जन्म हुआ है।

राजा दशरथ मुनिराज से पूछने लगे—'मुनिवर! पूर्वजों की गौरवगाथा सुनते-सुनते संतोष नहीं होता। इससे साहस, उत्साह और ढाढस मिलता है। कृपया यह और बतलाइए कि अट्ठानवे भाइयों के एक साथ मुनि बन जाने के पश्चात् क्या हुआ?'

चक्रवर्ती भरत का पश्चात्ताप

मुनि ने कहा—भरत को चक्रवर्ती पद का गर्व हो गया था। वह अपने भाइयों पर भी शासन-सत्ता स्थापित करना चाहता था। उसको समझाने का दूसरा कोई उपाय नहीं था। पर जब अट्ठानवे भाइयों ने राज्य त्याग दिया तब भरत की बुद्धि ठिकाने आई। भरत को मालूम हुआ कि मेरा दूत पहुँचने के बाद मेरे भाई पिताजी के पास गए और पिताजी के उपदेश से राजपाट छोड़कर मुनि बन गए हैं। यह सुनते ही भरत मूर्छित होकर सिंहासन से नीचे ढल पड़ा। जब होश में आया तो अपने आपको धिक्कारने लगा। कहने लगा—मुझे धिक्कार है! मेरे राजपाट को, मेरे पद को और मेरे वैभव को धिक्कार है! अविवेक के चक्कर में पड़कर मैंने घोर अनर्थ कर डाला है। मैं बन्धुद्रोही हूँ। पिता

के प्रति मैंने विश्वासघात किया, भाइयों को सताया और जगत् में निन्दनीय कहलाया ! हा तृष्णा ! तू मुझे ले डूबी ! मैं क्या करने चला और क्या हो गया ? मैं महान् बनने की मृगतृष्णा में फँसकर और हीन हो गया ! सच्चा पद तो उन भाइयो को ही मिला ।

मुनि कहते हैं—राजन् ! भरत इतना पश्चात्ताप करके ही नहीं रह गये । वे दौड़े-दौड़े भगवान् के पास पहुँचे । उस समय भगवान् अयोध्या मे ही विराजमान थे । अट्ठानवे भाइयों ने अयोध्या मे ही दीक्षा धारण की थी । भरत बिना किसी साथी के अकबकाये हुए से उसी प्रकार भगवान् के पास पहुँचे, जैसे घर में आग लगने पर लोग बाहर भागते हैं ! भगवान् के पास पहुँच कर उन्होंने भगवान् को नमस्कार किया और नवदीक्षित भाइयो को भी नमस्कार किया । अपने भाइयों को साधुवेष में देखकर स्नेह की तीव्रता के कारण भरत की आँखो में आंसू बहने लगे । कंठ गद्गद हो गया । वह बोले—

वीर सुनो मम वीनति, व्हाला छोड़ी मत जाओ ।
नयणा थी झरना झरे, बोले अति विललावे ॥
चक्र चक्र मुझने दियो, भाई-प्रेम भुलाणो ।
राजनपति राजा बन्यो, आज नहीं है ठिकाणो ।

चक्रवर्ती भरत एक साधारण दीन पुरुष की भांति रोते

हुए-विलाप करते हुए अपने भाइयों से कहने लगे—भाईयो ! यद्यपि संसार-त्याग कर दीक्षा लेना उत्तम है और वह दिन धन्य होगा जब मैं भी सब कुछ त्याग कर संयम-दीक्षा अंगीकार करूँगा, लेकिन आपका इस समय दीक्षा लेना मुझे बदनाम करना है। आप मुझे लोभी और तुच्छ बनाकर मत छोड़ जाए। आपने जो कदम उठाया है, उससे मुझे समझ आ गई है। पहले मेरे शस्त्रागार में छह खण्ड का आधिपत्य दिलाने वाला चक्ररत्न उत्पन्न हुआ। देवसेवित उस चक्ररत्न ने मेरा मस्तक फिरा दिया।'

घूमते हुए कुम्भार के चाक पर जो आदमी बैठता है उसे ऐसा चक्कर आता है कि उसकी दृष्टि में सारा संसार घूमता है। पानी बरसते समय बच्चे चक्कर लगाते हैं और गिर जाते हैं तो उन्हें भी ऐसा जान पड़ता है कि सारा संसार घूम रहा है। इस तरह आया हुआ चक्कर तो चक्कर ही मालूम होता है किन्तु जब धन, विद्या और शस्त्रबल आदि का चक्कर आता है तब घूमता तो है मनुष्य आप ही, मगर समझता वह यह है कि संसार घूम रहा है।

भरत कहते हैं—'मैं भी इसी तरह चक्र से घूम गया। चक्र ने मुझे चक्र में डाल दिया। उसी चक्कर ने भ्रातृप्रेम भुलाकर स्वामी-सेवक सम्बन्ध स्थापित करने की भावना उत्पन्न कर दी। आपने मेरा दिमाग ठिकाने ला दिया है। अब आप मुझे कलंक से बचाइए।'

क्षेमंकर मुनि राजा दशरथ से कहते हैं—तुम अपने पूर्वजों के चरित पर ध्यान दो। तुम्हारे पूर्वज राज्य के जाल में फँसे-फँसे ही नहीं मरे वरन् उन्होंने धर्म की धुरा धारण करके जगत् के समक्ष लोकोत्तर आदर्श भी उपस्थित किया था। आप भी उन्हीं के वंशज है। आप भी वीर हैं अतएव धर्म को धारण करके संसार के सामने धर्म की महिमा प्रकट करो। आप जैसे वीरो के बिना धर्म की उन्नति नहीं होगी। आपके पूर्वज के नाम पर प्रसिद्ध इस भारत मे धर्म को फैलाओ और स्व-पर कल्याण करो।

भगवान् ऋषभदेव के पुत्र चक्रवर्ती भरत के नाम पर इस देश की 'भारत' के नाम से प्रसिद्धि हुई है। भरत ने इसके सम्पूर्ण छह खडों पर एक छत्र राज्य किया था, इसी कारण यह भारत या भरतखंड कहलाया है। उन भरत को भी शांति का मार्ग दिखलाने वाले उनके ९८ भाई थे और साथ ही भरत ने उन्हे शान्ति का मार्ग दिखलाया था। यद्यपि भरत का उद्देश्य उन्हें शांति मार्ग दिखलाने का नहीं था, फिर भी परोक्ष रूप मे वह निमित्त तो बने ही। ज्ञानी जन शुक्ल पक्ष ही ग्रहण करते हैं अर्थात् दूसरे के दोष न देखकर गुण ही ग्रहण करते हैं। ज्ञानियो का कथन है कि हमें राग-द्वेष में पड़ने की आवश्यकता नहीं है। जिससे आत्मा का उत्थान हो वह सब वस्तु हितकारक है और जो अहितकर है, वही बुरी

है। भरत ने तृष्णा के वश होकर अपने ९८ भाइयों को अशांत करना चाहा था, परन्तु धन्य है भगवान ऋषभदेव जिनके उपदेश से उन्होंने स्वयं शांति प्राप्त की और साथ ही संसार को भी शांति का मार्ग सुझाया और भरत का भी मान मर्दन कर डाला।

आज भी दो भाइयों मे से अगर एक भाई इस प्रकार के झगड़े के कारण मुनि वन जाए तो क्या दूसरे भाई का हृदय नहीं काँप उठेगा? जरा सी जिद्द छोड देने पर शान्ति हो जाती है तो संसार छोड देने पर शांति क्यों नहीं होगी?

भरत अपने भाइयों से कहते है।

वीर सुणो मम वीनती, व्हाला छोडी मत जाओ।
नयणा थी झरणा झरे, भरत खड़ो विललावे॥

भरत चक्रवर्त्ती राजा था। सेना और रत्नो के बल से प्रबल था कहता था-मेरी आन न मानने वाला कौन है? भरत की आन और भरत के प्राण बराबर हैं। मेरी आन न मानने वाला मेरे प्राण-हरण का प्रयत्न करता है। इस पृथ्वी पर कौन ऐसा वीर है जो मेरी आज्ञा को उल्लंघन कर सकता है? इस प्रकार बलिष्ठ और गर्विष्ठ भरत ने अपने भाइयों पर हुकूमत चलानी चाही थी, लेकिन अब वहीं भरत हुकूमत के बदले मिन्नत कर रहा है। अब उसकी आन मिन्नत में परिणत हो गई है और वह अपने पाप की आलोचना कर रहा है।

भरत की तरह आप को भी आलोचना करनी चाहिए। आप कह सकते हैं-हमने भरत की तरह अपने भाइयों पर हुकूमत नहीं जमाई है और न भाइयों पर जुल्म ही किया है। लेकिन सभी मनुष्य आपके भाई ही तो हैं। जिनसे सहायता मिलती है वे सब भाई हैं। मनुष्य को मनुष्य से तो सहायता मिलती ही है। बल्कि पृथ्वी पर जितने भी पदार्थ हैं उन सब की सहायता मिलने पर ही जीवन निभता है। जल, पवन, आग, वनस्पति; पशु, पक्षी और मनुष्य की सहायता बिना कौन जी सकता है? जिनकी सहायता पर आपका जीवन टिका हुआ है, देखना चाहिए कि उनके साथ हमारा व्यवहार कैसा है?

भरत कहते हैं—भाइयो! चक्र ने मुझे चक्कर में डाल दिया। शस्त्रागार में उस चक्र के साथ एक छत्र भी उत्पन्न हुआ था। वह छत्र कहता था कि मेरे सामने छह खण्ड में दूसरा छत्र नहीं रह सकता। इसलिये तुम सम्पूर्ण भारत क्षेत्र के स्वामी हो।

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र में उस छत्री की बहुत महिमा बतलाई है। वहां कहा है कि उस छत्र में ९८ हजार सोने की ताड़ियां हैं और ऊपर रत्नों का छत्ता है।

धूप या वर्षा के समय साधारण से साधारण आदमी को मामूली छाता मिल जाता है तो उसके गर्व का पार नहीं

रहता। फिर जिस छत्र से सम्पूर्ण भरत क्षेत्र का राज्य मिलता हो, वह क्षेत्र पाकर भरत को अगर गर्व हुआ तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? भरत कहते हैं—

छत्र ताप हरता कह्यो भाई ताप चढायो
दंडे दंडित हूँ हुओ जग अपयश छायो।

आप यह विनती किस वीर (भाई) को सुनाओगे ? आप मेरे चेले तो फिर बनना, पहले भाई बनो। क्या आप मेरे भाई नहीं हैं ? मैं आपका अन्न-जल खाता-पीता हूं। आपके दिये हुए मकान में रहता हूँ। इस प्रकार मुझे आपकी सहायता मिल रही है। फिर आप मेरे भाई क्यों नहीं हैं ? और क्या मैं आपका भाई नहीं हूँ ? दुर्बल हूँ, फिर भी आपको उपदेश सुनाता हूं ? फिर मैं आपका भाई क्यों नहीं ? आप भी भरत की तरह विचार करो कि भाई का प्रेम न छूटे।

भरत कहते हैं—'भाइयो ! मेरे यहां छत्र आया। मैंने सोचा-मेरे घर यह छत्र आया है, मुझे छह खण्ड की साहबी मिलेगी। फिर मेरे घर किस बात की कमी रह सकती है ? यह छत्र मेरा ताप हरेगा मैं सब लोगों को इस की छाया में लाऊँगा। लेकिन इस छत्र ने क्या किया, यह भेद मैंने आज पाया ! अगर मैंने एकच्छत्र राजा बनने का विचार न किया होता तो आपको क्यों कष्ट होता ? और आप जिस मस्तक पर मुकुट धारण करके शोभित होते थे, उसके बाल भी

क्यों उखाड़ फैंकते ? यह सब इसी छत्र की बदौलत हुआ। जिस छत्र ने मेरे भाइयों को इस स्थिति में पहुँचा दिया वह छत्र मेरे किस काम का ?

छतरी तो आप भी लगाते हैं। आपकी छतरी में भरत के छत्र की तरह कोई करामात तो नहीं है फिर भी उस छतरी के पीछे अपने भाइयों को सताने का इरादा तो नहीं करते है ? कोट और बूट के साथ छतरी मिल जाने पर घमंड तो नहीं करते ? बहुतेरे तो उस समय कीड़ों मकोड़ों की कौन कहे, मुनियों तक को नहीं देखते ! आप की छतरी तो इस तरह दूसरों को सताने के लिये नहीं है ?

भरत कहते हैं—धिक्कार है ऐसे छत्र को, जिसके कारण मैंने अपने प्यारे भाइयों को सताया !

भरत फिर कहने लगे—मेरे यहां एक दण्ड रत्न भी उत्पन्न हुआ है। वह मेरे शरीर से आधा हाथ ऊँचा अर्थात चार हाथ का है। देव उसकी सेवा करते हैं। उसके प्रताप से जहाँ मैं जाता हूँ, मेरे आगे सौ कोस तक सड़क बन जाती है। मेरी आज्ञा होने पर उसके द्वारा मजबूत से मजबूत किवाड़ भी फड़ाक से खुल जाते हैं।

दण्डनीति प्रजा में अमन चैन कायम रखने के लिये है। लेकिन मैं अपने भाइयो को ही दंड के लिये तैयार हो गया—अपने सामने झुकाने को तैयार हो गया। माफी

माँगना भी दंड है और झुक जाना भी दंड है। मैं उस दंड-रत्न के कारण आपको झुकाना चाहता था, लेकिन आप की मुखमुद्रा देखकर मैं समझ गया हूं कि उस दंड रत्न ने मुझ को ही झुका दिया है। आपने मुझ को भलीभाँति समझा दिया है कि उस दंडरत्न से मैं स्वयंमेव दंडित हुआ हूं।'

मित्रो! कई दंड धरे रह गए और दंड का अभिमान करने वाले दंडी चले गये अतएव अगर आपके हाथ में दंड है-सत्ता है-तो आप उसका अभिमान न करें और न दुरुपयोग करें। सत्ताधीश को सत्ता का दुरुपयोग न होने देने की सदा सावधानी रखनी चाहिए। न करने वाला दूसरों को दंड देने के बदले स्वयं ही दंड का पात्र बन जाता है। उचित रूप से दंड का प्रयोग न करने वाला दंडित होता है। उसका अपमान होता है।

नरि मुझ गेह प्रकाशियो मन में हरषायो।
तुम देखत अहो बान्धवा! ज्ञान हिरदा में आयो॥

राजा भरत के भंडार में मणिरत्न उत्पन्न हुआ था। शास्त्र में उसकी बड़ी महिमा बतलाई गई है। चक्रवर्त्ती के हाथी के कुंभ पर उसे रख दिया जाय तो चक्रवर्त्ती के अनेक रूप दिखाई देने लगते हैं। उसे मस्तक पर रखने से रोग, विष और शस्त्र का प्रभाव नहीं पड़ता। मणिरत्न के इस चमत्कार में असंभव प्रतीत होने वाली कोई बात नहीं है। आज के

कुछ लोग इस चमत्कार को भले न मानें पर मणि के तेज-प्रताप की कीमत तो आज भी है। हीरा इतना मूल्यवान् क्यों माना जाता है? कोहनूर हीरा, जो भारत में कृष्णा नदी के किनारे एक किसान को मिला था और आजकल इंग्लैण्ड के बादशाह के पास है, क्यों इतना कीमती समझा जाता है? क्या भूख लगने पर उससे पेट भर जाता है? हीरा और कोयले एक ही प्रकार के परमाणुओं के होते हैं। अधिक काल तक पृथ्वी में रह जाने वाला कोयला हीरा बन जाता है। कहा जा सकता है कि धीरज का नाम ही हीरा है। जो जल्दबाजी करता है वह कोयला है। किसी काम में जल्दी करना-धैर्य खो देना एक प्रकार से कोयलापन है।

आज का ज़माना जल्दी का है। गमनागमन में जल्दी, खाने-पीने में जल्दी, विवाह-शादी में जल्दी। जहां देखो, जल्दी ही जल्दी नज़र आती है। यद्यपि जल्दी मरना कोई नहीं चाहता, फिर भी इस जल्दबाज़ी के फलस्वरूप मौत भी जल्दी ही आती है।

भरत कहते हैं—वह मणि पाकर मैंने बड़ा गर्व अनुभव किया। सोचा—मैं एक रूप होकर भी अनेक रूप हो जाता हूँ। मुझ पर विष और शस्त्र आदि का भी कोई असर नहीं हो सकता! मेरे भाई चाहे जितने बलवान् हों, इस मणि के प्रभाव से मैं उन पर अवश्य ही विजय

पाऊँगा। लेकिन अब मुझे विचार आता है कि मणि के कारण उत्पन्न हुए गर्व और अनीतिभाव की बदौलत ही भाइयों को साधु बनना पड़ा। इस तरह जिस मणि के कारण मैं आसमान पर चढ़ा था, उसी मणि ने मुझे गड्ढे में गिरा दिया है।

आपके पास वैसा मणिरत्न नहीं है लेकिन आप तो अपने मामूली काच पर ही अभिमान करने लगते हैं! अगर आप भरत के अभिमान को बुरा समझते हैं तो अपने अभिमान की ओर क्यों नहीं देखते?

मुखड़ा क्या देखे दर्पण में,
तेरे दयाधर्म नहीं तन में।
जब लग फूल रहे फुलवारी,
बास रहे फूलन में।
इक दिन ऐसा होय जायगा,
धान उडेगी तन में ॥ मुखड़ा० ॥
पगिया बांधे पेंच संवारे,
फूले गोरे तन में।
धन जीवन डूंगर का पानी,
ढलक जाय एक छिन में ॥ मुखड़ा० ॥

भरत को, देवाधिष्ठित मणि पर अभिमान हुआ था, पर आपके पास कोहनूर हीरा आजाय तो कैसा अभिमान होगा?

अगर आप साधारण सी चीज का अभिमान नहीं रोक सकते तो भरत को दिव्य मणिरत्न पर अगर अभिमान हुआ तो आश्चर्य ही क्या है? मणि की बात जाने दीजिए, आप मुँह देखने के काच पर ही क्या अभिमान नहीं करने लगते? किसान को अपने काम से ही फुर्सत नहीं मिलती होगी; लेकिन बड़े कहलाने वाले आप लोग काच देखकर पोशाक सजाने में ही घंटों लगा देते हैं। अपने को बड़े समझने वाले सोचते हैं—हम हैं, पुण्य लेकर आये हैं, अतएव हमारा काम मौज उड़ाना ही है। गरीब मरने-पचने के लिए हैं। तुम्हारा यह हाल देखकर साधु सोचते हैं कि तुम साधुओं को देखकर पश्चात्ताप क्यों नहीं करते? तुम्हारा हाल देखकर ही हम साधु हुए हैं। हम भी तुम्हारे भाई हैं। हमें देखकर तुम भरत की भांति पश्चात्ताप क्यों नहीं करते?

आप काच में मुँह क्यों देखते हैं? आपने-कौनसा ऐसा अच्छा काम किया है कि गर्व से मुँह देखते हैं? केवल इसीलिए कि मुँह साफ किया है? इतनी-सी बात पर ही गर्व करना शोभा नहीं देता। अगर काच में मुँह देखना ही है तो हम मना नहीं करते पर यह भी विचार करो कि हमें यह मुँह और आंखें किसलिए मिली हैं? और इन्हें पाकर हमने क्या किया है? डाक्टर आंख बना तो नहीं सकते, सिर्फ आंख का पर्दा खोल कर ही अभिमान करते हैं। ऐसी वस्तु पाकर आपको

सोचना चाहिए कि यह उत्तम शरीर पाकर भी मैं अब तक दया, क्षमा, संतोष आदि उत्तम गुण नहीं सीख पाया हूँ। अगर आपने उत्तम शरीर पाकर उसे उत्तम गुणों से विभूषित कर लिया तो आपका बेड़ा पार हो जाएगा। आपका अभिमान गल जाएगा।

भरत कहते हैं—भाइयो! मुझे मणि ने भुलावे में डाल दिया।

दुनियां की निगाह में तो भरत की मणि सच्ची थी मगर उन त्यागमूर्ति मुनियों के सामने जांच करने पर वह कच्ची निकली। भरत कहते थे—इस चिन्तामणि की जाति की मणि ने मेरी चिन्ता मिटाकर मुझे सुख पहुँचाने के बदले मेरी चिन्ता सौ गुनी बढ़ा दी! मेरे सुख को सोख लिया! मेरे सिर पर दुःख का पहाड़ पटक दिया!

भरत अपनी मणि को कच्ची मानते हैं, मगर आप अपने धन को सच्चा तो नहीं मानते? अगर सच्चा मानते होओ तो उसे संभालना छोड़ दो। उसकी रक्षा की चिन्ता मत करो। जो सच्चा है वह तुम्हें छोड़कर कहीं जाएगा नहीं! क्या ऐसा कर सकते हो? नहीं कर सकते तो फिर उसे कच्चा समझो। उसके भरोसे मत रहो। इसीमें तुम्हारी भलाई है।

क्षेमकर मुनि कहते हैं—हे दशरथ! अपने उन भाइयों को साधु के वेष में देखकर भरत ने अपनी सम्पदा की निन्दा की। उसका गर्व जाता रहा। भरत ने अपने भाइयों से कहा—

वैरी माथा काटिया, खड्गे मैं हरषायो।
भाई-प्रेम-छेदक हुए अब मैं मर्म जो पायो॥

हे महात्माओ! मैं क्या निवेदन करूँ? मेरे शस्त्रागार में एक खड्ग उत्पन्न हुआ। वह खड्गरत्न किस पुण्यसामग्री से प्रकट हुआ था, यह कथा बहुत लम्बी है। पर उसका तेज बहुत है। वह पचास अंगुल लम्बा, सोलह अंगुल चौडा अर्द्ध अंगुल मोटा है, चार अंगुल की मूठ है। उसकी चमक इतनी तेज है कि आंख नहीं ठहर सकती। उस खड्ग के रहते पराजय तो कभी हो ही नहीं सकती। अगर वह किसी साधारण सिपाही के पास हो तो वह भी अजेय हो सकता है। ऐसा खड्ग मेरे शस्त्रागार में प्रकट हुआ। फिर मुझे गर्व क्यो न होता? उस खड्ग की सहायता से मैंने संसार को अपने सामने झुकाने का विचार किया। जो मेरे सामने झुक गया वह बच गया। जिसने सामना किया उसे प्राणों से हाथ धोने पड़े। उसी खड्ग का बल पाकर मैंने अपने भाइयों को भी झुकाने का विचार किया। मै उनका भी स्वामी बनना चाहता था। इस प्रकार खड्ग ने मुझे जिस भुलावे में डाल दिया था वह अब आपको देखकर मालूम हुआ। अब मेरी समझ में आया है कि इस खड्ग ने भाई के प्रेम को काट डाला है।

आज भी लोग तलवार की पूजा करते हैं और मानते हैं

कि इससे हमारी और हमारे राज्य की रक्षा होगी। इस प्रकार सादी तलवार पर भी, जिसमें भरत के खड्गरत्न जैसा कोई चमत्कार नहीं है, गर्व हो जाता है। मगर ये गर्व करने वाले लोग कभी यह भी सोचते हैं कि चक्रवर्ती भरत को भी उस खड्गरत्न के लिए पश्चात्ताप करना पड़ा था तो हमारी क्या बिसात है ?

क्या तलवार का बल सच्चा बल है ? क्या यह गर्व करने लायक बल है ? यह पशुबल तो नहीं है।

तलवार का बल वास्तव मे पशुबल है। वह सच्चा बल नहीं है। शिकारी कहता है-मैंने शेर मारा। मगर उससे पूछो—उसने कैसे मारा है ? वह कहेगा-'तलवार से या बन्दूक से। तो इसमें वीरता क्या हुई ? वह बेचारा सोता था, दबे पांव, धीरे-धीरे जाकर चोरी से उसे तलवार मार दी। या वह जा रहा था और दूर से उसे गोली मार दी इसमे शिकारी की बहादुरी क्या है ? उसने अपना कौन सा बल लगाया है ? शेर निश्शस्त्र है। उसके पास न तलवार है, न बन्दूक है। उसे सिर्फ अपने पंजों का भरोसा है शरीर ही उसकी सम्पत्ति है। अगर शिकारी अपने को वीर मानता है तो क्यों नहीं शस्त्र फेंक कर शरीर से शेर के साथ लड़ता ? शेर मारने का गर्व अगर कोई कर सकता है तो तलवार या बन्दूक भले ही करे, मगर शिकारी किस बात का

गर्व करता है ? तलवार कह सकती है—जो काम जीवित मनुष्य नहीं कर सकता था, वह काम मैंने निर्जीव होते हुए भी, सजीव को निमित्त बनाकर कर दिखाया है ! बन्दूक कह सकती है—यह मोटा-ताजा और मनचाही आवाज करने वाला मनुष्य जो कुछ करना असंभव-सा मानता था, वही काम मैंने कर डाला है, हालां कि मैं मनुष्य से दुबली-पतली और निर्जीव हूं । मगर शिकारी क्या समझ कर अभिमान करता है ?

पशु के पंजे मे जब तक बल है तब तक वह अक्सर दया नहीं करता । वह मार डालता है । मगर मारता है वह सिर्फ पेट पालने के लिए, और मनुष्य केवल बहादुरी जताने के लिए, अपना गर्व दिखाने के लिए ही लाखों और करोड़ों मनुष्यों की हत्या कर डालता है ! कहते हैं, मुगलों के पूर्वज चंगेजखां ने एक करोड़ चालीस लाख या कुछ कम-ज्यादा आदमी केवल इसलिए मार डाले थे कि मैं जितने मनुष्य मारूँगा, उतना ही बड़ा वीर कहलाऊँगा ! यह पशुता नहीं तो क्या है ? बल्कि पशुता भी इस मूर्खता से मात खा जाती है।

भरत फिर कहते हैं:—

सेना—पोषक चर्म ने भाई तोप हटायो ।
प्रेम थी वंचित मैं हुओ अभिमान में आयो ।
कांगणी कर म्हारे चढायो, तोल माप वढ़ायो ।
म्हैं निज तोल घटावियो, भेद अब म्हैं पायो ॥

भरत कहते हैं—'मेरे यहां चर्मरत्न प्रकट हुआ। उसमे ऐसी शक्ति है कि हाथ से छोड़ते ही ४८ कोस का चबूतरा बन जाता है और उस पर छाया हो जाती है। बहुत दिनो मे उपजाने वाला अन्न थोड़े ही दिनो में उपज जाता है। पानी में तैरने के लिए वह नौका का काम देता है। उस रत्न से सम्पूर्ण सेना का पोषण होता है और सारी सेना जलाशय के पार उतारी जा सकती है। उस रत्न को पाकर मुझे अभिमान हुआ, पर मैंने समझा यह कि दूसरों को अभिमान है। मैं सोचता था—अमुक राजा ऐसा अभिमानी है कि लोकोत्तर रत्नो का स्वामी होने पर भी मेरे सामने सिर नहीं झुकाता! आप लोगों के विषय मे भी मैं यही सोचता था। आप सोचते थे कि भगवान् ने जो बँटवारा कर दिया है वह उचित्त है-उसमें परिवर्त्तन नहीं होना चाहिए और मैं सोचता था कि भगवान् के समय की बात निराली थी। उस समय मेरे पास रत्न नहीं थे। अब मै रत्नो का स्वामी हो गया हूं, अतएव मुझे एकच्छत्र साम्राज्य भोगने का अधिकार मिल गया है। आप अपने विचार पर दृढ थे और मैं अपने विचार में पक्का था इन रत्नो ने मेरे संतोष का नाश कर दिया। यह रत्न, रत्न नहीं शैतान साबित हुए।'

जो वस्तु अन्तःकरण मे अहंकार का अंकुर रोपती है, वह अहितकर है। यह मानते हुए भी आप अपनी तिजोरी

की चाबी नहीं फेंक सकते। मगर कम से कम इतना ध्यान तो अवश्य रहना चाहिए कि गर्व के मद में चूर होकर बड़े-बड़े भी भूल कर बैठते हैं, कहीं हम भी भूल न कर बैठें! कई आदमी साँप को पकड़ कर उसके साथ खेल खेलते हैं, मगर आप साँप से क्यों डरते हैं? आप यही उत्तर देंगे कि उनमें वैसी शक्ति है और हम में नहीं है। चाहे उनमें शक्ति हो या निडरता हो, लेकिन साँप भी वश में हो जाता है और साहस रखने पर उसका ज़हर असर नहीं करता। सुना है, लन्दन में एक पादरी ने भरी सभा में कहा था कि जिसमें आत्मविश्वास और साहस होगा, उसे विष नहीं चढ़ेगा। यह कहकर उसने एक भयंकर विषधर साँप को छेड़ा। साँप काटने से कब चूकने वाला था? पादरी ने बिना तनिक भी घबराए कह दिया—आप मेरी चिन्ता मत कीजिए। औषध की भी आवश्यकता नहीं है। यह विष मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। सचमुच थोड़ी ही देर में, बिना किसी मन्त्र या औषध के ही विष उतर गया। पादरी स्वस्थ हो गया।

मतलब यह है कि जैसे साहसी और मन्त्र जानने वाला पुरुष साँप के विष से प्रभावित नहीं होता वरन् साँप से खेल करता है, उसी तरह धन-दौलत आदि सम्पत्ति रूपी साँप को अनित्य- समझने वाला भी उससे खेल करता है। वह सम्पत्ति पाकर गर्व नहीं करता। अगर आप भरत की बात

पर ध्यान देंगे तो धन के लिए या धन के होने पर किसी के साथ दगा या अन्याय नहीं करेंगे।

भरत का कथन सुनकर उनके भाई कहने लगे-इसमें आपका कोई अपराध नहीं है। जिसके पास ऐसे शैतान आजाएँ उसे गर्व हो जाना आश्चर्य की बात नहीं। कदाचित हमारे पास यह रत्न आये होते तो कौन कह सकता है कि हम भी ऐसे ही गर्विष्ट न हो गए होते ?

भरत ने अपना कथन चालू रक्खा। कहने लगे-मेरे पास एक रत्न और आया, जिसका नाम कांकनी रत्न है। उसका नाप-तौल इतना सही है कि मेरे राज्य में उसी के हिसाब से नाप-तौल का काम होता है। यही नहीं, उसमे एक और चमत्कार है। तमसगुफा और खंडप्रभा नाम की गुफाएँ घोर अंधकार से व्याप्त होती हैं, लेकिन वह रत्न रगड़ देने से अन्धकार एक दम विलीन हो जाता है और सूर्य का सा प्रकाश फैल जाता है। इस कांकनी रत्न की चकाचौंध में मेरी दृष्टि चौंधिया गई। प्रकाश भी मेरे लिए अंधकार बन गया। मैं वास्तविकता को नहीं देख सका और अपने भाइयो का विरोधी बन गया।'

भरत ने अपने भाइयों के प्रति जो दुर्भावना की थी, उसके लिए वह अपना अन्तःकरण खोलकर--खुले हृदय से-पश्चा--त्ताप प्रकट कर रहे है। आप भरत के पश्चात्ताप को देखने के

साथ ही साथ अपने अन्तःकरण को भी टटोल लीजिए। आपके अन्तःकरण मे अपने भाई के प्रति तो कोई दुर्भाव नहीं है? आप तुच्छ वस्तुओं के लिए भाई से तो नहीं झगड़ते? किसी प्रकार का वैर-विरोध तो नहीं रखते? कांकनीरत्न भी भरत के हृदय में उजेला नहीं कर सका तो रुपये से यह आशा की जा सकती है कि वह आपके हृदय को प्रकाशित कर देगा? नहीं, तो रुपयों के लिए भाई पर मुकद्मा तो दायर नहीं करेंगे?

दो मित्र थे। दोनों शामिल रहते थे। एक दिन दोनों ने परस्पर प्रतिज्ञा की कि किसी भी अवस्था मे हम एक दूसरे को नहीं भूलेंगे। कोई कैसा ही ऋद्धिशाली हो जाए अथवा कैसा भी गरीब रहे, एक दूसरे को बराबर याद रक्खेगा और सहायता करेगा। उस समय दोनों की स्थिति समान थी, अतएव यह प्रतिज्ञा करने में किसी को कोई कठिनाई नहीं थी।

कुछ समय बाद एक मित्र को कोई बड़ा ओहदा मिल गया। अधिकार भी मिल गया और धन भी प्राप्त हो गया। दूसरा मित्र ज्यों का त्यों गरीब ही रहा।

गरीब मित्र ने सोचा—मेरा मित्र सब प्रकार से सम्पन्न हो गया है, लेकिन मुझे कभी स्मरण ही नहीं करता। सचमुच गरीब को गरीबी के सिवाय कोई नहीं पूछता। कहावत है—

माया से माया मिले, कर-कर लम्बे हाथ।
तुलसीदास गरीब की, कोइ न पूछे बात॥

गरीब मित्र ने सोचा—मेरा मित्र मुझे नहीं पूछता तो न सही, मैं अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार उसे नहीं भूल सकता। मैं स्वयं उसके पास जाकर मिलूँगा।

यह सोचकर गरीब अपने धनी मित्र के पास गया। उसने पूर्ववत् स्नेह के साथ अपने मित्र का अभिवादन किया। मगर धनी मित्र उसकी ओर चकित दृष्टि से देखने लगा और बोला-मैंने पहचाना नहीं, कौन हो तुम ?

गरीब ने सोचा-आगे की बात तो दूर ही रही, यह तो मुझे पहचानता भी नहीं है। प्रकट में उसने कहा-मैंने सुना था कि मेरा मित्र अंधा हो गया है। सोचा, जाकर देख आऊँ, क्या हाल है ? बिलकुल अंधा हो गया है या थोड़ा-बहुत सूझता भी है। यहाँ आकर देखा-मित्र तो एकदम ही अंधा हो गया है।

धनी मित्र ने कहा—यह कैसे कह रहे हो ?

गरीब ने उत्तर दिया-आप मुझे बिलकुल भूल गए। अब आपकी वह आंखें नहीं रहीं, जो प्रतिज्ञा करते समय थीं। अब मैं भी यहाँ से भागता हूँ, वर्ना मैं भी अंधा हो जाऊंगा!

माया के प्रभाव से प्रभावित होकर लोग अंधे हो जाते हैं। गरीब घर का लड़का किसी धनवान् के घर गोद चला जाता है तो अपने जन्म देने वाले माता-पिता से भी कह देता है कि आप जाइए। मैं शर्माता हूं। यहाँ मेरे सगे-सम्बन्धी आते हैं।

भरत कहते हैं—'मैं भी इन रत्नों के कारण अंधा हो गया था। सोचता था-या तो भाइयों का सिर काटूँगा या उन्हें अपने सामने झुकाऊँगा।'

भरत का यह पश्चात्ताप, यह रोदन, संसार को मिटाने के लिए था। अपने भाइयों की दशा देख कर अपनी तृष्णा का रोना था। कभी आपको भी अपना लोभ, अपनी हवस, देख कर रोना आता है? साधारण आदमी ऐसे अवसर पर उलटा घमंड करते हैं कि मेरे डर के मारे अमुक को ऐसा करना पड़ा! उनके हृदय मे पश्चात्ताप नहीं होता। वे अपने किये के लिये विषाद नहीं करते। मगर भक्त जन जब अपनी कोई भूल देखते हैं तो उनका हृदय रोने लगता है। वे अपना अन्तःकरण धोने के लिए रोते हैं। तदनुसार साधु बने हुए अपने भाइयों के सामने भरत रोकर कहते हैं—

शूर हुओ सेनापति, जीत्या देश घणेरा,
तिन अभिमाने मुझ भणि, कुमति घाल्या घेरा।

दुनिया में दो प्रकार की सम्पत्ति मानी जाती है—स्थावर और जंगम। जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाई जा सकती है वह जंगम सम्पत्ति है और जो एक ही स्थान पर स्थित रहती है वह स्थावर कहलाती है। मगर चक्रवर्त्ती के पास जो चौदह रत्न होते हैं, उनका विभाग दूसरे प्रकार से किया जाता है। उसके सात रत्न एकेन्द्रिय और सात

पंचेन्द्रिय होते है। यहाँ तक जिन रत्नों का वर्णन किया गया है वह सब एकेन्द्रिय रत्न थे और अब पंचेन्द्रिय रत्नों का वर्णन किया जाता है।

आज कल मनुष्य का मूल्य प्रायः धन के पैमाने से नापा जाता है। बड़ा आदमी वह गिना जाता है जिसके पास बड़ी सम्पत्ति होती है। अमुक मनुष्य लखपति है या हजार रुपया मासिक वेतन पाता है, इसलिए वह बड़ा आदमी है। इस व्यवस्था मे वास्तव मे मनुष्य की अपेक्षा सम्पत्ति का ही मूल्य आंका जाता है। रुपया बडा है आदमी नहीं। जब से सिक्के का जन्म हुआ है तभी से मनुष्य की कीमत घट गई है। लोग समझते हैं कि सिक्के के कारण विनिमय मे सुविधा हो गई है मगर सिक्के की बदौलत कितना अत्याचार हुआ और हो रहा है, सिक्के ने मनुष्य समाज मे कितनी विषमता और कितना श्रेणीभेद उत्पन्न कर दिया है, इसका वर्णन करना साधारण बात नहीं है। सिक्के ने मानव-समाज को आज घोर मुसीबत मे डाल दिया है। इस मुसीबत का सामना करने के लिये नाना प्रकार के उपाय निकाले जा रहे हैं, समाजवाद साम्यवाद आदि कितने ही वाद प्रचलित किये जा रहे हैं मगर यह सब 'वाद' वादविवाद के लिए ही हैं। इनसे स्थिति सुलझती नहीं, उलझती जा रही है। असली कारण की ओर

लोगों का ध्यान नहीं है। अगर संसार को सिक्के के अभिशाप से मुक्त किया जा सके तो बहुत-सी मुसीबतें आप ही आप कम हो सकती हैं। आज यह सलाह शायद अप्रासंगिक असामयिक और अनुचित प्रतीत होगी। मगर यही एक उपाय है, जिससे संसार में शांति का साम्राज्य फैलाया जा सकता है।

चक्रवर्ती भरत ने अपने विशालतम साम्राज्य में सिक्के का प्रचलन नहीं किया था। फिर भी उस समय विनिमय में कोई असुविधा नहीं थी। उस समय एक वस्तु का विनिमय दूसरी वस्तु से होता था जैसे एक के पास अनाज और दूसरे के पास कपड़ा है। दोनों अपनी आवश्यकतानुसार वस्तु की लेनदेन कर लेते थे। यही क्रम सब के लिए था। ऐसा करने पर भी किसी का कोई काम रुकता नहीं था। पैसे के कारण होने वाली शैतानी से लोग बचे रहते थे।

भरत कहते हैं—एकेन्द्रिय रत्नों के कारण मुझे बड़ा गर्व हो गया था। मगर मेरे पास इन रत्नों के अतिरिक्त चलते-फिरते, बोलते-चालते पंचेन्द्रिय रत्न भी आ गये हैं। मैं जिसकी सम्पत्ति पर भरोसा रखता हूँ वह सुपुस नामक सेनापति भी मेरे पास है।

जर्मनी का बादशाह क़ेसर अपने सेनापति हिंडेनवर्ग पर बड़ा भरोसा रखता था। वह कहता था-ईश्वर की अपार दया से ही मुझे इस सेनापति की प्राप्ति हुई है। केसर,

हिंडेनवर्ग की सलाह मानता था, फिर भी कैसर की ही हार हुई। उसका ईश्वरप्रदत्त सेनापति उसे हार से नहीं बचा सका !

इसी प्रकार भरत कहते हैं—'मेरे यहाँ सेनापति रत्न है। वह शस्त्रास्त्र तथा युद्ध आदि राजनीति के कामो में बड़ा निपुण है। बलवान इतना है कि तीन लोक मे कोई उसके बल की समता नहीं कर सकता। उसकी स्वामिभक्ति ऐसी है कि इशारा पाते ही काम कर डालता है और मुझे सब प्रकार से प्रसन्न रखता है ऐसा सबल सेनापति पाकर मुझे गर्व हुआ। सब पर विजय प्राप्त करने की अभिलाषा जागी। सेनापति ने मुझसे कहा-मैं आपकी इच्छा पूर्ण करूँगा। अगर कहीं पराजित हो जाऊँ तो मेरा सिर काट लेना। उसने मेरे गर्व को प्रोत्साहन दिया। मेरी विजय-लालसा की आग मे उसने घी डाल दिया। मैंने उसकी सहायता से बड़े-बड़े देश जीते। अनेक शूरवीरों का गर्व खर्व कर दिया। मैं अपने भाग्य की सराहना करने लगा। मैंने सेनापति से पूछा-अब मेरा राज्य एकच्छत्र हो गया है न? सेनापति ने कहा--नहीं, अभी आप को बहुत विजय करना बाकी है। अभी तक आपने भेड़-बकरियो पर विजय पाई है, शेर बाकी हैं।

भरत कहते है-'सेनापति ने मुझे बतलाया कि जो आपके समान हैं, जो आप के साथ खेले हैं, और जो आपके भाई

हैं, जो भगवान् ऋषभदेव के पुत्र हैं और जो आपके समान ही वीर हैं, उन्हें जीतना तो अभी शेष ही है। अभी तक जिनसे अधीनता स्वीकार कराई हैं वे गरीब भेड़ के समान हैं, मगर इन भाइयों को अधीन करने का प्रयत्न करना सांप के पिटारे में हाथ डालते के समान है। आपके निन्यानवे भाई जब तक आपकी अधीनता स्वीकार न करें तब तक आप को एकच्छत्र सम्राट की पदवी प्राप्त नहीं है।'

'सेनापति की इन बातों ने मेरे हृदय का कल्पवृक्ष सरीखा भ्रातृप्रेम नष्ट कर दिया। अमृत, विष में परिणत हो गया! मैंने कहा—'सेनापति! तुम ठीक कहते हो। पहले तुमने इस ओर मेरा ध्यान आकर्षित किया होता तो पहला धावा उसी तरफ होता!' सेनापति बोला—नहीं महाराज, ठीक न होता। ऐसा करना नीति के विरुद्ध होता। धीरे-धीरे दूसरों को जीतने से जो उत्साह, साहस और बल बढ़ा है, उसी की सहायता से उन्हें जीतना ठीक होगा यों समझना चाहिये कि अभी तक जो विजय हुई है वह तो सेना की शिक्षा मात्र है। युद्ध तो अब करना है।'

'सेनापति के इस कथन ने मेरे हृदय में और आग धधका दी! उसने यह भी समझाया कि पहले बाहुबली को न छेड़ कर शेष ९८ भाइयों को अधीन करना चाहिए। इससे मेरे हृदय मे मनुष्यता के स्थान पर पशुता ने, राज्य

जमा लिया। मैंने आपको सताया।'

लोग शस्त्रों से लड़कर शान्ति प्राप्त करना चाहते हैं, किन्तु यह शांति का मार्ग नहीं है. शस्त्र अशांति के अग्रदूत हैं। उनसे शांतिभंग होती है. शांति स्थापित नहीं हो सकती। यह बात इतनी साफ होती जा रही है कि इसे सिद्ध करने के लिए तर्क या अन्य प्रमाण पेश करने की आवश्यकता ही नहीं रही। संसार में बेशुमार शस्त्र बढ़े, भयंकर से भयंकर शस्त्रों का आविष्कार हुआ, पर क्या शांति की परछाईं भी कहीं नजर आती है? शस्त्रों की वृद्धि के अनुरूप अशांति ही अशांति की वृद्धि हो रही है। ७० मील की दूरी तक गोला फेंकने वाली तोप का आविष्कार करने वालों से पूछो कि तुमने जगत् की क्या भलाई की है? क्या इससे शान्ति की संभावना भी पैदा हुई है? पारस्परिक अविश्वास और घोर संहार ही इन भयानक शस्त्रों की भयानक भेंट है। यह सत्य इतना स्पष्ट होने पर भी पशुबल के पुजारी, आला दिमाग कहलाने वाले यह वैज्ञानिक शस्त्रों की ही सृष्टि करने में लगे हैं। निश्शस्त्रीकरण की आवाज पर कोई ध्यान नहीं देना चाहता! मालूम नहीं, मनुष्य क्यों इतना पागल बन गया है कि वह मनुष्यजाति के संहार में ही सारा पुरुषार्थ खर्चने में लगा है और अपने सहज विवेक का अपमान कर रहा है?

क्यों वह आंख मींच कर भविष्य के विचार से विमुख होकर मृत्यु की ओर दौड़ा जा रहा है ? इस दौड़ का अन्त संहार के सिवाय और कहां है ?

भरत कहते हैं—सेनापति की सलाह पाकर मैंने आप को अपने अधीन करने का संकल्प किया। इस प्रकार मेरा सेनापतिरत्न ही मेरे विषाद का कारण बन गया।

गाथापति सब गृहस्थ की निधि मुझे बतलाई।
मन माया में उलझियो तिण ही सुधि नहिं पाई॥
नवा नवा महल बनाय के बढ़ई मुझ ललचायौ।
आग लगाई भाई घरे मुझ मन पछतायो॥

'बन्धुओ ! मेरे घर की सामग्री ने मुझे बेभान बना दिया। इसी कारण मैंने आपको सताया है। मुझे गृहपति नामक एक रत्न और मिला है। उसने कहा—महाराज ! आप सब से बड़े चक्रवर्ती हैं !' मैं इस रत्न को पाकर फूला नहीं समाया। उसने मुझे गृहस्थधर्म बतलाया पर मेरा मन माया में उलझा हुआ था। मैंने सोचा-मेरा गृहपतिरत्न बहुत दिनों में पकने वाले धान्य को पहरों में ही पका देता है। अब मुझे दुष्काल आदि का भी भय नहीं रहा। मेरा घर स्वर्ग से भी ऊँचा है। अतएव मुझे अपने भाइयों को अपने अधीन करना ही चाहिए।'

ऋद्धि पाकर गर्व नहीं किन्तु नम्रता धारण करना चाहिए। कुलीनता और धार्मिकता जिनमें होती है वे अकसर ऋद्धि

सम्पदा पाकर नम्र हो जाते है। यह बात एक कहानी द्वारा समझाई जाती है—

एक अंधा था। उसने सोचा-राजा भोज राजाधिराज है। वह गरीब के प्रति कितना नम्र है, इस बात की परीक्षा करनी चाहिए। उसने साहस करके किसी सम्बन्धी से कहा-कृपा करके मुझे ऐसी जगह खड़ा कर दो, जिधर से राजा भोज अपनी सेना के साथ निकलने वाले हैं। सम्बन्धी ने अन्धे की बात सुन-कर कहा—क्यों? क्या मौत नजदीक आ गई है? कहीं कुचल गये तो मेरा मुँह भी काला हो जाएगा। अन्धा बोला-इसकी चिन्ता मत करो। मैं अपने जीवन-मरण के लिए आप ही उत्तरदायी हूँ। मैं स्वेच्छा से वहाँ खडा होना चाहता हूं तो तुम्हारा मुँह काला कैसे होगा? मैं अन्धा हूँ, मगर बालक तो नहीं हूँ।

आखिर अन्धे का आग्रह देखकर उस सम्बन्धी ने उसे ऐसी जगह खड़ा कर दिया जहाँ से भोज अपनी सेना के साथ निकलने वाले थे। सेना आई। सिपाही उससे कहने लगे-अन्धे, तू बीच में आकर कहाँ खडा हो गया है! जल्दी हट यहाँ से!

अन्धा दीनता दिखलाता हुआ कभी थोड़ा पीछे हट जाता और कभी मौका देखकर कुछ आगे बढ़ आता। थोड़ी ही देर बाद राजा भोज उसके सामने होकर गुजरे! राजा भोज ने आते ही अन्धे से कहा—'हे अन्धराज! महाराज!'

अन्धे ने समझ लिया, नम्रतापूर्वक वाणी बोलने वाले यही राजा भोज हैं। उसने उत्तर दिया—

हे भोज महाराजाधिराज !
आपकी मुलाक़ात के काज ॥

भोज विचारने लगा—'दृष्टि न होने पर भी इसने मुझे कैसे पहचान लिया?' फिर संदेह निवारण करने के लिए राजा ने पूछा—थोड़ा बहुत कुछ दिखाई तो देता है न?

अन्धा—जी हाँ, और तो कुछ दिखता नहीं, एक मात्र अंधकार ही अंधकार दिखाई देता है।

भोज—तो तुमने मुझे कैसे पहचान लिया?

अन्धा-महाराज ! आंख अन्धी है, हृदय अन्धा नहीं है। अन्धे का सुसंस्कृत नाम प्रज्ञाचक्षु है। चर्मचक्षु न होने पर भी प्रज्ञाचक्षु से आपको पहचान लेना कठिन नहीं है। मैं आपसे मुलाकात करना चाहता था। अन्यत्र आपसे मुलाकात होना कठिन था, इसलिए मैं यहां आकर खड़ा हो गया। यहाँ आपके सिपाहियों की लात-बात सहता और डाट फटकार झेलता हुआ खड़ा रहा। सब मुझे अन्धा-अन्धा कहते रहे। आपने आकर मुझे अन्धराज कहा। इसी से पहचान गया कि यह बोल महाराज भोजराज के होने चाहिए।

भोज सोचने लगा—मैंने कुलीनता और शिष्टता के खातिर ही इसे अन्धराज कहा था। अगर मैं 'अन्धराज' न

कहता और 'अंधा' कह देता तो मेरी गणना भी इन सिपाहियो की तरह हल्के आदमियो में ही होती।

राजा भोज ने उस अंधे का दुःख तो मिटाया ही होगा मगर आप इस पर यह विचार करे कि परमात्मा नरमी से मिलता है या गरमी से ? भगवान के अनेक विशेषणों मे से एक विशेषण 'धर्मसारथी' भी है। धर्मसारथी अर्थात् धर्म का रथ चलाने वाले। अर्जुन का रथ श्रीकृष्ण चलाते थे। रथ चलाना नम्रता का काम है या उद्दण्डता का ? रथ मे बैठने वाला बड़ा है या रथ चलाने वाला ? वास्तव में रथ चलाने वाला बड़ा है, रथ मे बैठने वाला नहीं। दूसरे को संकट में देखकर उसकी सहायता करना बड़प्पन है-आगे बढ़ने का मार्ग है।

कृष्ण युधिष्ठिर के दूत बनकर दुर्योधन को समझाने गये थे। दुर्योधन ने उनके लिये उत्तमोत्तम भोजन की व्यवस्था की और सुन्दर महल रहने के लिये नियत किया। दुर्योधन सोचता था, इस तरह कृष्ण को वश मे कर लेने से मेरा काम सुगम हो जायगा। फिर पांडवो का सहायक कोई नहीं रहेगा। मगर कृष्ण ऐसे-वैसे नहीं थे। उन्होंने दुर्योधन का आशय समझ लिया। उन्होंने कहा-मैं स्वागत-सत्कार स्वीकार करने नहीं आया हूँ। मैं पहले काम की वात करूँगा; काम हो जाने पर भोजन करूँगा अन्यथा भोजन नहीं करूँगा।

आप पहले काम को देखते हैं या भोजन को ? 'शतं विहाय भोक्तव्यम्' अर्थात् सौ काम छोड़कर पहले भोजन कर लेना चाहिये, यही कहावत आज सर्वत्र प्रचलित हो रही है। मगर जो लोग कृष्ण की नीति का अनुसरण करते हैं, उनका जीवन और ही प्रकार का होता है।

दुर्योधन सोचता था कि कृष्ण एक बार मेरा अन्न खालेंगे तो मेरे वश में हो जाएँगे। मगर कृष्ण जैसे असाधारण चतुर पुरुष उसकी चाल में आने वाले नहीं हैं।

दुर्योधन ने कहा—आप अभी आये हैं। रास्ते की थकावट है। भोजन और विश्राम कर लीजिए। उसके बाद आप जिस प्रयोजन से आए हैं उस पर विचार कर लेंगे।

कृष्ण टस से मस नहीं हुए। बोले—यह नहीं होगा।

विवश होकर दुर्योधन ने पूछा—आप क्या कार्य लेकर पधारे हैं ?

कृष्ण ने कहा—मैंने पाण्डवों को समझा दिया है। तुम उन्हें सिर्फ पांच गांव दे दो, जिसमें वे स्वतन्त्रतापूर्वक रह सकें।

कृष्ण की मांग कितनी छोटी थी ? मगर गर्वीले दुर्योधन ने कहा—आप जैसे ऊपर से काले हैं वैसे ही हृदय से भी काले हैं। आप पाण्डवों को स्वतन्त्र करना चाहते हैं, मगर मैं जानता हूँ कि वे स्वतन्त्र हुए नहीं कि गजब ढाया नहीं। आज पांच गांव उन्हें दे दिये तो कल वे पांच सौ गांवों पर

कब्जा जमा लेंगे। ऐसी स्थिति में मैं आपकी बात नहीं मान सकता। पाण्डव युद्ध में विजय प्राप्त करके चाहे सारा राज्य लेलें, विना युद्ध किये तो उन्हें सुई की नौक बराबर जमीन भी नहीं दूंगा।

सूच्यग्रं नैव दास्यामि, विना युद्धेन केशव !

दुर्योधन का यह उत्तर सुनकर कृष्णजी ने कहा—

उद्धवा चल जाऊँ विदुरा घरी,
ऊँच ऊँच माडया नाही कामाच्या, संत झौंपड़ी बरी।
दुर्योधनानी पकवान केले, दुष्ट भाव अन्तरी ॥

कृष्णजी कहते हैं—उद्धव ! चल, रथ हांक। दुर्योधन के महल में नहीं रहना है, विदुर के घर चल।

उद्धव ने कहा—विदुर के यहां चलें तो, मगर कहाँ आप महाराज और कहाँ गरीब विदुर की झौंपड़ी ! वहां कहां आप ठहरेंगे, कहाँ घोड़े बँधेंगे और कहाँ रथ रक्खा जाएगा ? काम नहीं हुआ तो न सही, आराम से रहने में क्या हर्ज है ?

कृष्ण—तुम समझते नहीं हो ऊधो ! जिस महल में बैठकर दुर्योधन ने द्यूत का झूठा खेल खेला और पांण्डवों का राज्य हड़पा, जिस महल में दुर्योधन अब भी उन्हें पाँच गांव तक नहीं देना चाहता, उस महल मे मेरा रहना ठीक नहीं है। विदुर की झौंपड़ी अपने लिए भली है। विदुर किसी की भी परवाह न करके धृतराष्ट्र को सच्ची बात तो कह देते हैं।

उस झोंपड़ी में न्याय की प्रतिष्ठा है यह महल तो पाप का धाम है।

उद्धव-ठीक है, पर वहां तो खाने को भी मिलना कठिन है?

कृष्ण-कुछ भी हो। प्रेम का घास-पात भी पाप के मेवा-मिष्टान्न से लाख गुणा श्रेष्ठ है। पापी का अन्न पेट में जाने से अनिष्ट फल होता है।

कृष्णजी विदुर के घर चल दिये। विदुर उस समय घर पर नहीं थे। उनकी पत्नी थी। उसने मक्की का दलिया बनाकर प्रेम से परोसा और आप भी साथ ही खाने को बैठ गई। वह अपने असाधारण अतिथि के स्वागत में इतनी तन्मय हो गई कि उसे भान ही न रहा। उसे जैसे कोई अलौकिक वैभव मिल गया हो। उसने केले छीले। गूदा आप खा जाती और छिलका कृष्ण जी को खिलाती जाती। इतने में विदुर आ पहुंचे। अपनी आनन्द-विभोर और सुध-बुधहीन पत्नी का यह करतब देखकर बोले—अरी पगली, तू यह क्या गजब कर रही है?' विदुर की बात सुनी तो गृहिणी को होश आया। वह लज्जित होकर पछतावा करने लगी। मगर कृष्ण ने कहा—विदुरजी, तुमने आकर रंग में भंग कर दिया—आनन्द में विघ्न डाल दिया।

क्या उनको छिलके प्रिय थे? नहीं, उन्हे सत्य प्रिय था, प्रेम के वे भूखे थे जहां सत्य हो, प्रेम हो, वहां मधुरता के

सिवाय और क्या होगा ? इसीलिए आज भी गाया जाता है-
'दुर्योधन घर मेवा त्यागे, शाक विदुर-घर खाये कि वाह वा !'

दुर्योधन और भरत की स्थिति में अधिक अन्तर नहीं है। दुर्योधन कपटी था, भरत नहीं। दुर्योधन ने छल करके अपने भाइयों का राज्य हथिया लिया था, भरत अपनी शक्ति के वल पर हथियाना चाहते थे। मगर अपने भाइयों का हिस्सा हड़पने की चेष्टा दोनों में समान है। हाँ, प्रतीकार की पद्धति में अन्तर है। पाण्डवों ने युद्ध करके दुर्योधन का प्रतीकार किया, जब कि भरत के भाइयों ने अहिंसा का अवलम्बन करके भरत का मुकाविला किया। युद्ध करके दुर्योधन मारा गया लेकिन वह झुका नहीं। अन्त तक उसके हृदय में परिवर्त्तन नहीं हुआ ! मगर भरत चक्रवर्त्ती अहिंसा के आगे ऐसे पराजित हुए कि भीतर से भी और वाहर से भी एकदम नम्र हो गए। भरत के हृदय पर अहिंसा का जो प्रबल प्रभाव पड़ा, दुर्योधन के हृदय पर हिंसा का वैसा तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ा। कौरव-पाण्डव-युद्ध में अनगिनती वीरों का संहार हुआ। महाभारत-युद्ध के कारण भरत को ऐसी क्षति पहुँची की जिसकी फिर पूर्ति ही न हो सकी। मगर भरत के भाइयों ने जो पद्धति स्वीकार की, उससे किसी का कुछ भी अहित नहीं हुआ। वल्कि जगत् के सामने वे एक महान् आदर्श उपस्थित कर गए। हिंसक और अहिंसक प्रतीकार में क्या अन्तर

है और दोनों के परिणाम मे कितना भेद पड़ जाता है, यह बात इन दो घटनाओं से स्पष्ट हो जाती है।

पाण्डवों के परामर्शदाता कृष्णजी थे और भरत के भाइयों के सलाहकार भगवान् ऋषभदेव थे। इससे इन दोनों की नीति का भेद भी हमारी समझ मे आ जाता है। दोनों महापुरुष भारतवर्ष के सर्वमान्य पुरुष हैं। जैन और वैदिक दोनों परम्पराएँ दोनो को महापुरुष के रूप में स्वीकार करती हैं। फिर उनकी राजनीति का भेद समझना, विशेषतः आधुनिक काल में उपयोगी होगा।

अहिंसक प्रतिरोध के सामने भरत एकदम निर्बल पड़ गए। उनका शरीर ही नहीं बल्कि हृदय भी झुक गया। कुछ ही समय पहले जो गर्व से उन्मत्त हो रहा था, वही अब बालक की भाँति रोने लगा।

बड़ा-बड़ा महल बनाय के, बढई मुझ ललचायो।
आग लगाई भायां घरे, मुझ मन पछतायो॥

भरत कहते हैं—'मैं बड़ी-बड़ी चीजों के भुलावे में भूल गया। अगर भुलावे में न आ गया होता तो आपको हर्गिज़ न सताता और आपको मुनि न बनना पड़ता। गृहपतिरत्न ने मुझे सारी गृहक्रिया समझाई। मैं समझता था कि वह मुझे गृहस्थ बना रहा है पर वास्तव में उसने मुझे धोखे

में डाल दिया। इसी कारण मैंने जिनके साथ खाया-पीया था और जो मुझे प्राणों की तरह प्यारे थे, उन्हीं अपने भाइयों को सताने को उद्यत हो गया।'

'भाइयो, मुझे एक वढ़ई रत्न भी मिला है। वह ४२ मंजिल के महल बनाता है। उसने मेरे लिए ऐसा सुन्दर महल बना दिया है कि संसार का कोई भी महल उसका मुकावला नहीं कर सकता। पहले तो उस बढ़ई की नकल करके कोई महल बना ही नहीं सकता, तिस पर भी मैंने आज्ञा जारी कर दी थी कि मेरे महल सरीखा महल और कोई न बनवावे। बढ़ई में अजब फूर्ति है। वह चाहे जैसा महल आनन-फानन बना सकता है। यह रत्न पाकर मेरा अभिमान और बढ़ गया।'

शान्तिपाठ पुरोहित करे वैरी मुझ न सतावे।
मन वैरी हुओ माहरो शान्ति तिणसूं न पावे॥

'मेरे यहां एक पुरोहितरत्न भी है, जो शांतिपाठ करने वाला और मंत्र, तंत्र, आहुति आदि से वैरी का नाश करने वाला है। उसने मुझे विश्वास दिलाया कि मेरी अंजलि छूटने पर कोई वैरी नहीं रह सकेगा। उसके इस आश्वासन से मैं पागल हो उठा। मैंने सोचा—अब किसका सामर्थ्य है जो मुझे न माने! अगर कोई मुझे न मानेगा तो पुरोहित ही उसे भस्म कर देगा।'

आज भी बहुत से लोग भैरों-भवानी की मनौती मनाते हैं कि अगर मेरे वैरी का नाश हो जाय तो मैं चूरमा-बाटी चढ़ाऊँगा। सासू-बहू मे अनबन होने पर सासू, बहू के और बहू सासू के विनाश के लिए ऐसी मनौती मनाती होगी। लेकिन विचारणीय बात यह है कि जब दोनों ने दोनों के विनाश के लिये मनौती की तो भैरोंजी दोनों का विनाश करेंगे या किसी एक का? अगर वह दोनो का साथ ही विनाश कर दे तब तो भैरोंजी बेचारे चूरमा-बाटी से वंचित ही रह जाएँगे! अगर दोनों का चूरमा-बाटी खाकर दोनों का विनाश करते हैं तो वह कृतघ्न ठहरते हैं। अगर किसी एक का विनाश करते हैं तो दूसरी की मनौती वृथा जाती है। वस्तुतः यह सब अज्ञान का परिणाम है। इष्ट और अनिष्ट की प्राप्ति पुण्य और पाप के उदय से होती है। पुण्य और पाप के फल को कोई देवी-देवता पलट नहीं सकता।

भरत कहते हैं—'पुरोहित की शान्ति के गर्भ में घोर अशांति छिपी हुई थी। अगर अशांति न होती तो भाई साधु क्यों बनते और मुझे पश्चात्ताप करने का अवसर क्यों आता? शांति तो तब मैं समझता जब भाई भगवान् के पास न आकर मेरे पास आते और मेरे पैर पड़ते। मगर ऐसा हो भी जाता तो मेरा अभिमान और बढ़ता। आपने भगवान् के पास आकर मेरा अभिमान मिटा दिया, यह एक तरह से अच्छा ही हुआ।

भरत फिर कहते हैं—मेरा पुरोहित रत्न यंत्र-मंत्र के चमत्कार भी दिखलाता है, पर अब समझ में आ गया है उसकी शांतिपाठ अशान्ति का ठाठ बढ़ाने वाला ही साबित हुआ।

संसार में सभी प्रकार की वस्तुएँ विद्यमान हैं, पर उनमें से कौन वस्तु उपादेय है और कौन हेय है, यह समझ लेना आवश्यक है। थोड़ी देर के लिए मान लीजिए, आप के सामने दो आदमी खड़े हैं। एक कहता है—मैं तुम्हारी कमर की करधनी (कंदोरा) काटूँगा और दूसरा कहता है—मैं तुम्हारी गर्दन काटूँगा। उस समय आप क्या कहेंगे? आप यही कहेंगे कि करधनी भले काटलो, गर्दन मत काटो। इसी प्रकार ज्ञानी कहते हैं-एक यह स्थूल शरीर है और दूसरा सूक्ष्म धर्म रूपी शरीर है। मेरा धर्म रूपी शरीर नहीं कटना चाहिए, स्थूल शरीर भले ही कोई काट ले। आपको भी यही चाहना चाहिए। पहले अनेक महापुरुषों ने भी ऐसा ही किया है, उन्होंने धर्म-शरीर की रक्षा करने के लिए हाड़-मांस के स्थूल शरीर के कट जाने की परवाह नहीं की।

धर्म की रक्षा के लिए ही मेवाड़ में कितना खून दिया गया? तेरह हजार स्त्रियां धर्म की रक्षा के लिए ही आग में पड़कर जली थीं। लेकिन आज तुच्छ वस्तु के लिए भी लोग धर्म को हार जाते हैं! जरा-सी बात के लिए कपट करना क्या धर्म-शरीर का नाश करना नहीं है?

भरत कहते हैं—पुरोहित के शांतिपाठ का फल हुआ अशांति। पर आप क्या सोचते हैं? आप तो जप और पाठ द्वारा दूसरे का अकल्याण नहीं चाहेंगे? लोग शांतिनाथ भगवान् को माला फेरते हैं, पर शत्रु का नाश करने के लिए। क्या यह उचित्त है? क्या यह धर्म-शरीर को नष्ट करना नहीं है?

लक्ष्मी आई मुझ घरे में अति हरषायो।
श्रीशोभा भाया तणी हरता मन न घबरायो।

भरत कहते हैं—'भाइयो! मेरे यहां श्रीदेवी अर्थात् लक्ष्मी नाम की रानी आई। वह संसार की सर्वोत्कृष्ट महिला है। उसकी समता करने वाली स्त्री संसार में दूसरी नहीं है।'

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र में उसकी विशेषता बतलाते हुए कहा है कि अन्य स्त्रियों के साथ सहवास करने से तो वीर्य और यौवन का नाश होता है किन्तु श्रीदेवी के साथ सहवास करने से इनकी उल्टी वृद्धि होती है। एक हजार यक्ष उसके सेवक होते हैं।

'ऐसी देव-सेवित स्त्री पाकर मुझे अत्यन्त अभिमान हुआ। मैंने सोचा—मेरे यहां संसार का सर्वोत्कृष्ट स्त्रीरत्न आया है, फिर मेरे सामने मेरे भाई क्यों न झुकेंगे? उस लक्ष्मी ने भी मुझे सुमति नहीं दी। यही नहीं वरन् उसने उल्टी कुबुद्धि दी। कहने लगी—आप मेरे नाथ हैं। सर्वश्रेष्ठ

राजा है। क्या मेरे देवरों और देवरानियों को भी मेरे पैरों पर नहीं झुकाएँगे ?'

चाहे श्री देवी ने ऐसा ही कहा हो या यह कवि की कल्पना हो, लेकिन श्रीदेवी को पाकर भरत को अभिमान हुआ। अतएव भरत कहते हैं-'इस लक्ष्मी को पाकर अगर मैंने आपको और आपने मुझको स्नेह की दृष्टि से देखा होता तो वह लक्ष्मी बड़ी गिनी जाती। मगर मैं उसे पाकर वत्सलता की लक्ष्मी को भूल गया। श्रीदेवी की अपेक्षा बन्धुवत्सलता की लक्ष्मी मुझे अधिक शांति पहुंचा सकती थी, लेकिन उस समय तो मैं अपने आपको ही भूला हुआ था। इसी कारण मैंने आपकी शोभा हरण की है। आपके जिस मस्तक पर मुकुट शोभित था, उस पर आज केश भी नहीं है। आपके जिन हाथों में वीरवलय थे और जिन्हें देखकर शत्रु सिहर उठते थे, वही हाथ आज खाली है। अब वे सिर्फ दया और आशीर्वाद के लिए ही उठते हैं। आपके शरीर की लक्ष्मी मैंने ही खोई है और मेरे ही कारण आपको साधु बनने की नौबत आई है। यह गर्व इस लक्ष्मी के गर्भ से उत्पन्न हुआ है!'

मित्रो! विवाह होने के बाद आप तो अपने भाइयों से लड़ाई नहीं करते? स्त्रियां ससुराल में जाकर अपने पति के हृदय में ऐसे भाव तो नहीं भरतीं, जैसे श्रीदेवी ने भरत के दिल में भरे थे? कहावत है—

एक उदर के अपने जामन जाया वीर।
औरत के पाले पड्या नहीं तरकारी में सीर॥

पहले भाई-भाई शामिल खाते-पीते और रहते थे, लेकिन जब से लुगाई आई तब से दूसरे तो भले ही जीम जाएँ पर भाई के घर तो शाक तरकारी भी नहीं पहुँचेगी। भरत तो अपने पाप का प्रायश्चित्त कर रहे हैं, पर आप भी अपनी दशा का विचार कीजिए। क्या आप से यह आशा करूँ कि आप स्त्री की बातों में आकर भाई से लड़ाई करके अपना सर्वस्व खोएँगे? और क्या बहिनों से यह आशा रक्खूँ कि वे पति के परिवार को अपना ही परिवार मानेंगी और उस परिवार में पारस्परिक प्रेम की सरिता बहाएँगी?

गज चढ गर्वो हूँ हुवो तुम पर हुक्म चलायो।
अश्व अपूरव पावियो, पन्थ विकट दौड़ायो॥

भरत कहते हैं—'भाइयो! मुझे एक हस्तीरत्न और एक अश्वरत्न भी मिला है। मेरा वह जयकुंजर (हाथी) सब हाथियों में सिरमौर है। सारे भरतखण्ड में उसकी सानी का दूसरा हाथी नहीं है। ऐरावत हाथी के समान उस हाथी की गंध से ही दूसरे हाथी भाग खड़े होते हैं। जब जयकुंजर के ऊपर मणिजटित सुवर्णमय हौदा सजाया जाता और चमर छत्र से सुशोभित होकर मैं उस पर बैठता हूँ तो ऐसा प्रतीत होता मानो मैं किसी पर्वतशिखर पर बैठा हूँ और मेरे सामने

कोई दूसरा किसी गिनती मे ही नहीं है ! उस समय मैं सोचता था कि असीम पुण्य के प्रभाव से मुझे यह हाथी मिला है, पर आज समझ आने पर सोचता हूँ कि मेरे पाप का प्रभाव बढ़ाने के लिए ही वह मुझे मिला है ।'

ज्ञान श्रेष्ठ वस्तु है और पुण्य के प्रताप से उसकी प्राप्ति होती है । लेकिन ज्ञान होने पर अगर ज्ञानमद हो गया तो समझिए कि दूध भी दारू बन गया । फिर दारू सरीखा उन्माद पैदा करने वाला वह ज्ञान बुद्धि को विकृत ही करता है । इस प्रकार पुण्य से मिलने वाली वस्तु पाप का भी कारण बन जाती है और कदाचित् पाप से प्राप्त हुई वस्तु भी पुण्य का कारण हो जाती है ।

भरत बोले—'वह हाथी मिला था पुण्य के प्रभाव से, पर मुझे उसका अभिमान हो गया । मैंने सोचा-अगर मेरे भाई मेरे हाथी के साथ-साथ नीचे न चले तो इस हाथी का पाना ही वृथा हुआ ।'

'भाइयो ! मुझे कमलाभ नामक एक उत्कृष्ट घोड़ा मिला है । वह भी देवसेवित है । वह जैसे थल पर चलता है वैसे ही जल पर भी चलता है और आग पर भी चलता है । आग पर वह इतना तेज चलता है कि आग का दाग तक नहीं लगने देता । उस घोड़े के सामने मुझे आपके सब घोड़े टट्टू नजर आने लगे । मैं सोचने लगा-टट्टुओ पर सवार होने

वालों को मेरे सामने झुकना ही चाहिए।'

आपके पास घोड़ा न होगा तो भी मन का घोड़ा तो आपके पास है ही। आप मन के घोड़े पर सवार हैं। चक्रवर्ती को वैसा घोड़ा मिलना तो कठिन नहीं है पर जीवात्मा के लिए मनुष्य होकर मन का घोडा मिलना बडा ही कठिन है। आपको यह दुर्लभ मन रूपी अश्व प्राप्त हुआ है। अब आपको सोचना चाहिए कि आप उसे किस ओर दौड़ा रहे है? यह मन का घोड़ा ही है जो मनुष्य को संतो के चरणों में ले जाता है और यही वेश्या के घर भी पहुँचा देता है। इस की दौड़ बड़ी तेज है। इस पर सवार होने वाले को सदा सावधान रहने की आवश्यकता है। जो सवार सावधान नहीं रहता, उसकी बड़ी दुर्गति होती है। यह घोड़ा असावधान सवार पर सवार हो जाता है और फिर नाना प्रकार के नाच नचाता है।

आत्मा के कल्याण और अकल्याण मे मन प्रधान कारण है। कहा है—

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।

मन ही बंध और मोक्ष का प्रधान कारण है। मन ही स्वर्ग, नरक और मोक्ष मे पहुँचाता है। इसलिए प्रतिक्षण जागृत रह कर मन रूपी घोड़े पर नियंत्रण रखना चाहिए। मन की गति का अवलोकन करते रहना चाहिए और जब वह कुपथ की ओर जाने लगे तभी लगाम खींच कर उसे

रोक लेना चाहिए और सुपथ की ओर ले जाना चाहिए। बेखबर होकर लगाम ढीली छोड देने से वह मुसीबतो के मार्ग मे ले जाता है। जो घोडा हमे मोक्ष और स्वर्ग मे पहुँचा सकता है, उस पर सवार होकर क्या नरक में जाना उचित है? सातवें नरक में प्राय: संज्ञी जीव ही जाते हैं और संज्ञी वही कहलाता है जो मन-युक्त हो। विना मन के छोटे जीवों को ऐसा भयङ्कर नरक नहीं मिलता।

अब किरपा ऐसी करो दु:ख मुझ मिट जावे।
राज करो स्वाधीन हो मुझ मन हुलसावे॥

भरत जी कहते है—'भाइयो! मेरी अंतिम प्रार्थना यही है कि आप मुझे कलंक से बचा लीजिए। आपके बिना मुझे चैन नहीं पड़ेगा। मैंने सच्चे हृदय से अपने कार्य की आलोचना की है। मै बतला चुका हूं कि किस प्रकार इस शैतानी सम्पत्ति के भुलावे मे पड़कर मैंने आपको सताया है। आप मेरे भाई है। आप इस दु:ख से मुझे बचा सकते हैं। आप लौट चले और स्वतन्त्र रहकर अपना राज्य भोगें। चक्रवर्त्ती होने का मेरा स्वप्न भंग हो गया। मुझे इसकी लालसा नहीं रही। मेरा आपके साथ स्वामी-सेवक का नहीं, भाई-भाई का सम्बन्ध रहेगा। मैं भगवान् ऋषभदेव का पुत्र हूँ और आपके सामने प्रतिज्ञा करता हूं कि अब आप को नहीं सताऊँगा। मेरी विनय मानकर आप घर लौट

चलो।'

ऐसे प्रसंग पर आपकी राय माँगी जाय तो आप क्या राय देंगे? आप शायद कह देंगे—'मामला तय हो गया। अब कोई झगड़ा नहीं रहा। अतः घर जाकर राज्य करना चाहिए। परन्तु मुनि कुछ और ही कहते हैं। उनका विचार निराला है। मुनियों के कथन पर ध्यान दीजिए:—

राज दियो प्रभु ऋषभजी,
तुम पर बीती जी आण।
प्रत्यक्ष फल छे पहनो,
आगे परम कल्याण।
चिन्ता बान्धव! वारिये ॥टेर॥

मुनियों का आश्वासन

भरत ने अपने सेवकों को हाथी, घोड़े, पालकी आदि सवारियाँ सजाने का और वस्त्राभूषण ले आने का आदेश दिया अपने भाइयों से कहा—अब आप तैयार हो जाइए और जिस सवारी पर सवार होना चाहें और जैसा वस्त्राभूषण धारण करना चाहें, वह करके घर चलिए। यह सब देख-सुन कर मुनियों ने कहा—

'भरतजी! आपने ठीक कहा है। हमने आपकी आलोचना सुनली है और विश्वास रखिए, आपके ऊपर हमारे अन्तःकरण में तनिक भी वैर-विरोध नहीं है। आप यह न समझें

कि आपके दबाव के कारण ही हमने दीक्षा ली है। भगवान् ऋषभदेव ने हमें पहले जो राज्य दिया था। उसमें यह काँटे निकले। इन काँटों से बचने का मार्ग खोजने के लिए हम लोग फिर भगवान् के शरण में पहुंचे। अब की बार भगवान ने हमें यह कटकहीन राज्य दिया है। इस राज्य का प्रभाव आप प्रत्यक्ष देख रहे हैं। इस राज्य को पाते ही सर्वप्रथम तो आपके ऊपर ही इसकी आन चली। आप हमारे सामने झुक रहे हैं, यद्यपि आपको झुकाने की हमारी लेशमात्र भी इच्छा नहीं है।

'अगर हमने आपके दूत को सूखा-सा जवाब देकर लौटा दिया होता और भगवान् की शिक्षा मान कर मुनि न बने होते और आपकी आन भी न मानते तो फल क्या होता? यही कि एक भाई, दूसरे भाई का गला काटने को तैयार हो जाता। मगर इस लोकोत्तर राज्य की प्राप्ति होने पर आप आँसू बहाते हैं। यह भगवान् के दिये हुए इस राज्य का ही प्रताप है। क्या आप यह राज्य छुड़ाकर हमें फिर उसी राज्य में ले जाना चाहते हैं, जिसके लिए भाई, भाई का प्राण लेने को तैयार हो जाता है? आप यह भूल क्यों कर रहे हैं?

मुनियों का कथन सुनकर भरत कहने लगे—'वास्तव में आपका कथन सर्वथा सत्य है। आपके धर्म का तेज पाकर

ही मेरे हृदय का अंधकार मिटा है। आपने संयम ग्रहण न किया होता तो मेरा मन शायद ही सुधरता।

मुनि कहने लगे—भरतजी! धर्म का थोड़ा-सा शरण लेने से तो तुम चक्रवर्त्ती भी हमारी आन में आ गए हो, अगर पूरा शरण लोगे तो जन्म-मरण के चक्कर से छूट जाएँगे। विश्वास रखिए, आपके प्रति हमारे हृदय में लेश मात्र भी वैर नहीं है। आपसे हमारा यही कथन है कि अगर आपसे राज्य नहीं छूटता तो कम से कम अहंकार अवश्य छोड़ कर नम्रता धारण कीजिए। इससे आपका कल्याण होगा।

भगवान ऋषभदेव के सभी पुत्र मान गये हैं, मगर पाठक जरा अपने विषय में भी विचार कर ले। उनमें किसी को सताने की, किसी का हक छीनने की या अहंकार की भावना तो नहीं है?

कथा में विभिन्नता

भगवान् ऋषभदेव ने ९८ पुत्रों को और ९८ पुत्रों ने भरत चक्रवर्त्ती को जो बात समझाई थी, वही बात क्षेमंकर मुनि ने राजा दशरथ को समझाई। कथा आगे बढ़ाने के पहले, थोड़ा सा स्पष्टीकरण कर देना आवश्यक है।

जैन साहित्य में दशरथ का पुत्र शोक से विह्वल होकर मरना नहीं बतलाया गया है, वरन उन्होंने दीक्षा लेकर

अपना और जगत् का कल्याण किया, इस बात का वर्णन विशद रूप से किया गया है।

प्रश्न हो सकता है—तब कौन-सी बात सत्य मानी जाय? इस प्रश्न को लेकर कई लोग गड़बड में पड़ जाते हैं। मगर यह ऐसी बात नहीं कि जिसके कारण किसी को गड़बड़ में पड़ना चाहिए। मकान बनाने से पहले मकान का नक्शा बनवाना, मकान बनवाना और मकान बनवाने की रिपोर्ट लिखना, यह तीन अलग-अलग बाते हैं। एक ही मकान के संबंध में यह तीन बातें होती हैं। इसी प्रकार एक धर्मशास्त्र है, एक धर्मशास्त्र की रिपोर्ट है और एक धर्मशास्त्र की कथा है। इनमें से यह धर्मशास्त्र की रिपोर्ट है। धर्मशास्त्र की इस रिपोर्ट के आधार पर अनेक इतिहास बन सकते हैं। जब एक ही किसी कथावस्तु के दो विवरण हमारे सामने उपस्थित हो तो हमें उनमे से वस्तु संबंधी सामंजस्य खोजना चाहिए, घटनाओं के पार्थक्य को प्रधानता नहीं देना चाहिए। कथाओं में घटनाएँ प्रधान नहीं होती वरन् कथावस्तु ही प्रधान होती है। कथावस्तु का भलीभांति प्रतिपादन करने के लिए घटनाओं की आयोजना होती है। अतएव हमें कथा पढ़ते समय, उसके मुख्य भाग कथा-वस्तु को जो कथा का प्राण है, ध्यान में रखना चाहिए। ऐसा करने से किसी प्रकार की गड़बड़ नहीं होगी।

जैनसाहित्य में राजा की दो दशाओं का वर्णन मिलता

है-युद्ध करते-करते मर जाना या चौथे पन में दीक्षा लेना। अगर राजा लड़ाई में जीवित रहे तो चौथे पन में दीक्षा लेते हैं। राम के वन जाते समय, रामायण के अनुसार भी कौशल्या ने कहा था–मुझे तुम्हारे वन जाने का दुःख नहीं है, क्योंकि राजा चौथे पन में वन जाते ही हैं।

जैनसाहित्य का उद्देश्य संसार में फँसे रहकर हाय-हाय करते हुए मरना नहीं, किन्तु सब कुछ त्याग कर, संयम धारण करके आत्मा का शाश्वत कल्याण करना और संसार के सामने तप-त्याग और संयम का आदर्श उपस्थित करना है। कोई भी जैनकथा इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए लिखी जायगी अथवा यों कहना चाहिए कि जिस कथा में इस उद्देश्य की पूर्ति हुई होगी वही कथा जैन साहित्य में लिखी जायगी इस उद्देश्य के विरुद्ध कोई कथा नहीं हो सकती। तुलसीदासजी को पुत्र स्नेह का आदर्श बताना था, अतएव उन्होंने अपनी रामायण में दशरथ का पुत्र-शोक में मरना बताया है। वास्तव में तुलसी रामायण कौटुम्बिक-प्रेम का पाठ सिखाने में बेजोड़ है। लेकिन इस आदर्श का फलित अर्थ यह नहीं होना चाहिए कि हर एक पिता को अपने पुत्र के वियोग के शोक में हाय हाय करके मर जाना चाहिए!

कथाकार के सामने एक निश्चित उद्देश्य रहता है। कथा का वही प्राण है। मैथिलीशरण गुप्त के साकेत को देखिए।

वे रामकथा मे रामराज्य की बात लाये हैं और अपनी कविता द्वारा उन्होंने लोगों को स्वराज्य का बोध कराया है। ऐसी स्थिति मे पुत्र-शोक मे मरना न बतला कर, जैन साहित्य में यदि दशरथ का विरक्त होकर ससार-त्यागी बनकर आत्म-कल्याण मे लग जाना बतलाया गया है तो यह स्वाभाविक ही है। भारतीय साहित्य, चाहे वह वैदिक हो, बौद्ध हो या जैन साहित्य हो, सन्यास, त्याग, तप का महत्व स्वीकार करता है और इसी से मानव-जीवन की सफलता का मूल्य आंकता है। यह आर्यजाति का सर्वसम्मत आदर्श है। फिर दशरथ का दीक्षित हो जाना क्या अनुचित है?

जैनसाहित्य पुत्रस्नेह को बुरा नहीं मानता, लेकिन पुत्र-स्नेह मे मर जाना कोई बहुत ऊँचा आदर्श भी नहीं मानता। जैन साहित्य अमरता का आदर्श उपस्थित करता है।

सारांश यह है कि किसी को स्वराज्य इष्ट है, किसी को प्रेम इष्ट है, किसी को संन्यास इष्ट है। जिसे जो इष्ट होगा, वही उसकी कथा मे प्रधान रूप से चमकेगा। उसकी कथा में उसीके अनुकूल कथा की घटना होगी।

दशरथ का सत्संकल्प

राजा दशरथ को जरा ने जागृत कर दिया था। वे सोते थे तो जागृत हो गये, लेकिन जो सोने का बहाना करते हैं, उन्हें कैसे जागृत किया जाय? देवल में रहने वाले कबूतर बाजे से कब डरने लगे? वे जानते हैं, यह तो नित्य ही बजता है।

दशरथ के हृदय में अन्तःप्रेरणा उत्पन्न हुई। वे जाग उठे और उसी समय उन्हें मुनि की सहायता भी मिल गई। जो आदमी नदी पार करना चाहता है, उसे अचानक ही अगर नौका मिल जाय तो कितनी प्रसन्नता होगी? दशरथ को भी ऐसी ही प्रसन्नता हुई। जब दशरथ भव-सागर से पार उतरने की इच्छा कर रहे थे, तभी तारने वाला मुनि रूपी जहाज उन्हें मिल गया! अब आश्रय लेने में वह ढील क्यों करेंगे?

दशरथ कहते है-मैंने भरत चक्रवर्त्ती की तथा रघुवंशियों के पूर्वजों की बात सुनी। मैं उनकी कथा का मर्म पा गया हूँ। मैं भी अपने पूर्वजों का अनुसरण करूँगा और बिछौने पर पड़े हुए, तड़फड़ाते हुए प्राण-त्याग नहीं करूँगा, वरन् अपने आत्म-कल्याण के मंगल-मार्ग पर अग्रसर होऊँगा।

इस प्रकार निश्चय करके दशरथ अपने महल में लौट आए। उन्होंने कहा—

पड़ी रह तू मेरी भव भुक्ति !
मुक्ति हेतु जाता हूँ मैं यह,
मुक्ति मुक्ति बस मुक्ति।
मेरा मानस-हंस सुनेगा,
और कौन-सी युक्ति।
मुक्ताफल निर्द्वन्द्व चुनेगा,
चुन ले कोई शुक्ति।

यह मैथिलीशरण गुप्त की कविता है, जो उन्होंने बुद्ध पर लिखी है। लेकिन यह कविता इस प्रकार की जागृति वाले सभी महात्माओं पर घटती है। यह वह साहित्य है जो सब के कल्याण के लिए रचा जाता है।

राजा दशरथ के सामने एक ओर विशाल साम्राज्य है, खजाना है, अपरिमित भोग-सामग्री है, शरीर सम्पत्ति है, राम-लक्ष्मण सरीखे सुपुत्र, सीता सरीखी सुशीला पुत्रवधू और कौशल्या-सी पतिव्रता रानी है, अर्थात् संसार की श्रेष्ठतम विभूति है और दूसरी ओर मुक्ति है। दशरथ को दोनों में से एक का चुनाव करना है। एक ओर भुक्ति है, दूसरी ओर मुक्ति। एक ओर प्रेय है, दूसरी ओर श्रेय है। इन में से किसे ग्रहण किया जाय और किसे छोड़ा जाय? दशरथ के हृदय में

थोड़ी देर तक इस प्रकार का द्वन्द्व चला। अन्त में उन्होंने यही निश्चय किया—

पड़ी रह तू मेरी भव भुक्ति!
मुक्ति-हेतु जाता हूं अब मैं,
मुक्ति, मुक्ति बस मुक्ति।

दशरथ सोचते हैं—हे भवभुक्ति! तू यहीं पड़ी रह। तुझे चाहे राम सँभाले या और कोई सँभाले, मैं नहीं सँभालूँगा। मैं राम-सा पुत्र पाकर भी क्या संसार में फँसा-फँसा ही मौत का शिकार बनूँगा? इसलिए तू राम के लिए रह। मैं तो जाता हूं। मैं यह करने नहीं जाता कि—

लेकर फकीरी चाह करत अमीरी की।
काहे का धिक्कार-शिर पगड़ी उतारी है॥

मैं केवल मुक्ति के लिए ही जा रहा हूँ। मेरा हंस और कोई युक्ति नहीं सुनेगा। उसे मुक्ति के अतिरिक्त अब और कुछ प्रिय नहीं है।

मन में बड़ी करामात है। वह कौवा भी बन जाता है और हंस भी बन जाता है। आप अपने मन को क्या बनाना चाहते हैं?

एक दौने में मांस रक्खा हो और दूसरे में मोती हो और हंस तथा कौआ आदि पक्षी वहाँ इकट्ठे हुए हो तो हंस मोती की ओर ही जाएगा और कौवा मांस की ओर ही। मांस,

मोतियों से बढ़कर चीज़ नहीं है, लेकिन कौवा अपने स्वभाव से लाचार है। मगर हंस ऐसा नहीं है 'के हंसा मोती चुगै के भूखो मर जाय।' वह मांस नहीं खायगा।

दशरथ कहते हैं—अब मेरा मानस हंस संसार की प्रिय वस्तुओं को त्याग कर निर्द्वन्द्व होकर मोती चुगेगा।

इधर या उधर, यह या वह, की अनिश्चित स्थिति को द्वन्द्व कहते हैं। सरल भाषा में:—

यो करियां ने यो करस्यूं रे,
भंडार भरिया ने फेर भरस्यूं रे।
मूढ यों नहीं जाने अब—
मरस्यूं रे, मानव डर रे।
मानव डर रे चोरासी में घर है रे।

संसार में कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है, जिसको पाने के पश्चात् सदा के लिए सब आवश्यकताएँ पूरी हो जाती हों और फिर दूसरी चीज नहीं चाहिए। अगर कड़े हैं तो कंठा चाहिए। दोनो है तो उनके लिए तिजोरी चाहिए। सोने के हैं तो हीरे के चाहिए। लाख रुपये है तो दश लाख चाहिए। भाग्य से दश लाख हो गये तो करोड़ की लालसा उत्पन्न हो गई। इस प्रकार तृष्णा का कहीं अन्त नहीं आता। सुना था कि एक अंगरेज ने एक बहुत सुन्दर पलंग खरीदा। उस पलग के पीछे कुर्सी-टेबुल आदि फर्नीचर बसाने में

साठ हजार रुपये खर्च हो गये। यही सब 'द्वन्द्व' कहलाता है।

दशरथ कहते हैं—मैं अब द्वन्द्व से निकलकर निर्द्वन्द्व होकर अपने मानस-हंस को मोती चुगाऊँगा। दशरथ आगे सोचते हैं:—

अमृतपुत्र मैं हूँ अकाम,
ओ क्षणभंगुर भव! राम राम।
रख अब अपना यह स्वप्नजाल,
मैं जागरूक हूँ ले सँभाल।
निज राजपाट धन धरणि धाम,
अमृतपुत्र मैं हूँ अकाम।
रहने दे वैभव यशः शोभ,
जब हमी नहीं क्या कीर्ति लोभ।
तू क्षम्य करूँ क्यों हाय क्षोभ,
थम थम अपने को आप थाम,
अमृतपुत्र मैं हूँ अकाम्

राम-राम तो सभी कहते हैं, मगर अधिकांश का उद्देश्य होता है:—

राम नाम जपना।
पराया माल अपना॥

किन्तु दशरथ का राम--राम और ही प्रकार का है। वे कहते हैं—हे क्षणभंगुर भव! राम राम। जैसे इन्द्रधनुष

थोड़ी ही देर मे अनेक रंग दिखा कर लुप्त हो जाता है और जिस तरह हाथी के कान और पीपल के पान चंचल होते हैं, उसी प्रकार इस क्षणनश्वर और चंचल शरीर-वैभव को मैं राम-राम करता हूं।

जब कोई किसी से विदाई लेता है-अलग होता है, तब राम-राम किया जाता है। विदाई का राम राम करने वाले बहुत मिलेंगे मगर दशरथ की भांति राम-राम करने वाले कितने हैं ? दशरथ जैसे राम-राम करने वाले निहाल हो जाते हैं।

दशरथ कहते हैं—मैं क्षणभंगुर नहीं हूँ—मैं अमृत हूं। और हे भव! तू क्षणभंगुर है। तू जिस तरह नाशवान है, मैं वैसा नाशवान नहीं हूँ। मैं अमृत हूं। मुझे जरा-मरण रोग छू नहीं सकते। तू इनसे घिरा हुआ है। मैं इतने दिनों तक तेरे साथ रहा, पर अब राम-राम करके तुझसे विदा लेता हूं।

दशरथ के इस कथन से यह ध्वनि भी निकलती है कि हे भव! मैं अब तुझे राम के लिए छोड़ता हूं। मै तो जाता हूँ, बस-राम राम!

हे भव! अगर तू समझता है कि इतने दिनों का गहरा संबंध छोड़कर अचानक चल देना कठिन है तो सुन। कोई मनुष्य फूल-माला समझ कर साँप को गले में पहन ले, लेकिन ज्यों ही उसे मालूम होगा कि यह फूलों की माला नहीं, साँप है, तो क्या वह उसे दूर करने में देरी करेगा? नहीं,

वह तुरन्त छोड़ कर भागेगा। इसी तरह मैंने तेरा क्षणभंगुर रूप जान लिया है, अतएव तुझे छोड कर जाता हूं, मैं अमृतपुत्र हूं। अकाम हूं। अब तेरे भुलावे में नहीं आऊँगा।

अकाम का अर्थ है—किसी प्रकार की चाह न रखना। लोग जो कुछ करते हैं, अकाम होकर नहीं सकाम होकर करते हैं। जैसे रुपये देते हैं सूद की कामना से. उसी प्रकार भक्ति, जप-तप आदि करते हैं-स्वर्गसुख या यशकामना से इस प्रकार कामना से प्रेरित होकर कार्य करना बनियापन है। बनियापन असली फल को नष्ट कर देता है अतएव कोई भी धर्मकार्य करते समय निष्कामभाव होना आवश्यक है। जो कुछ करो, भगवान् को समर्पित कर दो। भगवान् को समर्पित कर देने से भव-पार हो जाने का रास्ता साफ हो जाता है। जैनशास्त्र में 'कामना' को नियाणा—निदान कहते हैं। निदान एक भयंकर शल्य माना गया है।

दशरथ कहते हैं—हे क्षणभंगुर मन ! तूने अब तक मुझे अपने स्वप्न-जाल में बांध रक्खा था। अब अपना यह जाल समेट ले। अब मुझ पर जाल मत डाल। जैसे मछली को पकड़ने के लिए एक जाल होता है, उसी प्रकार यह स्वप्न-सांसारिक माया का भुलावा-भी जीव को पकड़ रखने के लिए जाल बन गया है। लेकिन जैसे रोहिताश्व मछली अपनी पूंछ की फटकार से जाल को छिन्न-भिन्न कर देती है, उसी तरह मैं भी तेरे स्वप्न-जाल को तोड़ कर फेंकता हूँ।

मैं अब तक सो रहा था, इसी कारण स्वप्नजाल मे फँसा रहा। पर अब मैं जागरूक हूँ। अब मुझे कामना भी नहीं है। इसलिए अपना स्वप्न-जाल समेट ले।

कहा जा सकता है—राजसी वैभव की गोद मे पले हो, बडे हुए हो, कभी कष्ट की सूरत नहीं देखी। फिर अब साधु अवस्था के घोर कष्ट कैसे सहोगे? सुनो—

गज चढ़ि चलता गरव मे,
सैन्या सजि चतुरग।
निरखि निरखि पगल्या धरे,
पाले करुणा-अंग।

इन बातों का मुझ पर कोई असर नहीं होगा। सच तो यह है कि संसार के सुख-वैभव शरीर के साथ हैं। जब शरीर ही नहीं तो इनकी सभावना ही क्या है? मैं शरीर का भी त्याग (ममत्व-त्याग) कर रहा हूं तो वैभव को कहां ले रक्खूँगा?

पृथक्कृते चर्मणि रोमकूपाः
कुतो हि तिष्ठन्ति शरीरमध्ये।

अर्थात्-चमड़ी के हट जाने पर शरीर मे रोम कहां रहेगे?

मैं तो अक्षय सम्पत्ति प्राप्त करने मे लगता हूं। जो मेरी असली सम्पदा है, जिसका मैं सच्चा स्वामी हूं और जो मुझसे कभी न्यारी नहीं हो सकती, उसी अक्षय सम्पत्ति को

मैं प्राप्त करूँगा। यहां का यश-वैभव मेरे किस काम का ? मनुष्य इमारत वहीं खड़ी करता है जहां उसे स्थायी रहना हो। चार दिन के बसेरे के लिए कौन पक्की इमारत बनवाता है ? दशरथ कहते हैं:—

क्या भाग रहा हूं भार देख,
तू मेरी ओर निहार देख।
मैं त्याग चला निस्सार देख,
अटकेगा मेरा कौन काम,
ओ क्षणभंगुर भव! राम-राम।

अगर कोई कहता है कि दशरथ से राज्य का भार उठाया नहीं गया, इसलिए डर कर भाग गये, तो वह मेरी ओर देखे। मेरा बल-पराक्रम कम नहीं हो गया है। मैं राज्य के भार से घबराया नहीं हूँ। मुझमें राज्य का संचालन करने की शक्ति अब भी प्रचुर परिमाण में मौजूद है। किन्तु मैं निस्सार समझ कर ही संसार त्याग रहा हूँ। अब तक मुझे यह विवेक प्राप्त नहीं हुआ था, अब हो गया है। मैं अब निस्सार को त्याग कर सार को ही पकड़ना चाहता हूं।

दशरथ इतने पराक्रमी थे कि मरते-मरते भी अगर तीर फेंकते तो पहाड़ को भेद सकते थे। मगर जागृति आने पर उनके पराक्रम की दिशा बदल गई। अब तक जो पराक्रम संसार भ्रमण के लिए था, वह अब संसार के अन्त में लगना चाहता है। 'जे कम्मे सूरा ते धम्मे सूरा' जो कर्म

करने में शूर होते हैं, वे दिशा बदल जाने पर धर्म मे भी शूर बन जाते हैं। वस्तुत. पराक्रम वही है, दिशा भिन्न-भिन्न है। जिसमे पराक्रम ही नहीं है वह न कर्म मे समर्थ होता है न धर्म में।

लोग समझते हैं—संसार छोड़कर साधु बन जाना अकर्मण्यता है. उत्तरदायित्व मे भाग निकलना है। मगर जिन्हे साधुता की मर्यादा का ज्ञान है, वह ऐसा नहीं कहेगा। साधु होकर अकर्मण्यता धारण नहीं की जाती। साधु प्रतिपल इतना कर्त्तव्यरत, उद्यत और संलग्न रहता है कि कल्पना करना भी कठिन है। राजा अपने से हीनवीर्य और अल्पसाधन-सम्पन्न शत्रु पर विजय प्राप्त करता है अपनी विशाल सेना की सहायता से और संहारक शस्त्रों से। मगर साधु जिन शत्रुओं से जूझता है, वे बड़े ही बलवान् हैं और उन पर भौतिक शस्त्रों का प्रहार काम नहीं आता। राजा के कर्त्तव्य का और उत्तरदायित्व का दायरा बहुत छोटा होता है, उसके राज्य की भौगोलिक सीमा ही उसके उत्तरदायित्व की सीमा है। मगर साधु का कर्त्तव्य और दायित्व असीम है। राजा उसी की रक्षा करता है जो उसकी अधीनता स्वीकार करता है-उसकी प्रजा बनकर रहता है, मगर साधु तीन लोक के स्थावर और जंगम, सूक्ष्म और स्थूल सभी प्राणियों की समभाव से रक्षा करता है। वह किसी को अपने अधीन रखने का प्रयत्न नहीं करता। वह स्वयं स्वाधीन है और प्राणीमात्र को अपनी ओर से

स्वाधीनता वितरण करता है। राजा अपनी प्रजा से धन लेता है और उस में धन से प्रजा की उन्नति के लिए व्यय करता है, मगर साधु अकिंचन है। उसे धन से कोई सरोकार नहीं। वह देना ही देना जानता है, लेना उसके लिए त्याज्य है। राजा की सहायता के लिए अमला होता है मगर साधु बिना किसी अमले की सहायता के एकाकी हो अपने कर्त्तव्य का पालन करता है। वह निस्पृह भाव से जगत् के उत्थान के लिए उद्यत रहता है। इस प्रकार साधु के कर्त्तव्य की कोई सीमा नहीं है अतएव उत्तरदायित्व से बचने के लिए साधुता स्वीकार नहीं की जाती किन्तु क्षुद्र उत्तरदायित्व के बदले असीम उत्तरदायित्व स्वीकार करने के लिए साधुत्व अंगीकार किया जाता है। हाँ, साधुता के नाम पर ढोंग चलाने की बात अलग है, किन्तु ढोंग करने के लिए कोई राजपाट और वैभवविलास नहीं छोड़ता। दशरथ फिर सोचते हैं—

ओ क्षणभंगुर भव ! राम राम।
रूपाश्रय तेरा तरुण गात्र,
वह कह कब तक है प्राणमात्र,
भीतर भीषण कंकाल मात्र,
बाहर बाहर है टीमटाम,
ओ क्षणभंगुर भव ! राम राम।

राम-राम, जुहारु या सलाम बिछुड़ने के समय का संकेत है। आप यह या ऐसा ही अन्य संकेत लोगों से प्रतिदिन करते

होंगे पर इस क्षणभंगुर संसार से भी कभी किया है? मौत आने पर तो सभी करते हैं मगर जो लोग जीवित रहते ऐसा करते हैं, वे धन्य हैं। संसार की सम्पदा को आज तक कोई अपने साथ नहीं ले गया है। यही विचार कर दशरथ संसार को राम-राम करते हैं।

दशरथ कहते हैं—शरीर का यह सुन्दर रूप यौवन की निशानी है। मगर यौवन तो 'गिरिनदी-वेगोपमम् यौवनम्' है, अर्थात् पहाड़ी नदी के वेग के समान है-जो आने के बाद थोड़े ही समय में समाप्त हो जाता है। ऐसे अस्थिर यौवन का भरोसा करके कौन विवेकी पुरुष निश्चिन्त हो सकता है। शास्त्र में कहा है—

> कुसग्गे जह ओसबिन्दुए,
> थोवं चिट्ठइ लम्बमाणए।
> एवं मणुआण जीवियं,
> समयं गोयम! मा पमायए॥
>
> —उत्तराध्ययन

अर्थात्-कुश की नोक पर लटकता हुआ ओस का बूंद कितनी देर ठहरेगा? पवन का हल्का-सा झोंका लगते ही वह जमीन पर गिर पड़ेगा। इसी प्रकार मनुष्यों का जीवन अस्थिर है। वह किसी भी समय समाप्त हो सकता है।

—

संकल्प की सराहना

राजा दशरथ ने मन ही मन जो विचार स्थिर किया था, उसे अमल में लाने का तत्काल निश्चय कर लिया। 'शुभस्य शीघ्रम्' इस उक्ति को चरितार्थ करते हुए उन्होने अपने सरदारो, उमरावों, रानियो और पुत्रों को बुलाकर उनके सामने अपना संकल्प प्रगट कर दिया। दशरथ बोले—'मैं अब वृद्ध होने लगा हूँ अतएव अब अपने चौथेपन का सदुपयोग करना चाहता हूँ आप सब मुझे क्या सम्मति देते हैं? मैं रोते-रोते मरना नहीं चाहता किन्तु राम के लिए राज्य त्याग कर जन्म-मरण की जड़ ही काट देना चाहता हूँ।'

दशरथ का समय भारतवर्ष का स्वर्ण-समय था वह धार्मिकता एवं आध्यात्मिकता का समय था। दशरथ का प्रस्ताव उस समय की प्रचलित परिपाटी के अनुकूल ही था अतएव यह प्रस्ताव सुनकर किसी को विस्मय नहीं हुआ। राजा लोग अपनी वृद्धावस्था मे ऐसा ही करते थे।

दशरथ के प्रस्ताव का सभी ने एक स्वर से अनुमोदन किया। उमराव कहने लगे—'आपके सफेद बाल वृद्धावस्था

के आगमन के चिह्न हैं। यह बाल जैसे पूछ रहे हैं—आप राम को राज्य देकर कब निवृत्त होंगे? महाराज ! आपका विचार सर्वथा प्रशंसनीय है । आपने श्रेष्ठ कर्त्तव्य करने का निश्चय किया है । आप के पूर्वज जैसा करते आये हैं, आप भी कीजिए। हम अपने स्वार्थ के लिए, अपने हृदय की झूठी तृप्ति के लिए, आपके मार्ग मे रोड़ा नही बनेंगे। हम सदा से आपके सहायक रहे है तो क्या अब बाधक बनेंगे ?

आपके सामने राज्य पाने और राज्य त्यागने की दोनों बातें उपस्थित हो तो आप किसे पसन्द करेंगे ? आजकल राज्य त्यागना बहुत कठिन मालूम होता है, मगर उस समय राज्य स्वेच्छापूर्वक त्याग करना उसी तरह प्रसन्नता देने वाला समझा जाता था जैसे आजकल राज्य पाना आनन्ददायक माना जाता है।

जो राजा घर में पड़ा-पड़ा मर जाता था उसके लिए तो जरूर चिन्ता की जाती थी, मगर कर्म-शत्रु को काटते-काटते मरने वाले के लिए तनिक भी चिन्ता नहीं की जाती थी। दीक्षा लेने वाले के मार्ग मे कोई बाधक नहीं होता था। हाँ, क्षणिक शोक अवश्य होता था मगर वह तो चार दिन के लिए आये मेहमान के जाने पर भी होता है । कन्या जब ससुराल जाती है तो उसे अपने पितृपरिवार का त्याग करते समय शोक होता है और पितृपरिवार को भी उसके बिछोह की वेदना होती है। मगर दोनों ही यह बात भलीभांति जानते हैं कि

सुसराल जाना ही मंगलप्रद है। जब सुसराल जाना भी मंगलप्रद है तो दीक्षा लेना अमंगल की बात होगी ?

सरदारों और उमरावों का समर्थन पाकर दशरथ को बहुत प्रसन्नता हुई। वे कहने लगे—सरदारों! तुम लोगों में धर्मभावना है, यह जानकर मुझे अत्यन्त हर्ष हुआ। मुझे सरलता से आप लोगों की सहमति मिल गई इतना ही नहीं किन्तु आप धर्मभावना के कारण न्यायपूर्वक राज्य का संचालन करेंगे, यह सोचकर भी मुझे बहुत संतोष है। अब मैं निश्चिन्त होकर आत्म-कल्याण की साधना मे लग सकूँगा।

दशरथ जरा ठहर कर फिर बोले—श्रेयस्कर कार्यों मे विलम्ब करना उचित नहीं है। कल ही रामचन्द्र को राज-सिंहासन दिया जायगा। आप लोग जाइए और तैयारी कीजिए।

राम-राज्याभिषेक की तैयारी

प्रजा की उत्सुकता

अवध की प्रजा में राम के प्रति जैसा प्रेम था, उसकी उपमा मिलना कठिन है। राम के राज्याभिषेक का समाचार बिजली की तरह अवध भर में फैल गया। बालक से लगाकर बूढ़े तक हर्ष से विह्वल हो उठे। मंगलमूल राम का राज्याभिषेक देखने की आतुरता और व्यग्रता से अवधवासी पागल से हो गए। जहाँ कान लगाओ, बस एक ही चर्चा है। सभी की जीभ पर एक ही बात।

अगर किसी दरिद्र को सवेरे राजगद्दी मिलने वाली हो तो उसे वह रात कितनी बड़ी मालूम होगी, जिसका अन्त होने पर उसे वह राज्य मिलना है? उसे वह उषा कितनी प्यारी लगेगी, जिसके बाद होने वाले सूर्योदय पर उसे राज्य मिलना है? यही बात अवध की प्रजा के लिए कही जा सकती है। प्रत्येक नर और नारी का हृदय उत्कंठा के साथ सोचता है—कब प्रभात हो और कब राम का राज्याभिषेक देखें! प्रजा को राज्य नहीं मिलना है, मगर उसकी प्रसन्नता ऐसी ही है मानो उसी को राज्य मिल रहा है।

अगर किसी प्रामाणिक पुरुष को कहीं का हाकिम बनाने की तैयारी की जाय और वह अपने में हाकिम बनने की योग्यता न पाता हो तो वह यही सोचेगा कि हाकिम बनने से साफ इन्कार कर देना ही मेरे लिए योग्य है। इस तरह बुद्धिमान् पुरुष उस पद को लेने से इन्कार कर देता है जिसकी जिम्मेवारी निभाने की ताकत उनमें नहीं है। फिर भी उसकी भावना यही होगी कि कोई बुद्धिमान पुरुष ही इस स्थान पर नियत किया जाय।

इसी प्रकार अवध की प्रजा सोचती है कि हम कब रामचन्द्रजी का राज्य देखें! अगर किसी पापी का राज्य देखना होता तब तो उत्सुकता न होती, मगर ईश्वर की समता करने वाले महापुरुष का राज्य देखने के लिए कौन उतावला न होगा ?

मित्रों की बधाई

राम के मित्रों को जब संवाद मिला कि हमारे मित्र रामचन्द्रजी का कल प्रातःकाल ही राज्याभिषेक होने वाला है तो वे हर्ष-विभोर हो उठे। उनमें बहुत-से अपने मित्र का उत्कर्ष होते देखकर प्रसन्न थे। और कुछ ऐसे भी थे जो राम के उत्कर्ष में अपना भी उत्कर्ष देखते थे। अपना उत्कर्ष देखने वाले सोचने लगे—जब राम ही राजा हो जाएँगे तब हमें किस चीज़ की कमी रह जाएगी ? ऊँचे-ऊँचे पद और हाथी, घोड़ा आदि सब अब हमारे ही होंगे।

अगर राम आपके मित्र हों तो आप उनसे क्या चाहेंगे? आप परमात्मा से प्रीति करते हैं पर किस लिए? केवल सांसारिक तृष्णा पूर्ण करने के लिए ही न? तृष्णा को क्षीण करने के लिए परमात्मा से प्रीति करने वाले विरले ही मिलेंगे और वे विरले ही निहाल होते हैं।

राम के मित्र दौड़ते-हाँफते उनके पास आ पहुँचे। वे आये तो थे राम को बधाई देने और उनका अभिनन्दन करने के लिए, पर हर्ष की अधिकता के मारे उनका बोल बन्द हो गया। मुँह से बात न निकलती। जब भावों का उद्वेग बहुत प्रबल होता है तो जीभ थक कर हार मान जाती है।

राम ने मित्रों का अभिवादन करके कहा—कहिए इस समय कैसे आना हुआ? कुछ कहिए तो सही। आपका चेहरा कहता है कि मन में कोई विशेष बात है, फिर आप मौन क्यों साधे हैं?

बड़ी कठिनाई से हर्ष का आवेग रोक कर एक ने कहा—'कल अभिषेक होगा।'

राम—किसका?

मित्र—आपका।

राम यह सुनकर उदास हो गए। राम को उदास देखकर उनके मित्र सोचने लगे—यह क्या हाल है? क्या हम कोई बुरा समाचार लाए हैं जो राम इस तरह उदास हो रहे हैं। फिर उन्होंने कहा—'महाराज दशरथ ने आदेश दे दिया है कि कल

सूर्योदय होने पर रामचन्द्र का राज्याभिषेक किया जाएगा। हम आपको यह शुभ समाचार सुनाने आये हैं, लेकिन आपकी यह निष्कारण और असामयिक उदासीनता हमारी समझ में नहीं आती। आप क्यों विषाद अनुभव करते हैं ?'

राम कहने लगे—'मित्रो ! आप मेरे सच्चे मित्र होते तो यह समाचार सुनकर मेरे पास आने के बदले पिताजी के पास गये होते। आपने उनसे निवेदन किया होता कि भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न के होते हुए राम को ही राज्य क्यों दिया जा रहा है ?'

राम के मित्र कहने लगे—'आप महाराज दशरथ के बड़े पुत्र हैं। बड़ा पुत्र ही राज्य का अधिकारी होता है। आपके होते हुए छोटे को राज्य किस प्रकार दिया जा सकता है ? क्या आप रघुवंश की परम्परा तुड़वाकर उल्टी गंगा बहाना चाहते हैं ?'

राम ने उत्तर दिया--मित्रो ! आप लोगों ने मुझे समझा नहीं है। मैं परम्परा के लम्बे प्रवाह मे बहने के लिए उत्पन्न नहीं हुआ हूं। वास्तविकता का प्रतिपादन करना मेरे जीवन का नियम है। बड़े को राज्य देने और छोटे को न देने की परम्परा में वास्तविकता क्या है ? यह परम्परा किस संगत आधार को लेकर खड़ी है ? बड़ा कौन है—देने वाला अथवा केवल लेने वाला ? अगर मेरे बदले मेरे किसी छोटे भाई को राज्य दे दिया जाय तो क्या मेरा बड़प्पन कम हो

जायगा, उस अवस्था मे जब कि मैं स्वयं ऐसा चाहता हूं। मैं समझता हूँ, अपने अधिकार का समझा जाने वाला राज्य छोटे को देने वाला इतना बडा होगा कि उसका यश संसार मे नहीं समा सकता।। वास्तव में बड़प्पन देने में है, लेने मे नहीं। कम से कम मैं तो देने मे ही बड़प्पन मानता हूं।

'मनुष्य गुणों से ही बड़ा होता है। देना एक बड़ा सद्-गुण है और यह जिसमे हो वही वास्तव मे बड़ा आदमी है। धर्म के चार भेदों में—दान, शील तप और भावना में—दान का स्थान प्रथम है। यह शिक्षा शरीर से ही मिलती है। लेकिन संसार लेना ही लेना जानता है। लोग देने का महत्व भूल रहे हैं। मैं देना सीखना चाहता हूँ।'

तुलसी या संसार मे, कर लीजो दो काम।
देने को टुकड़ा भला, लेने को हरिनाम॥

तुलसीदासजी ने इस दोहे मे स्पष्ट कर दिया है कि मनुष्य को क्या लेना चाहिए और क्या देना चाहिए। लेने के नाम पर तो भगवान् का नाम लेना उचित है और अगर बहुत न दिया जा सके तो एक टुकड़ा भी दे देना अच्छा है।

भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्।

गीता मे कहा है—जो केवल अपने लिये ही पकाता है—जिसमें दुखियो और भूखो को देने की भावना नहीं है, वह पापी है।

शास्त्रो मे श्रावक के लिए अतिथिसंविभाग बतलाया

गया है। व्रतनिष्ठ श्रावक अगर अतिथि के लिए विभाग न करे तो उसका व्रत भंग हो जाता है। मुनि कभी आते हैं, कभी नहीं आते, अगर कोई दूसरा आवे तो उसे दिये बिना खाना गृहस्थ के लिए पाप बतलाया गया है। अगर आपको दो रोटी प्राप्त हैं तो उनमें से ही एक टुकड़ा दे सकते हो। केवल 'लाओ—लाओ' ठीक नहीं।

देने का अर्थ सिर्फ साधु को ही देना नहीं है। यह ठीक है कि पूज्यबुद्धि त्यागी पुरुष पर ही होती है, लेकिन दया करके तो सभी को देना चाहिए। विद्याध्ययन समाप्त कर चुकने के पश्चात् शिष्य जब गुरुकुल का त्याग करके गृहस्थी में आने लगता था तो गुरु उसे अंतिम उपदेश देते कहते थे—

श्रद्धया देयं, अश्रद्धया देयं, भिया देयं ह्रिया देयम्।

अर्थात्—हे शिष्य! तेरे पास जो वस्तु है वह दूसरों को श्रद्धा से देना, अश्रद्धा से देना, भय से देना, लज्जा से देना।

श्रद्धा अर्थात् सामर्थ्य से देना। कदाचित् देने का सामर्थ्य न हो तो भी देना। यह देख लेना कि किसको किस चीज़ की आवश्यकता है? जिसे जिस वस्तु की आवश्यकता हो उसे वही वस्तु देना। ऐसा न हो कि भूख से तड़पने वाले को तू वस्त्र का दान दे और ठंड से कांपने वाले को रोटी बतलावे! ऐसा करना ठीक नहीं होगा।

दातव्यमिति यद् दानं, दीयतेऽनुपकारिणे ।
देशे काले च पात्रे च, तद्दानं सात्त्विकं विदुः ॥

पात्र—अपात्र का निर्णय करके दिया हुआ दान ही लाभप्रद होता है। कई लोग जूते मे मोहर रखकर भीख मांगते है और कई लोग अधिक भिक्षा पाने के लोभ से अपनी आँखें फोड़ लेते हैं अतएव पात्र-अपात्र का निर्णय कर लेना। मतलब यह है कि श्रद्धा से भी दान दे और अश्रद्धा से भी।

शोभा के लिए भी दान देना और यह भी न हो सके तो लज्जा के मारे दान देना। श्रेयस के लिए दान देना अच्छा है किन्तु अन्ततः लज्जा के लिए ही देना। अगर लज्जा से दान नहीं दे सको तो फिर डर से ही देना। ज्ञानपूर्वक दान दोगे तो ससार तरोगे ही, अगर इस तरह न दे सको तो भी दान देने मे कोई हानि तो है ही नहीं।

रामचन्द्र कहते है—मित्रो! देना सब से बड़ा सद्गुण है अगर मैं बडा हूँ तो मेरा कर्त्तव्य है कि मैं अपने छोटे भाइयों को ही राज्य दूं। छोटे भाइयों को राज्य देने से मेरा महत्व घटेगा नहीं, अपितु बढ़ ही जाएगा। मुझ मे अनन्त राज्य पाने की शक्ति है। इस राज्य को देने से मेरी शक्ति का ह्रास नहीं होगा-विकास ही होगा!

गुलिस्तां में एक कहानी आई है। एक बहुत मालदार

अमीर था। उसका एक मित्र उसके पास आया। उसने देखा, अमीर मित्र के शरीर पर कोई जेवर नहीं है। केवल एक अँगूठी है, जो उसने बाएँ हाथ में पहन रक्खी है। आगत मित्र ने अमीर से कहा—मैं आपसे एक आश्चर्यजनक बात का मतलब पूछता हूं। दोनों हाथों में दाहिना हाथ बड़ा माना जाता है। फिर आपने दाहिने हाथ में जेवर न पहनकर बाएँ हाथ में क्यों पहन रक्खा है? अमीर ने कहा—आप समझे नहीं। दाहिना हाथ बड़ा है, इसलिए मैंने उसने अपने छोटे बाएँ हाथ को अँगूठी पहना रक्खी है। बड़े का काम छोटे की सेवा करना है।

आगत मित्र ने कहा—बाएँ हाथ में भी, सब से छोटी उँगली में आपने अँगूठी पहनी है। इसका भी यही मतलब है? अमीर ने उत्तर दिया—जी हां, अब आप समझ गए। वास्तव में जो छोटों में भी छोटा है, उसे हमें भूलना नहीं चाहिए। उसी छोटे की बदौलत बड़े, बड़े कहलाते हैं। इसलिए छोटे का बहुत महत्त्व है। उसका महत्त्व दिखलाने के लिए ही मैंने सब से छोटी उँगली में अँगूठी पहनी है।

बड़े कहलाने वालों का बड़प्पन छोटों की सार सँभाल-सेवा-शुश्रूषा और प्रतिष्ठा करने में है। लेकिन आज इस तथ्य को कौन समझना चाहता है? बड़े लोग छोटों को हजम करके आप बड़े बनने की फिक्र में रहते हैं। अपने देश के, अपनी जाति के गरीबों की ओर किसका ध्यान जाता है?

अमीर था। उसका एक मित्र उसके पास आया। उसने देखा अमीर मित्र के शरीर पर कोई जेवर नहीं है। केवल एक अँगूठी है, जो उसने बाएँ हाथ में पहन रक्खी है। आगत मित्र ने अमीर से कहा—मैं आपसे एक आश्चर्यजनक बात का मतलब पूछता हूं। दोनों हाथों में दाहिना हाथ बड़ा माना जाता है। फिर आपने दाहिने हाथ में जेवर न पहनकर बाएँ हाथ में क्यों पहन रक्खा है? अमीर ने कहा—आप समझे नहीं। दाहिना हाथ बड़ा है, इसलिए तो उसने अपने छोटे बाएँ हाथ को अँगूठी पहना रक्खी है! बड़े का काम छोटे की सेवा करना है।

आगत मित्र ने कहा–बाएँ हाथ में भी, सब से छोटी उँगली में आपने अँगूठी पहनी है। इसका भी यही मतलब है? अमीर ने उत्तर दिया–जी हां, अब आप समझ गए। वास्तव में जो छोटों में भी छोटा है, उसे हमें भूलना नहीं चाहिए। उसी छोटे की बदौलत बड़े, बड़े कहलाते हैं। इसलिए छोटे का बहुत महत्त्व है। उसका महत्त्व दिखलाने के लिए ही मैंने सब से छोटी उँगली में अँगूठी पहनी है।

बड़े कहलाने वालों का बड़प्पन छोटों की सार सँभाल, सेवा-शुश्रूसा और प्रतिष्ठा करने में है। लेकिन आज इस तथ्य को कौन समझना चाहता है? बड़े लोग छोटों को हजम करके आप बड़े बनने की फिकर में रहते हैं। अपने देश के, अपनी जाति के गरीबों की ओर किसका ध्यान जाता है?

भरत का वैराग्य

जब भरत को पता चला कि पिताजी ने संसार त्याग कर दीक्षा लेने का निश्चय कर लिया है तो उनके मन में भी एक अपूर्व विचार आया। भरत ने विचार किया-पिताजी जब अनगार-दीक्षा लेना चाहते है तो मुझे भी पिता का अनुसरण करना चाहिए। अब तक मैं पिताजी के साथ खाता-पीता और आनन्द करता रहा हूं, तो क्या अब मुझे उनका साथ नहीं देना चाहिए? मुझे क्या घर ही रहना उचित है? पुत्र का कर्त्तव्य पिता की सेवा करना है। पिताजी अब तक राजा थे। सब प्रकार की सुख-सामग्री उन्हें प्राप्त थी। अनगिनती दास-दासियां हाथ जोड़ उनके सामने खड़ी रहती थी और उनकी आज्ञा की प्रतीक्षा करती रहती थीं। ऐसे समय में मुझे सेवा करने का पूरी तरह अवकाश नहीं मिलता था। साधु हो जाने के पश्चात् उनकी सेवा करने का मुझे बहुत अच्छा अवसर मिलेगा और मेरी आत्मा का भी कल्याण होगा। इस प्रकार मेरे दीक्षा लेने से दोहरा लाभ है।

इस प्रकार विचार करके भरत दशरथ के पास पहुँचे। उन्होंने दशरथ से गद्गद होकर कहा—

भरत भरणे प्रभुजी सुनो
मं मत लेस्यूं लार ।
हेत न जाणे आपणो
ते साचो ही गंवार ।
पहलो दुख तो एक ए,
विरह तुम्हारो होय ।
अरु संसार वधारणो
दो दुख देखे कोय ॥

'पिताजी ! आपने जो विचार किया है सो धर्म के अनुकूल तो है ही रघुवंश की परम्परा-परिपाटी के अनुसार भी उचित है। राजाओं का यही अंतिम कर्त्तव्य है लेकिन मैं आपसे एक प्रार्थना करना चाहता हूँ।'

पिता का और परमात्मा का दर्जा बड़ा ऊँचा बतलाया गया है। पितृ प्रेम एक नैसर्गिक आकर्षण है, जो छोटे से बालक में भी पाया जाता है। मेरी सांसारिक अवस्था की माताजी का जब देहावसान हुआ, तब मैं बहुत छोटा था। मेरे पिताजी ने ही मेरा पालन-पोषण किया। मैं उन्हीं के पास रहता था। पिताजी ही मेरी माता थे। एक बार रतलाम जाते समय वे मुझे मामा के घर छोड़ गए। रात्रि में मैं सो रहा था कि अचानक मेरी नींद खुल गई। मैं धीरे से उठा और किवाड़ खोलने लगा। किवाड़ों की आवाज से मामाजी की नींद खुल गई। उन्होंने पूछा—कौन है ? मैंने कहा—मैं हूँ।

मामाजी ने पूछा—क्यों किवाड़ खोलता है? मैंने उत्तर दिया—भाईजी (पिताजी) के पास जाऊँगा।

रतलाम वहाँ से बीस कोस दूर था और मैं चार वर्ष का बालक था। फिर भी पिताजी का आकर्षण मुझे रतलाम जाने के लिए प्रेरित कर रहा था।

मनुष्य का बचपन में पिता पर इतना प्रेम होता है तो आगे चल कर बढ़ना चाहिए या घटना चाहिए? मगर होता यह है:—

बेटा झगड़त बाप से, करे तिरिया से नेहु।
बदाबदी से कहत हूँ, मोहि जुदा करि देहु॥
मोहि जुदा करि देहु चीज सब घर में मेरी।
केती करूँ खराब अकल बिगरेगी तेरी॥
कह गिरधर कविराय सुनो ओ मेरे मित्ता।
औसर पलटा खाय बाप से झगरत बेटा॥

ऐसे भाग्यशाली कुल विरले ही होंगे जिनमें पुत्र की आयु वृद्धि के साथ-साथ पितृ प्रेम की भी वृद्धि होती है। अन्यथा यही दशा होती है, जिसका वर्णन गिरधरराय ने किया है। सौभाग्य से भरत ऐसे झगड़ाखोर लड़कों में नहीं थे। इसी कारण उन्हें पिता की सेवा करने का उत्तम विचार उत्पन्न हुआ।

दशरथ के पास पहुंच कर भरत ने कुछ प्रार्थना करने की आज्ञा मांगी।

दशरथ ने सोचा—मैं राम को राज्य दे रहा हूँ, कहीं भरत मुझ से राज्य मांगने तो नहीं आया है? ऐसा न हो कि भरत मेरी दीक्षा या राम के राज्य-अभिषेक में विघ्न डाल दे।

अन्त में दशरथ ने कहा—कहो तुम क्या कहना चाहते हो?

भरत—मैं एक प्रार्थना करना चाहता हूं और वह यही कि आपके चरणों से मेरा वियोग न हो।

दशरथ—यह कैसे हो सकता है? क्या तुम मुझे घर मे ही रखना चाहते हो?

भरत—नहीं पिताजी, मैं आपकी दीक्षा में विघ्न नहीं डालना चाहता किन्तु आपके साथ ही मैं भी दीक्षा लेना चाहता हूं।

भरत का विचार जानकर दशरथ चकित रह गये। उन्होंने कहा-बेटा! तुम्हारा विचार उत्तम है लेकिन तुम्हारी उम्र अभी दीक्षा लेने योग्य नहीं है। अच्छा काम भी उचित अवसर पर ही होना चाहिए। इसके अतिरिक्त तुम्हारी माता का तुम्हारे ऊपर बहुत प्रेम है। तुम माता की आज्ञा लिये विना दीक्षा नहीं ले सकते।

भरत—पिताजी, मैं दीक्षा अवश्य लेना चाहता हूं। दीक्षा न लेने से प्रथम तो आपका वियोग होता है और दूसरे संसार में जन्म-मरण करना पड़ता है। यह दोनो दुख सहने की अपेक्षा आपके साथ दीक्षा लेकर जन्म-मरण को जड़ काटना क्या बुरा है?

दशरथ—बुरा नहीं है वत्स, दीक्षा लेना बुरा नहीं है। बुरा होता तो मैं स्वयं क्यों दीक्षा का मार्ग ग्रहण करता? किन्तु प्रत्येक काम उचित रीति से होना चाहिए अतएव अपनी माता की आज्ञा लिए बिना तुम दीक्षा नहीं ले सकते।

भरत—ऐसा ही है तो मैं माताजी के पास जाता हूं। उनसे आज्ञा प्रदान करने के लिए निवेदन करता हूं।

राज्याभिषेक में विघ्न
जैन रामायण का वर्णन

महाराज दशरथ ने रामचन्द्र का राज्याभिषेक करने का आदेश दे दिया था। उनका आदेश पाते ही अभिषेक की तैयारी आरम्भ हो गई। अयोध्या नगरी में घर-घर आनन्द छा गया। नगर-निवासियों ने समझा, मानों हमारे घर में ही उत्सव है। सुहागिनें मंगलगान गाने लगीं। उत्साह का पूर उमड़ आया। राज्यप्रसाद एक विचित्रता से उभर रहा था।

इसके वाद जो घटना घट रही है, उसका उल्लेख जैन रामायण मे भी है और तुलसीरामायण में भी है। किन्तु दोनों रामायणों मे उस घटना के कारण में अन्तर देखा जाता है। तुलसीरामायण में मन्थरा के उकसाने पर कैकेयी ने अपना धरोहर-स्वरूप वर दशरथ से मांगा है, जब कि जैनरामायण में मन्थरा का कोई उल्लेख नहीं है। जैनरामायण के अनुसार कैकेयी को पता चला कि मेरे पति भी संयम धारण कर रहे हैं और साथ ही पुत्र भी दीक्षा लेने की तैयारी कर रहा है। ऐसी स्थिति में मैं सर्वथा निराधार हो जाऊँगी। श्रीरविषेणाचार्य ने पद्मचरित में इस सम्बन्ध में लिखा है—

कथं न मे भवेद् भर्त्ता न च पुत्रो गुणालयः ।
एतयोर्वारणे कुर्वे कमुपायं सुनिश्चितम् ॥
एवं चिन्तामुपेतायाः परमं व्याकुलात्मनः ।
तस्या वरोऽभवच्चित्ते गत्वा च त्वरितं ततः ॥
प्रीत्या परमया दृष्ट्वा सावष्टंभं नराधिपम् ।
जगादर्धासने स्थित्वा तेजसा पुरुणान्विता ॥
सर्वेषां भूभृतां नाथ ! पत्नीनां च पुरस्त्वया ।
मनीषितं ददामीति यदुक्ताहं प्रसादिना ॥
वरं सम्प्रति तं यच्छ मह्यं कीर्तिसमुज्ज्वलः ।
दानेन तेऽखिलं लोकं कीर्त्तिर्भ्रमति निर्मला ॥

अर्थात्—रानी कैकेयी सोचने लगी-अपने पति और पुत्र को दीक्षा लेने से रोकने के लिए क्या उपाय करना चाहिए ? इस प्रकार सोचते-सोचते उसका चित्त अत्यन्त व्याकुल हो गया। तब उसे 'वर' का स्मरण आया। वह उसी समय दशरथ के पास जा पहुँची। बड़े प्रेम और आदर के साथ राजा की ओर देखकर वह अर्धासन पर बैठी और कहने लगी-नाथ! आपने प्रसन्न होकर पहले सब राजाओं और पत्नियों के समक्ष मेरी इच्छा के अनुसार वर देने के लिए कहा था। अब वह वर मुझे दीजिए। आप दानी हैं। दान की बदौलत आपकी कीर्त्ति संसार भर में भ्रमण कर रही है।

वर की याचना करने पर दशरथ बोले-'प्रिये ! मुझे भली-भांति स्मरण है। मैंने तुम्हें वर दिया था और वह धरोहर की तरह मेरे पास सुरक्षित है। अच्छा हुआ, तुमने उसे याद कर लिया। अन्यथा तुम्हारा ऋण मुझ पर चढ़ा रह जाता। अब मैं तुम्हारे ऋण से मुक्त होकर ही दीक्षा लूँगा।'

रानी ने सोचा-अगर महाराज वर की याचना किये बिना ही दीक्षा लेने का विचार स्थगित कर दें तो वर मांगने की आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी। यह सोच कर उसने कहा—

वद किं कृतमस्मभिः येनासि त्यक्तुमुद्यतः।
ननु जीवितमायातमस्माकं त्वयि पार्थिव !
अत्यन्तं दुर्धरोद्दिष्टा प्रव्रज्या जिनसत्तमैः।
कथमाश्रयितुं बुद्धिस्तामद्य भवता कृता ॥
देवेन्द्रासदृशैर्भोगैरिदं ते लालितं वपुः।
कथं चक्ष्यति जीवेश ! श्रामण्यं विवधं परम् ॥

अर्थात् 'राजन् ! कहिए हम से क्या अपराध बन पड़ा है कि आप हमारा त्याग करने पर उतारू हो गए हैं ? हमारा जीवन तो आपके ही सहारे है आप हमें त्याग देंगे तो हमारी क्या गति होगी ? जिनेन्द्र भगवान् ने कहा है कि साधु-दीक्षा बहुत ही कठिन है। उसका पालन करना सहज नहीं है। आपने किस कारण दीक्षा लेने का विचार किया है ? प्राणेश ! आपका शरीर बहुत कोमल है इन्द्र के समान विपुल भोगो

से इसका लालन—पालन हुआ है यह कोमल शरीर उस कठिन दीक्षा को किस प्रकार सहन करेगा ?

महारानी के इन स्नेहपूर्ण कथन का दशरथ पर अब कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता था। उन्होंने संयम धारण करने का पक्का विचार कर लिया था। किसी भी प्रकार का प्रलोभन उन्हें अपने निश्चय से डिगा नहीं सकता था। अतएव दशरथ ने कहा—

वाञ्छितं वद कर्त्तव्य स्वयं यास्यामि साम्प्रतम् ।

अर्थात्—हे रानी ! मैं तो अब जाऊँगा ही। तुम्हारा जो इष्ट हो सो कहो। अपना वर मांग लो। मेरा निश्चय अब पलट नहीं सकता।

रानी ने देखा कि पति ने अटल निश्चय कर लिया है और उसमें परिवर्तन की कोई गुंजाइश नहीं है। ऐसी स्थिति में अब पुत्र को ही रखने का प्रयत्न करना उचित है। पुत्र भरत को संयम से रोकने का एक मात्र उपाय यही दिखाई देता है कि उसके सिर पर राज्य का बोझ डाल दिया जाय। मगर भरत के लिए राज्य मांगने का काम सरल नहीं था। रानी जानती थी कि इस कुल में ज्येष्ठ पुत्र ही राज्य का अधिकारी होता आया है। इस परम्परा के अनुसार रामचन्द्र ही राज्य का अधिकारी है। रामचन्द्र के राज्याभिषेक की तैयारी भी आरंभ हो गई है। राम मेरा, राजपरिवार का और प्रजा का भी बहुत प्यारा है। वह सब प्रकार से योग्य और विनीत है।

मैं भले ही उसकी विमाता हूँ, मगर वह मुझे माता ही मानता है। मैं भी उसे भरत से कम प्रेम नहीं करती अतएव भरत के लिए राज्य मांगना मुझे शोभा नहीं देता। मगर ऐसा न करूँ तो भरत हाथ से जाता है। कोमल-वय भरत को मैं साधु-अवस्था में कैसे देख सकूँगी ? पति और पुत्र–दोनों से वंचित होकर मैं क्या करूँगी ? किस प्रकार जीवित रह सकूँगी ?

कैकेयी बड़े असमंजस में पड़ गई। इधर कुआं उधर खाई की कहावत उस पर पूरी घटने लगी। अन्त मे उसने विचार किया—राम स्वतः महान् है। उसकी महत्ता न राज्य पाने से बढ़ सकती है और न राज्य न पाने से घट सकती है। भरत की राम पर जो अपरिमित श्रद्धा है, वह कभी कम नहीं हो सकती। राम इतना उदार है कि भरत के राजा हो जाने पर भी वह भरत को प्रेम करेगा। ऐसी स्थिति मे भरत अगर राजा हो जाए तो क्या हर्ज है ? आखिर तो वह भी दशरथ का पुत्र और राम का भाई ही है।

हृदय को सबल बनाकर कैकेयी ने यह विचार स्थिर कर लिया, मगर, जिह्वा से कहना उसके लिए असंभव हो गया ! सोचने लगी–यह बात महाराज के सामने कहूँ कैसे ? महाराज दशरथ मुझे कितनी क्षुद्र और नीच समझेंगे ? इनके चित्त को आघात पहुँचा तो क्या होगा ? इस प्रकार लज्जा और संकोच की मारी कैकेयी मुख से बोल न निकाल सकी। थोड़ी देर मौन साधने के पश्चात्, जब दशरथ ने वर-याचना का

तकाजा किया तो अनमने भाव से, लज्जित होते हुए उसने जमीन पर लिख दिया—

> इत्युक्त्वा लिखितं चोर्ण्यां प्रदेशिन्या नतानना।
> जगाद--'नाथ! पुत्राय मम राज्यं प्रदीयताम् ॥'

रानी ने लज्जा से अपना मुँह नीचा कर लिया। वह मुँह से बोल न सकी। उँगली से जमीन पर सिर्फ इतना लिख दिया—'नाथ! मेरे पुत्र भरत को राज्य दे दीजिए।'

तुलसीरामायण का विवरण

संगति का प्रभाव पड़े विना नहीं रहता। अतएव कोई कैसा ही बुद्धिमान्, नीतिमान्, होशियार और धर्मात्मा हो उसे बुरी संगति से बचाना चाहिए। बुरी संगति का प्रभाव किस प्रकार पड़ता है यही बताने के लिए ही यह कथा कही जा रही है। यह कथा जैनरामायण में नहीं है पर कथा का उद्देश्य शिक्षा ग्रहण करना है और इस कथा से भी शिक्षा मिलती है।

दशरथ की रानी कैकेयी कुलीन, बुद्धिमती और घर में फूट न होने की इच्छा रखने वाली, कल्पलता के समान सब को प्रिय थी, लेकिन कुल्हाड़ी कल्पलता को भी काट डालती है। कैकेयी अच्छे विचार की स्त्री होने पर भी कुसंगति के कारण बुरी कहलाई। मन्थरा नामकी उसकी दासी थी। तुलसीरामायण में कहा है—

देखि मंथरा नगर-बनावा,
मंजुल मंगल बाज बधावा।
पूछेसि लोगन काह उछाहू,
रामतिलक सुनि भा उरदाहू।

जैसे किसी फले-फूले बाग में कोई दुष्ट जाए और उसे

बुरी दृष्टि से देखे, उसी तरह मंथरा उत्सव से भरी अयोध्या में निकली और लोगो के आनन्द को देखकर पूछने लगी-आज नगर में यह आनन्द किस निमित्त से हो रहा है ? कोई उत्सव तो है नहीं फिर यह अपूर्व चहलपहल किस बात की है ?

मंथरा की बात सुनकर लोग कहने लगे—तू राजपरिवार की दासी है फिर भी तुझे उत्सव का कारण मालूम है ? कल राम का राज्यभिषेक होगा। और महाराज दशरथ राज्य का भार त्याग कर आत्मकल्याण के लिए वन को जाएँगे।

करहि विचार कुबुद्धि कुजाती,
होइ अकाज कवन विधि राति।
देखि लागि मधु कुटिल किराती,
जिमि गंव तकइ लेउं केहि भांती।

राम को कल राज्य मिलेगा, यह सुनते ही मंथरा के शरीर में आग लग गई। उस कुटिला दासी के मन में कुबुद्धि आई। वह सोचने लगी—कल राम राजा होंगे! अब क्या करना चाहिए? क्या उपाय किया जाय कि रंग में भंग हो जाय। जैसे शहद लगा देखकर भीलनी सोचने लगती है कि यह शहद किस प्रकार प्राप्त करूँ ? इसी प्रकार मंथरा कोई उपाय सोचने लगी। मथरा को ध्यान आया—अभी गनीमत है कि राम को राज्य मिलने में रात भर की देरी है। इस एक रात में तो बहुत काम हो सकता है। अगर इस रात में मैंने

पांसा न पलट दिया तो मेरा नाम मंथरा ही क्या ? मैं ऐसा उपाय करूंगी कि राम को राज्य नहीं मिलने पाएगा !

मंथरा की कुबुद्धि भीलनी की कुबुद्धि के समान थी। शहद की मक्खियां वेचारी न जाने कहाँ-कहाँ से फूलों का रस ला-ला कर शहद तैयार करती है, न मालूम किस प्रकार शहद रखने के लिए छत्ता तैयार करती हैं, उसमें मोम लगाती हैं और उस पर वैठ कर गुनगुनाया करती हैं ! लेकिन भीलनी को इन सब बातों से क्या प्रयोजन है ? वह निर्दयता के साथ शहद लूट लेती है-मधुमक्खियों का सर्वस्व हर लेती है और वे वेचारी रोती रह जाती है।

मंथरा ने राम के राज्याभिषेक में विघ्न डाल कर पुरवासी रूपी मधुमक्खियों को दुखित करने का निश्चय कर लिया। यद्यपि राम को राज्य न मिलने से मंथरा को कोई लाभ नहीं था, और राज्य मिलने से उसे कोई हानि भी नहीं थी, फिर भी ईर्षा से अंधा व्यक्ति ऐसी बातों का विचार नहीं करता। भीलनी शहद के लोभ से मक्खियों को सताती है, पर मंथरा को राम की राज्य प्राप्ति में विघ्न डालने से कुछ भी नहीं मिलेगा। वह दासी मिटकर रानी नहीं बन जाएगी। मगर अज्ञानी जीव निरर्थक ही अपना मुँह काला करके दूसरे का अनिष्ट करते हैं।

भरत-मात पहँ गई बिलखानी,
का अनमनि हसि कह हँसि रानी।
उतरि देइ न लेइ उसासू,
नारि-चरित करि ढारइ आँसू।

मन्थरा केकयी की दासी थी। इसलिए वह दौड़ी हुई उसी के महल में पहुँची। वह थी तो कूबड़ी पर थी बड़ी चतुर। चतुर न होती तो इतना बड़ा साहस कैसे कर सकती थी? अपनी चतुरता के कारण वह रानी को प्रिय थी।

मंथरा घोर दुःखी होने का स्वांग बनाती हुई, अनमनी होकर रानी के पास पहुँची। इस स्थिति में देखकर रानी ने हँसकर पूछा- आज तू अनमनी क्यों है? मगर मंथरा ने कुछ उत्तर नहीं दिया। वह लम्बे लम्बे सांस भरने लगी और त्रिया-चरित्र करके आँसू बहाने लगी।

रोना त्रिया-चरित्र का एक अंग है। मर्द वही है जो त्रिया-चरित्र में नहीं फँसता।

केकयी पूछने लगी—मेरी बात का उत्तर क्यों नहीं देती? तेरे रोने से जान पड़ता है कि आज कोई विशेष बात है।

हँसि कहि रानि गालु बड़ तोरे,
दीन्ह लखन सिख अस मन मोरे।
तबहुँ न बोलि चेरि बड़ पापिनि,
छोडे स्वास कारि जनु नागिनि॥

केकयी मंथरा से कहने लगी-तेरी जीभ बहुत चलती है। जान पड़ता है, आज तेरी जीभ चली होगी और उसी का नतीजा तुझे भोगना पड़ा है। मेरे कारण और लोग तो तेरे साथ रियायत कर देते हैं। मगर लक्ष्मण किसी की बात नहीं सुनता। तूने उसको कोई बात कही होगी और उसने तेरी पूजा

उतारी होगी। क्यों यही बात है न?

मंथरा फिर भी कुछ न बोली। पिटारी में बंद काली नागिन जैसे फुफकारती है, उसी प्रकार वह भी लम्बे-लम्बे सांस छोड़ने लगी।

किसी को काटने से नागिन का पेट नहीं भर जाता, फिर भी वह बदनाम होती है और जिसे काटती है उसके प्राण चले जाते हैं। मंथरा को राम के राज्याभिषेक में विघ्न डालने से कोई लाभ नहीं था, फिर भी वह बदनाम हुई और सारी अयोध्या को उसने घोर पीड़ा पहुँचाई!

समय रानि कह कहसि किन, कुशल राम महिपाल।
भरत लखन रिपुदमन, सुनि मा कुबरिहि उर साल॥

मंथरा को रोती देख रानी ने सोचा—यह बहुत रोती है तो कोई और बात होनी चाहिए। रानी को किसी अशुभ की आशंका हुई। उसने पूछा—कहती क्यों नहीं, क्या बात है? महाराज, राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न सकुशल हैं न? इन्हीं की कुशलता में सबकी कुशलता है।

राम का नाम सुनते ही मंथरा के अंग-अंग में आग लग गई। वह कहने लगी—

कत सिख देइ हमहि कोउ माई।
गरव करब केहि कर बल पाई॥
रामहिं छाड़ि कुसल केहि आजू।
जिनहिं नरेस देत युवराजू॥

मुझे कोई शिक्षा क्यों देगा ? मैं बोलूँगी किसके बल पर कि मुझे कोई शिक्षा दे ? मुझे सिर्फ आपका बल है, लेकिन ऐसी आप हैं कि बिना अपराध किये ही उलाहना देती हैं। अगर अपराध हो जाएगा तब तो कहना ही क्या है ? आप औरों की कुशल पूछती हैं पर अपनी कुशल का भी कुछ ध्यान है या नहीं ? रानी होकर इतनी भोली हो ! ऐसा भोलापन किस काम का ! आप राम की कुशलता पूछती हो मगर आज राम के सिवाय और किसकी कुशल है ? राज घराने वालों को राज्य ही प्रिय होता है और वह राम को मिल रहा है। इसके अतिरिक्त और उन्हें चाहिए ही क्या ? महाराज कल ही राम को राज्य दे रहे हैं।

भा कौशल्यहि विधि अति दाहिन ।
देखत गर्व रहत उर नाहिन ॥
देखहु जाइ न कस सब शोभा ।
जो अवलोकि मोर मन छोभा ॥

आज अगर किसीका भाग्योदय हुआ है तो केवल कौशल्या का। आज उसके भाग्य पर चार चांद लग गए। उनके बेटे को राज्य मिल रहा है। वे राजमाता होंगी। आप जाकर देख क्यों नहीं आतीं कि उनके घर कैसा आनन्द हो रहा है ! आपको इन बातों का पता ही नहीं है ! आप समझती हैं कि महाराज का हमारे ऊपर बहुत प्रेम है। मगर उन्होंने पूछा भी सही कि राम को राज्य दूं या नहीं ? जहाँ देखो, राम और कौशल्या की ही चर्चा है। आपका नाम कौन लेता है ? मुझे

अभी तक इस षड्यन्त्र का पता नहीं था। अब मालूम हुआ कि आपके विरुद्ध भयानक जाल रचा गया है।

मंथरा की इस प्रकार की बहुत-सी बातें सुनकर कैकेयी ने जान लिया कि इसकी बातें प्रिय तो हैं, मगर इसका मन मैला है। वह रुष्ट होकर मंथरा से कहने लगी-अरी कुटिला! तुझे इस मंगल-कार्य मे अमगल कैसे सूझ रहा है! महाराज अवध का राज्य राम को देते हैं, इससे अधिक खुशी का अवसर और क्या हो सकता है? राम बडे हैं, वही तो राज्य के अधिकारी हैं!

केकयी की आंखे लाल हो गईं। उसने कहा-खबरदार, मैं सोने की कटारी पेट में भौंकने वाली नहीं हूँ। मैं तुझे प्यार करती हूँ, लेकिन तूने राम और कौशल्या की बुराई करके घर मे फूट डालने की चेष्टा की तो तेरी जीभ खिचवा लूँगी मैं समझ गई, तू मेरा हृदय मलीन बनाना चाहती है। आयंदा इस तरह की बात मत करना। इसी मे तेरी कुशल है।

केकयी बड़ी बुद्धिमती और गुणवती थी। फिर भी कुसंगति ने उसे धर दबाया। जब केकयी जैसे स्वच्छ-हृदय रानी भी कुसंगति के प्रभाव से न बच सकी तो औरों का क्या कहना है? अतः कुसंगति से सदैव बचते रहने की आवश्यकता है। आज भारतवर्ष मे जगह-जगह मंथराएँ मौजूद हैं, जो प्रेम-पूर्वक हिलमिल कर रहने वाले परिवार में फूट और कलह के जहरीले बीज बो देती हैं और फिर तमाशा देखती है। ऐसा

करने वाला चाहे कोई पुरुष हो या स्त्री, उससे दूर ही रहना चाहिए। साथ ही आपको सदैव स्मरण रखना चाहिए कि ऐसा करना घोर कुकर्म है, अतएव आप किसी के परिवार को फोड़ने का प्रयत्न न करें।

काने खोरे कूबरे, कुटिल कुचाली जानि।
तिय विशेष पुनि चेरि कहि, भरतमात मुसक्यानि॥

केकयी कहती है—काने, खोड़े और कुबड़े कुटिल होते ही हैं, तिस पर स्त्री जाति पर यह बात खास तौर पर घटती है और फिर स्त्रियों में भी दासी पर! अब तू चुप रह। फिर कभी मुँह से ऐसी बात मत कहना। इतना कह कर रानी मुस्करा दी।

'यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्ति'

अर्थात् जिसकी आकृति अच्छी होती है उसमें गुण भी अच्छे होते हैं और जिसकी आकृति अच्छी नहीं होती उसमें अच्छे गुण भी नहीं होते।

रानी के इतना कहने पर भी मन्थरा अपने उद्देश से विचलित नहीं हुई। जैसे दो-चार मक्खियों के काट लेने पर भी भीलनी शहद लेने के उद्देश्य से विचलित नहीं होती। मन्थरा जानती थी कि रानी का यह क्रोध क्षणिक है-एक उफान है, जो अभी शांत हो जाएगा।

प्रियवादिनि सिख दीन्हेउ तोही,
सपनेहु तो पर कोप न मोही।

सुदिन सुमंगल दायक सोई,
तोर कहा फुर जेहि दिन होई।
जेठ स्वामि सेवक लघु भाई,
यह दिनकरकुल रीति सदाई।
राम-तिलक जो साँचेउ काली,
मांगु देउं मनभावत आली।

कैकयी के क्रुद्ध होने पर मन्थरा जब अनसनी-सी खड़ी हो गई, तब रानी विचार करने लगी—मैंने इसे बहुत कठोर शब्द कह दिये हैं। अब तक मैं इसे प्रेम करती आई हूँ। आज इतने कठोर शब्द कह देना ठीक नहीं हुआ। इस तरह विचार कर रानी ने उससे फिर कहा—प्रियवादिन, मैंने तुझसे जो कुछ कहा, शिक्षा देने के लिये ही कहा। मैं तुझ पर तनिक भी नाराज़ नहीं हूँ। तूने अपनी ओर से अमंगल शब्द ही कहे हैं, मगर उनमें भी मुझे मंगल दिखाई दिया।

समझदार मनुष्य बुराई में से भी अच्छाई खोज निकालते हैं। आप अपने घर का कूड़ा-कचड़ा बाहर फैंक देते हैं लेकिन किसान उसी कचरे को खेत में डालकर अन्न उत्पन्न करता है!

रानी कहती है—तेरे कथन में मंगल यह है कि कल राम को राज्य मिलेगा। वास्तव में वह दिन धन्य होगा जब राम राजा होंगे। अगर तेरा कहना सच है तो मांग, मैं मुँह मांगी बधाई देती हूँ। राम को राज्य मिलने मे बुराई क्या है? तुझे इससे दुखित क्यों होना चाहिए था!

कौशल्या सम सब महतारी ।
रामहि सहज स्वभाव पियारी ॥
मो पर करहिं सनेह विशेषी ।
मैं करि प्रीति-परीक्षा देखी ॥

राम का जन्म कौशल्या के उदर से हुआ है, लेकिन वे कौशल्या के ही हैं या कौशल्या को ही वे माता मानते हैं, यह बात नहीं है। राम के लिए सब माताएँ समान हैं, मुझे तो वह कौशल्या से भी अधिक मानते हैं, यह बात मैंने उनकी प्रीति की परीक्षा करके देख ली है। मैं तो यही कहती हूँ—

जो विध जन्म देहि करि छोहू ।
होहु राम-सिय पूत-पतोहू ॥

अगर मुझे फिर जन्मना पड़े और स्त्री बनना पड़े तो मैं यही चाहती हूँ कि राम सरीखा पुत्र और सीता सरीखी पुत्रवधू ही मिले। मेरा सौभाग्य है कि इस जन्म में भी राम और सीता के समान पुत्र और पुत्रवधू की प्राप्ति हुई है।

केकई भरत की माता थी, पुण्यवती थी, अच्छे विचार वाली थी। वह मंथरा के कहने से तब तक नहीं डिगी जब तक कि उसकी खुद की बुद्धि नहीं बिगड़ी। अपने कुल की मर्यादा को जानने वाली और राम पर अपरिमित स्नेह रखने वाली केकयी भी अन्त में कुसंगति के कारण गिर गई। इससे यह शिक्षा मिलती है कि अच्छा से अच्छा व्यक्ति भी कुसंग

पाकर बुरा बन जाता है। जैसे डाक्टर घाव को ज़हरीले कीड़े से बचाते रहते हैं, उसी प्रकार अपने आपको बुरी संगति से बचाना चाहिए।

कैकेयी से आश्वासन पाकर मंथरा ने कहा-मुझे क्या करना है ? मेरी तरफ से चाहे जो हो। मैंने आपकी भलाई के लिए ही इतना कहा था। लेकिन जब आपको अपनी चिंता नहीं तो मुझे क्या लेना-देना है ? मेरे चिन्ता करने से हो भी क्या सकता है ? पीछे आप ही पछताएँगी।

मन्थरा की इस बात से कैकेयी के मन में भ्रम ने प्रवेश किया। वह सोचने लगी-यह दासी चतुर है, राजतन्त्र जानती है और मेरा हित चाहने वाली है राजतन्त्र में छल-कपट भी चलता है, अतएव होशियार तो रहना ही चाहिए। उसने मन्थरा को सपथ देकर कहा—तू सच बता, वास्तव में बात क्या है ?

फोरन जोगु कपार अभागा।
भलेउ कहत दुख रौरेहु लागा॥

मन्थरा ने अपना सिर फोड़ते हुए कहा-महारानीजी, मेरा यह भाग्य ही फोड़ने योग्य है। इसी कारण मेरी कही हुई अच्छी बात भी दूसरों को बुरी लगती है।

मन्थरा का हाथ पकड़ कर और सिर फोड़ने से रोक कर कैकेयी कहने लगी-तू कह तो सही कि असल में बात क्या है ?

मन्थरा ने सोचा-तीर निशाने पर लगना चाहता है। लेकिन बनती हुई बोली—अब मैं किस मुहँ से बात कहूं? एक बार कहने का इनाम तो आपने दे दिया! आपको वही प्यारे हैं जो झूठी किन्तु मीठी-मीठी बात कहते हैं। सच्ची और खरी बात कहने वाली मैं बुरी लगती हूँ। खैर, मेरा क्या बिगड़ता है? मै अब ठकुरसुहाती बात ही कहूंगी!

कैकेयी ने भरत की शपथ देकर कहा-तू सच कह। तेरी बात मेरी समझ में नहीं आई। इससे इतना कहा। मुझे माफ़ कर और निडर होकर सारी बात कह।

रानी को बात सुनने के लिए आतुर देखकर वह फिर रोने लगी। रोते-रोते बोली—मैं आपका अहित नहीं देख सकती। इससे मैं आपसे कहने आई मगर आपने मुझे कपटिन बनाया और कुबड़ी आदि कह कर मेरी भर्त्सना की। मैं कुबड़ी हूँ, इसमे मेरा क्या अपराध है? यह तो मेरे कर्म का फल है। आगे के लिए मैं कोई बुरा काम करूँ तो मेरा दोष हो सकता है। आपने भरत की सपथ न दी होती तो मैं एक भी शब्द न कहती। आप राम और भरत को समान समझती हैं पर वे दिन चले गये जब दोनों समान थे। अब राम वह राम नहीं रहे। अब वह जवान हो गये हैं। अब आप पर उनका वह प्रेम नहीं है। आप इस भ्रम में हैं कि राजा आपको प्रेम करते हैं अगर वे आपको चाहते होते तो राम को राज्य देने से पहले आपसे पूछते क्यों नहीं? क्या

उन्होंने आपकी सलाह ली है ?

मूर्ख को बहकाने का यह एक सरल उपाय है कि अमुक काम के लिए तुमसे क्यों नहीं पूछा गया ? मूर्ख मनुष्य सोचता है-अमुक काम भले ही अच्छा हो, मगर मुझसे पूछे बिना कैसे हो सकता है ? यह सोचकर वह उस काम में विघ्न डालने के लिये तैयार हो जाता है। बुद्धिमान् पुरुष ऐसा नहीं सोचते। वे काम के गुण-अवगुण को देखते हैं। अगर कोई काम अच्छा है, फिर भले ही वह उससे पूछकर नहीं किया गया है तो भी बुद्धिमान् उसमे विघ्न नहीं डालता किन्तु यथाशक्ति सहायता पहुँचाता है। वह सोचता है-मुझसे नहीं पूछा तो भी क्या हर्ज है ? कार्य अच्छा है तो मुझे उसकी सराहना ही करनी चाहिए। कम से कम विघ्न तो नहीं ही डालना चाहिए।

मंथरा कहने लगी-'कौशल्या की नीति आपको मालूम नहीं है। वह बड़ी ही धूर्ता है। उसकी धूर्तता का पता मैं आज लगाकर आई हूँ। उसने धूर्तता करके राजा से स्वीकार करा लिया है कि कल ही राम को राज्य दे दिया जाय। राजा उसके बहकावे में आ गये हैं और कल राम को राज्य दे रहे हैं।

एक बात और है। सब रानियाँ कौशल्या के पैर छूने जाती हैं, लेकिन मैंने आपको इस अपमान से इस कारण बचाया है कि आपका और कौशल्या का पद बराबरी का है। वह रानी है तो क्या आप रानी नहीं हैं ? आप किसी छोटे

घर की नहीं हैं। आप बड़े राजा की राजकुमारी हैं। कौशल्या के मन में इस कारण भी आपके प्रति द्वेष है। इस द्वेष का बदला लेने के लिये उसने यह षड्यन्त्र रचा है। इस षड्यन्त्र से आपकी जड़ उखड़ गई है। अब आपके दिन पलट रहे हैं। दिन पलटने पर मित्र भी शत्रु बन जाते हैं। सूर्य कमल को जीवन देता है मगर जड़ उखड़ जाने पर वही उसे सुखा डालता है। कौशल्या आपकी जड़ उखाड़ कर आपको अपने आगे नतमस्तक करना चाहती है।'

मंथरा की बात सुनकर कैकेयी कांप उठी। उसने सोचा–वास्तव में ही यह मुसीबत का समय है। मंथरा से उसने कहा–सखी, तेरा कहना सही मालूम होता है। आज-कल रात्रि में मुझे बुरे स्वप्न भी बहुत आते हैं। अब मालूम हुआ–कौशल्या मेरा अहित करना चाहती है। तू मेरा भला चाहने वाली है। अच्छा हुआ, तूने मुझे सावधान कर दिया।

कैकेयी जिस कौशल्या को अब तक अपनी बड़ी बहिन के समान समझती थी उसे पापिन और राक्षसी समझने लगी। जिस पति पर उसे अटल विश्वास था, उसे कपटी समझने लगी। जिस राम को वह अपना ही पुत्र मानती थी और स्नेह करती थी, अब उसे अपना शत्रु समझने लगी। उसके लिये मानो सारी सृष्टि सहसा बदल गई! वास्तव में दृष्टि बदलते ही सृष्टि बदल जाती है। 'यथा दृष्टिस्तथा सृष्टिः।' यह सब परिवर्तन होते कुछ भी देर नहीं लगी। कुसंगति के प्रभाव

से इतना घोर परिवर्तन हो गया।

रानी कहने लगी—सखी मन्थरा ! तूने खूब सचेत कर दिया मुझे; मगर जिस आपत्ति का तू पता लगाकर आई है, उससे छुटकारा पाने का क्या उपाय है ?

मंथरा मन ही मन प्रसन्न हुई। उसने प्रकट में कहा-उपाय न मालूम होता तो मैं इसकी खबर ही क्यों देती ? मगर आप मेरी बात मानो तो आपत्ति टल सकती है; अगर किसी के फुसलाने मे आगई तो फिर मेरे किये कुछ न होगा । फिर आप जाने, आपका काम जाने।

रानी कहने लगी—तू तेरी हितचिंतिका है। मै तेरी न मानूँगी तो किसकी मानूँगी ? अगर मैं अपने पिता की पुत्री हूँ तो वही करूँगी जो तू कहेगी।

मन्थरा ने देख लिया कि रानी अब पूरी तरह मेरी मुट्ठी मे है तब उससे कहा—महारानी, क्या वह वरदान वाली बात भूल गई हो ? वह वरदान अब काम आ सकता है । राजा चले जाएँगे तो फिर वरदान किस काम आएगा ?

कोई यह न सोचे कि भरत की माता जैसी समझदार रानी भी जब मन्थरा जैसी धूर्त्त दासी के कपटजाल में फंस गई तो औरों की क्या बात है ? हम भी किसी के कपटजाल में फंस सकते हैं। ऐसा सोचने का कोई कारण नहीं है एक मन्त्र ऐसा है, जिसे याद रखने पर कोई धोखा नहीं खा सकता। केकयी भले ही ठग गई पर इस मन्त्र को स्मरण

रखने वाला कदापि नहीं ठगा सकता । यह कोई नियम नहीं कि जहां हाथी गिरे वहां सभी गिरते हैं या सब को गिरना ही चाहिए। पुल पर जाते समय बड़े-बड़े तो गिर पड़ते हैं, लेकिन चींटियाँ कतार बांधकर चलती हैं तो वे नहीं गिरतीं। आपको कोई कितना भी भरमावे, अगर आप श्रेय और प्रेय का विवेक रक्खेंगे तो आप धोखे में नहीं आएँगे । जगत् की धूर्त्तता से बचने के लिए श्रेय-प्रेम-विवेक ही महामन्त्र है ।

प्रेम वह है जो तत्काल अच्छा लगता है मगर परिणाम जिसका भयंकर होता है। श्रेय इससे विपरीत है। वह तत्काल चाहे अच्छा न लगे मगर उसका परिणाम कल्याणकारी होता है। श्रेय बात अगर शत्रु भी कहे तो ग्राह्य होनी चाहिए।

केकयी अगर श्रेय-प्रेय का भेद जानती होती तो एक क्या सौ मन्थराएँ भी उसे नहीं बहका सकती थी। लेकिन कहावत है—लोभी के होते धुतारे भूखों नहीं मरते।' इस कहावत के अनुसार केकयी लोभ में पड़ी मन्थरा की बन आई।

आजकल व्यापार के नाम पर सट्टे का बाजार गर्म है। लोग तेजी-मन्दी के लोभ में पड़े हैं। आपको अपने अधीन रखने के लिए कई एक-साधु भी तेजी-मन्दी बताने लगे हैं। इस प्रकार लोग स्वार्थ में पड़कर यह नहीं देखते कि श्रेय क्या है और प्रेय क्या है ? साधु भी श्रावकों को अपने हाथ में रखने की फिकर में पड़ गए हैं। किसी ने कहा है—

गुरु लोभी चेला लालची, दोनों खेलें दाव।
दोनों डूबे बापडे, चढ़ पत्थर की नाव ॥

लोगों को प्रेय भला मालूम होता है, पर श्रेय-साधन में ही सच्चा कल्याण है। रावण को अगर राम भी अच्छे लगे होते तो सीता भी उसके साथ वहां दौड़ी आती और वह सीता को देख सकता था। मगर उसने तो सिर्फ प्रेय देखा, और श्रेय की तरफ ध्यान नहीं दिया। इसी कारण लोग उसे राक्षस कहने लगे। अगर उसने प्रेय के साथ श्रेय भी देखा होता तो वह राक्षस नहीं कहलाता और उसका काम भी हो जाता। अगर आप प्रेय का त्याग नहीं कर सकते तो श्रेय को भी मत भूलो।

केकयी चित में यों आई,
कि वर भूपति से मैं पाई।
भरत को राजपद ठाऊं,
राजमाता पद मैं पाऊं॥

मन्थरा ने रानी से कहा—आपकी जड़ उखड़ गई तो फिर कुछ नहीं बनेगा। खेतो के सूख जाने के बाद वर्षा होने से कोई लाभ नहीं। अभी मौका है। वरदान का उपयोग करना हो तो जल्दी करो। राजा से भरत के लिए राज्य मांग लो। भरत राजा होंगे और आप राजमाता होगी तो सब लोग आपकी आज्ञा मानेंगे, अन्यथा कोई टके सेर भी नहीं पूछेगा। यही अन्तिम रात्रि है, जिसमें आपके भाग्य का निर्णय होना है। सवेरा होते ही बाजी हाथ से जाती रहेगी।

रानी ने मन्थरा से कहा—तूने ठीक मौके पर चेता दिया। तू मेरी सखी है। मैं तेरा उपकार कभी नहीं भूलूँगी। अब तू मेरी दासी नहीं सखी होगी।

मन्थरा बोली—नहीं महारानी, मैं सखी नही बनना चाहती। आपकी दासी रहने में ही मुझे सुख है। मैं अपने लिए कुछ नहीं चाहती। मेरा एक मात्र उद्देश्य अपनी स्वामिनी की भलाई सोचना और सेवा करना है।

रानी प्रेय पर लुभाई, यह बात आप भी पसंद नहीं करेंगे। आप रानी के इस कार्य को बुरा मानेंगे। और ऐसा मानना स्वाभाविक भी है। मगर रानी के कार्य को बुरा समझने से आपका हित नहीं होगा। आपको अपनी ओर देखना होगा। रानी की बुराई को आप पसद नहीं करते, वह बुराई अगर आपमें मौजूद है तो उसे भी आप बुरा समझें और त्याग दे ऐसा करने से ही आपका कल्याण होगा। आपके सामने श्रेय का विघात करने वाला प्रेय आवे और आप उसे त्याग दें और श्रेय को ही स्वीकार करें, तभी समझना चाहिए कि केकयी के उदाहरण से आपने शिक्षा ग्रहण की है। यों तो श्मशान का वैराग्य सभी को ही आता है। पर भाग्यशाली वह है जिसके अतःकरण मे वह वैराग्य टिक कर रहता है आप अपनी आत्मा के कल्याण की चिन्ता कीजिए। आत्मा और शरीर को भिन्न-भिन्न समझकर श्रेय और प्रेय पर ध्यान दीजिए तो अवश्य आपका कल्याण होगा।

श्रेय और प्रेय सदा आपके सामने आते रहेंगे। मैं कितने ही व्याख्यान दूं, श्रेय और प्रेय की चर्चा समाप्त नहीं हो सकती। यों तो वात वहुत छोटी है और स्मरण रक्खी जा सकती है। अगर मोह की प्रवलता न होने दी तो उसके आचरण मे भी कोई कठिनाई न होगी।

धर्म, पुण्य आदि की वाते श्रेय है और तत्काल प्रिय लगने वाली किन्तु परिणाम में अप्रिय प्रतीत होने वाली वाते प्रेय है इन दोनों की मूर्ति आपके सामने सदा आती रहती है। कल्याण-अकल्याण की वात न केवल वाहर ही वरन् अन्तःकरण मे भी सदैव उत्पन्न होती रहती है। मगर श्रेय को अपनाने और प्रेयका त्याग करने की क्षमता प्राप्त करने मे ही वलिहारी है। इसी मे मानवीय विवेक की सार्थकता है।

कहा जा सकता है—प्रेय छूटता नहीं है। लम्वे समय के संस्कार आत्मा को प्रेय की ओर ही आकर्षित करते हैं मगर यह कथन दुर्वलता का द्योतक है। आत्मा में अनन्त शक्ति है आत्मा अपने किसी भी संस्कार पर विजय प्राप्त कर सकती है। अगर संस्कार अजेय होते तो महात्माओं का उपदेश देना निरर्थक ही होता। भूतकाल मे अनेक आत्माओ ने अपने कुसंस्कारों पर पूर्ण विजय प्राप्त की है। उन्होंने दुर्वल आत्माओं का पथ-प्रदर्शन किया है। उस पथ पर चल कर हम भी आत्मविजेता वन सकते हैं। आत्मविजय कोई असंभव कल्पना नहीं है। वह एक सुसाध्य साधना है इस

साधना के साधन शास्त्रों में वर्णित किये गये हैं। उनमें से एक साधन यह है—

सुमर रे सुमर रे सुमर रे,
श्रेयांस जिनेन्द्र सुमर रे।

अगर प्रेय में यह शक्ति है कि वह आत्मा में चिपट कर बैठ जाता है तो परमात्मा के नाम मे भी वह शक्ति है कि वह उसे निकाल कर फैंक देता है। जब आपके अन्तःकरण में कुमति उत्पन्न हो, उस समय आप परमात्मा को स्मरण करो और परमात्मा को आगे कर दो। फिर देखो, किस प्रकार आपकी रक्षा होती है और आपको कैसा आनन्द आता है!

भरत की माता केकयी के सामने श्रेय और प्रेय दोनों थे। श्रेय यह था कि राम के राजा होने में और दशरथ तथा भरत के दीक्षा लेने में वह विघ्न न डालती। प्रेय यह था कि भरत राजा हों और राम को राज्य न दिया जाय। कौशल्या राजमाता न बनने पावे-मैं राजमाता की पदवी प्राप्त करूँ। यह दोनों विकल्प उसके सामने खड़े थे। उसे इन दोनों में से किसे लेना चाहिए था और किसे छोड़ना चाहिए था? केकयी आपकी सम्मति लेती तो आप उसे क्या कहते?

आप कहेंगे-'हम यही सलाह देते कि राम को राजा बनने दो और दशरथ के साथ भरत को दीक्षा ले लेने दो।'

मगर यह बात पराये घर की है, इसीलिए आप सरलता से ऐसी सलाह दे सकते हैं। घर में ऐसी घटना घटने पर भी

आपकी यह न्यायबुद्धि कायम रहनी चाहिए। आप कैकयी को जो सलाह दे सकते हैं, वही सलाह अपने हृदय को दोगे तो आपका कल्याण होगा। आप जिस बात की प्रशंसा करते हैं, जिस बात को हृदय मे अच्छा समझते हैं, उसे अपनाने में क्यों पीछे रह जाते हैं?

कल्पना कीजिए, कोई सेठ अच्छी-अच्छी भोज्य वस्तुएँ थाल में लेकर भोजन करने बैठा है। दूसरा आदमी वहाँ आया और तरह-तरह से उन वस्तुओं की प्रशंसा करने लगा। उसे प्रशंसा करते देख कर सेठजी ने कहा-मित्र, आओ दो कौर आप भी ले लो। वह प्रशंसक पुरुष भोजन का आमंत्रण पाकर भी भोजन नहीं करता। वह कहता है-नहीं, मैं खाऊँगा नहीं।' अब ऐसे आदमी को क्या कहा जाए? यही कहा जा सकता है कि जिन वस्तुओं की तू प्रशंसा करता है, वह तेरे सामने हैं। तू चाहे तो उन्हें ग्रहण कर सकता है। फिर भी अगर ग्रहण नहीं करता तो तेरी तकदीर फूटी है!

आप ऐसी भोजन की बात में शायद भूल न करें मगर जहाँ स्वार्थत्याग का प्रश्न उपस्थित होता है, वहाँ भूल जाते हैं! जब कैकयी की कथा कही जाती है तब आपकी न्यायबुद्धि एकदम जाग उठती है और आप कैकेयी को सलाह देने के लिए तैयार हो जाते हैं। लेकिन आज न राम हैं न कैकयी है। कदाचित वे होते भी तो आपकी सलाह कौन मानता? इसलिए उनकी बात छोड़ो। अपनी तरफ देखो। महापुरुषों

ने जो पकवान खाए हैं, उन्हीं पकवानों का थाल आपके सामने मौजूद है। अगर आप पूरी तरह उन्हें नहीं खा सकते तो दो कौर ही लो। इतने पर भी आप तैयार नहीं होते तो यह आपका सौभाग्य नहीं कहा जा सकता।

भरत से सुत को निस्संदेह,
रखूं मैं कर उपाय निज गेह।
पवन भी मानों उसी प्रकार,
शून्य में करने लगा पुकार।
गूंजते थे रानी के कान,
तीर-सी लगती थी वह तान।

रानी की भावना पलट गई। वह सोचने लगी-मुझे यह सखी न मिलती तो मेरी क्या गति होती ? मैं आपत्ति के बहाव में बह जाती और मेरी पुकार पर कोई कान न देता।

अब कैकेयी ने निश्चय किया—मैं भरत के लिए राज्य मागूँगी। मेरा भरत राजा होगा और मैं राजमाता बनूँगी। कौशल्या मुझ पर वैर रखकर जो कुछ करना चाहती है, वह मैं नहीं होने दूंगी। वह मुझे अपने अधीन रखना चाहती है, मगर मैं उसे अपने अधीन रक्खूँगी। मैं राजा से वर माँग कर उसका षड्यन्त्र विफल कर दूंगी।

इस प्रकार संकल्प करके रानी ने बढ़िया वस्त्र और आभूषण उतार दिये। फटे-पुराने कपड़े पहन कर वह कोपभवन

में जाकर पड़ रही।*

अयोध्या उत्साह-आनन्द मे मग्न है। इधर दशरथ राम के राज्याभिषेक की तैयारी करवा रहे हैं, उधर कैकेयी कोप-भवन की मेहमान वन गई है। राजभवन मे क्या हो रहा है, दशरथ को कुछ पता नहीं। इसलिए ज्ञानी कहते है-किसी बात पर गर्व मत करो। तुम जिस बात के लिए गर्व कर रहे हो, उसके विरुद्ध कहाँ, क्या हो रहा है, इसका तुम्हे क्या पता है?

*यह पहले बताया जा चुका है कि जैनरामायण में मन्थरा के उकसाने का वर्णन नही पाया जाता? इसी प्रकार राज्य माँगने के लिए कोपभवन में प्रवेश करने का भी उल्लेख उसमें नहीं है। जैन रामायण के अनुसार रानी स्वय दशरथ के पास पहुँचती है और वरदान मांगती है। पूज्यश्री ने शिक्षा देने के लिए तुलसी-रामायण के आधार पर कोपभवन का वर्णन किया है, यह बात उन्होंने इस वर्णन के आरम्भ में स्पष्ट कह भी दी है।

राम और सीता का विचार-विनिमय

यहाँ मुझे एक बात और कहना है। यह बात बार-बार मेरे चित्त में उद्भूत होती थी, लेकिन किसी कवि की कल्पना में नहीं मिलती थी। मैं सोचता था-भारत के अनेक कवियों ने राम का चरित लिखकर अपनी काव्यकला-कुशलता प्रकट की है और अपनी कविता को अमर बनाया है। लेकिन राम के अलौकिक चरित पर अपूर्व प्रकाश डालने वाली एक बात किसी भी कवि की कविता में क्यों नहीं मिल रही है ? सच्ची बात किसी कवि की कल्पना में होनी तो चाहिए। आखिर वह बात मुझे 'साकेत' काव्य में मिल गई। तुलसी-रामायण में यह बात नहीं है। वह बात यह है—

इस समय क्या करते थे राम,
हृदय के साथ हृदय-संग्राम।
उच्च हिमगिरि से भी वे धीर,
सिन्धु सम थे सम्प्रति गंभीर।
उपस्थित वह अपार अधिकार,
दीख पड़ता था उनको भार।

हाय वह पितृवत्सलता भोग,
और निज बाल्यभाव का योग।
विगत—सा समझ एक ही संग,
शिथिल से थे उनके सब अंग।
कहा वैदही ने—हे नाथ!
अभी तक चारों भाई साथ।
भोगते थे सब सम सुखभोग,
व्यवस्था मेट रही वह योग।

जिस समय दशरथ राज्याभिषेक के मंगल कार्य की तैयारी कर रहे थे, पुरजन आनन्द मना रहे थे और उत्सुकता के साथ सूर्योदय की प्रतीक्षा कर रहे थे, केकयी कोपभवन में पड़ी थी, उसी समय राम क्या सोच रहे थे? राम को जब राज्याभिषेक की खबर लगी तब से ही वह गंभीर विचार में डूब गये थे।

हमें राम के चरित पर ही ध्यान देना है। रामचरित की पूर्णता प्रकट करने के लिए ही केकयी आदि के चरितों का उल्लेख किया जाता है। मगर और सब चरित प्रासंगिक है। असली उद्देश्य तो राम का चरित प्रकट करना ही है।

साधारण मनुष्य को दो पैसे के लाभ की संभावना देखकर प्रसन्नता होती है। फिर राम को तो स्वर्ग जैसा राज्य मिलने वाला है। उन्हें कितना हर्ष न होना चाहिए? मगर उनका

चरित और ही कुछ शिक्षा देता है। कवि का कथन है कि राम उस समय अपने हृदय के साथ हृदयसंग्राम कर रहे थे। वे सोचते थे-क्या मै राज्य करने के निमित्त जन्मा हूँ? मुझे अधर्म मिटाकर जगत् में धर्म की स्थापना करना है, श्रेय की महिमा प्रकट करके प्रेय के प्रति त्याग भावना रखना सिखलाना है। फिर क्या मै स्वय इस प्रेय के चक्कर में पड़ जाऊँ? अगर इस फँदे में फँसा तो श्रेय से वंचित् रह जाना पड़ेगा। यह राज्य मेरे श्रेय का विघातक होगा। पिताजी को मुझे ही राज्य देने का विचार क्यों आया? मेरे तीन भाई और भी हैं।

राम हिमालय की तरह उच्च थे। वह सोचने लगे—राज्य लेने पर मैं ऊँचा भले ही और हो जाऊँ पर मुझ मे गंभीरता नहीं रहेगी तथा राज्य त्याग देने पर वह उच्चता गंभीरता में परिणत हो जायगी। अपनी उच्चता को राज्य लेकर अधिक उच्च नहीं बनाऊँगा, वरन् राज्य को त्याग कर इसे गंभीर बनाऊँगा। यह राज्यअधिकार वास्तव में मेरे लिए भार है।

राम को राज्य भी भार मालूम होता है। आप किसे भार समझते हैं? आप वस्तु की असलियत को नहीं जानते। इसी कारण भार डालने वाली वस्तु को भार न डालने वाली और भार न डालने वाली को भार डालने वाली वस्तु समझते हैं। आपको जो वस्तु प्रिय है, वह कितनी ही भारी हो आप उसे हल्की ही समझते हैं। इस बात को एक दृष्टान्त

से समझना ठीक होगा।

एक सेठ के लड़के का विवाह दूसरे सेठ के यहां हुआ था। उसकी स्त्री वहुत ओछे स्वभाव की थी। एक दिन सेठ का लड़का भोजन कर रहा था और उसकी माता तथा पत्नी सामने वैठी थी। सासू ने वहू से कहा—वहू जरा शिला तो उठा लाओ, मसाला पीसना है। वहू तड़क कर बोली—मैं क्या पत्थर उठाने यहां आई हूं! मैंने अपने वाप के घर कभी पत्थर नहीं उठाए। सासू गंभीर और समझदार थी। उसने वहू से सिर्फ इतना कहा--मुझ से भूल हुई कि मैंने तुम्हें यह काम करने को कह दिया। मै स्वयं उठा लूँगी। यह कहकर उसने स्वयं शिला उठा ली और मसाला पीस लिया।

लड़का यह सव देख—सुन रहा था। पत्नी के इस दुर्व्यवहार से उसके हृदय को वड़ी चोट लगी। वह सोचने लगा-'मेरी माता के प्रति इसका ऐसा व्यवहार है'। लड़का कुलीन था। उस समय तो वह चुप रह गया पर उसने निश्चय कर लिया कि किसी तरकीव से इसकी अक्ल ठिकाने लानी होगी। ऐसा निश्चय करके वह चला गया।

लड़का सराफी की दुकान करता था। एक दिन उसकी दुकान पर एक हार विकने आया। उसने वह हार खरीद लिया और सुनार को वुला कर कहा—इस हार मे पान की जगह लोहे की ढाई-सेरी सोने में मढ़कर जड़ दो ऊपर से कुछ जवाहर जड़ दो, जिससे भीतर लोहा होने का किसी

को ख्याल भी न आवे। सुनार ने ऐसा ही किया लड़का वह हार अपने घर ले गया। उसने अपनी पत्नी से कहा—आज एक बहुत बढ़िया हार विकने आया था। मैंने उसे खरीद लिया है। बात इतनी ही है कि वह भारी बहुत है और तुम्हारा शरीर बहुत नाजुक है; वर्ना तुम्हारे लायक था। तुम उसका बोझ नहीं संभाल सकोगी।

पत्नी के दिल में गुदगुदी पैदा हो गई। बोली—दिखाओ तो सही कितना भारी है वह हार। मैंने अपने पिता के घर बहुत भारी-भारी गहने पहने हैं।

पति ने कहा-हां, देख लो। मगर तुम से वह उठेगा नहीं।

पत्नि ने हार देखा तो खुश हो गई। कहने लगी—मैंने अपने पिताजी के घर पर तो इससे भी भारी हार पहने हैं। उनके सामने यह क्या चीज है।

पति बोला—हां, पहने होंगे। वह बड़ा घर है। अपनी शक्ति देख लो। पहन सको तो पहन लो!

पत्नी—पहन तो मैं लूँगी! इसकी कीमत क्या है?

पति—कीमत की चिन्ता मत करो! वह तो मैंने चुका दी है!

स्त्री ने हार पहन लिया। हार पहनने की खुशी में वह फूली नहीं समाई। घर का काम दौड़-दौड़ कर करने लगी! हार बार-बार उसकी छाती से टकराता और छाती की हड्डियाँ चूर-चूर होने को हो गईं, फिर भी वह हार का लोभ

नहीं छोड़ सकी । हार पहन कर उसकी प्रसन्नता बहुत बढ़ गई ।

लड़के ने सोचा—हार के लोभ में यह अंधी हो गई है ! इसे हार का भार मालूम ही नहीं होता ! अगर ढाई-सेरी की चोटें खाते-खाते छाती का खून जम गया तो नया बवाल उठ खड़ा होगा ! दवाई-दारू की झंझट तो मुझे ही करनी पड़ेगी ।

एक रात, जब स्त्री सो रही थी, उसके पति ने किसी औज़ार से ढाई-सेरी का सोना हटा दिया ! ढाई-सेरी आधी नज़र आने लगी ! सुबह स्त्री ने उठ कर देखा-अरे ! हार तो लोहे का है ! लोहा पहना कर मुझे बोझों क्यों मारा ? वैर भँजाना ही था तो और तरह भँजा लेते !

सेठ के लड़के ने कहा—मैं तुम्हारी सुकुमारता की परीक्षा करना चाहता था । एक दिन माँ ने शिला लाने को कहा था, तब तुम इतनी सुकुमार थी कि तुमसे शिला नहीं उठी । फिर तुम शिला से भी भारी बोझ गले में लटकाये रहीं और कष्ट का अनुभव नहीं किया । आज, जब तुमने देखा कि यह सोना नहीं लोहा है, तो फिर तुम्हें बोझ लगने लगा । बोझ क्या लोहे में ही होता है, सोने में नहीं ? तुम्हें सीख देने के लिए ही मैंने यह उपाय किया था । तुम मेरी माता को देव-गुरु की तरह ही पूजनीय समझना । मैं माता से द्रोह करके स्त्री का गुलाम होकर रहने वाले कपूतों में नहीं हूँ ।

अब आप अपने विषय में सोचिए। आप पाप का बड़े से बड़ा बोझा उठा लेते हैं मगर धर्म का थोड़ा-सा भार भी नहीं उठा सकते ! सोने का बोझ प्रसन्नतापूर्वक सहार सकते हैं पर लोहे का बोझ नहीं सहारा जाता। मगर ज्ञानी की दृष्टि में सोने का बोझ और लोहे का बोझ समान है। आज गरीबों को चूस कर आनन्द करने वालों की कमी नहीं है। पर राम कहते हैं—पिताजी मेरे ऊपर राज्य का भार क्यों डालते हैं ?

राम सोचते हैं—पिताजी संसार की रीति के अनुसार वात्सलभाव से मुझे भोगों में डालते हैं, लेकिन क्या वास्तव में यह राज्यभोग अच्छा है ? अब तक हम चारों भाई साथ-साथ रहते थे, साथ खाते-पीते थे। हम में आपस मे भाई-भाई का सम्बन्ध था। मगर राजा होने पर स्वामी-सेवक का सम्बन्ध हो जाएगा। मैं स्वामी और वे सेवक समझे जाएँगे। क्या भाई-भाई के सम्बन्ध की अपेक्षा स्वामी-सेवक का सम्बन्ध अच्छा होगा ? हम बचपन से भाई रहे और अब स्वामी-सेवक होंगे।

राम इस प्रकार विचार-तरंगों में बह रहे थे। जानकी पास ही बैठी हुई थी। राम के हृदय में विचारों का जो मन्थन चल रहा था, जानकी पर भी उसने असर किया।

एक के मन की बात दूसरे के मन में जानने-दूसरे को मालूम हो जाने की विद्या यूरोप में आज कल भी सीखी जाती है। एक समाचारपत्र में पढ़ा था कि दो महिलाओं ने, जो

बहिने थीं, इस विद्या का अभ्यास किया था। वे आपस में एक दूसरी के मन की बातें जान लेती थी। उन्होने इस विद्या की परीक्षा भी की थी। दोनो बहिनें कुछ कोस की दूरी पर बैठ गईं दोनों के साथ कुछ प्रतिष्ठित विद्वान् भी बैठ गये। पास बैठे विद्वानों ने एक कागज पर कुछ लिखकर एक महिला को दिया और उसे दूसरी बहिन को कह देने के लिए कहा। उसने इस प्रकार चिन्तन किया कि उसके मन की बात दूसरी बहिन के मन में पहुँच गई। उसने अपने पास वालों से कहा—लिखिए, मेरी बहिन अमुक-अमुक कहती है।

मिलान करने पर बात सही निकली। मगर यूरोप के लोग जिस विद्या को आज सीखते हैं, वह विद्याएँ भारतवर्ष में बहुत पहले से विद्यमान हैं। भारतवर्ष ने आध्यात्मिक शक्ति के द्वारा आश्चर्यजनक विद्याएँ प्राप्त की थीं। परन्तु अब आध्यात्मिकता के साथ ही साथ उन विद्याओं का भी लोप होता जा रहा है, यहाँ तक कि अधिकांश विद्याएँ लुप्त हो चुकी हैं।

पति-पत्नी का मन अगर निष्कपट हो तो एक को दूसरे की बात जान लेना कठिन नहीं है। सीता ने राम के मन की बात जान ली। वह राम से कहने लगी—नाथ! आपको राज्य मिल रहा है। इस विषय में गहराई के साथ विचार करने की आवश्यकता है। कम से कम देवरों के सम्बन्ध में तो विचार करना ही चाहिए। अब तक आप चारों भाई साथ

रहते और खाते-पीते थे, बराबरी से रहते थे। लेकिन अब जो हो रहा है, उससे बराबरी मिट जायगी। यह भ्रातृभाव में फर्क डालने वाली व्यवस्था है। इसलिए मैं कहती हूँ कि आप को मिलने वाला राज्य कहीं संयोग से वियोग में तो नहीं डाल देगा ?

सीता की बात सुन कर राम बोले—वाह सीता ! मेरे दिल में जो बात आ रही थी वही तुमने भी कही है ! मैं भी इसी समस्या पर विचार कर रहा हूँ।

भिन्न-सा करके कौशलराज,
राज देते हैं तुमको आज ।
तुम्हें रुचता है यह अधिकार,
राज्य है प्रिये भोग या भार ।

सीता कहती है—'मेरे श्वसुर आपको राज्य क्या दे रहे हैं, मानो भाइयों को आपस में अलग-अलग कर रहे हैं-जुदाई दे रहे हैं। क्या आपको ऐसा रुचिकर है ? आप इसे चाहते हैं ? आप राज्य को प्रिय वस्तु समझते हैं या भार मानते हैं ?'

सीता की भांति आज की बहनें भी क्या देवरों के विषय में ऐसा ही सोचती हैं ? राज्य तो बड़ी चीज है, क्या तुच्छ से तुच्छ वस्तुओं को लेकर ही देवरानी-जेठानी में महाभारत नहीं मच जाता ? भाई-भाई के बीच कलह की बेल नहीं बो देतीं ? क्या जमाना था वह, जब सीता इस देश में उत्पन्न हुई थी ! सीता जैसी विचारशील सती के प्रताप

से यह देश धन्य हो गया है। आज क्या स्थिति है? किसी कवि ने कहा है—

एक उदर का नीपज्या, जामरण जाया वीर।
औरत का पाले पड़्या, नहि तरकारी में सीर॥

बहिनों! अगर धर्म को जानती हो तो इस बात का विचार रक्खो कि भाई-भाई में भेद न पड़ने पावे।

सीता ने राज्यप्राप्ति के समय भी इस बात का विचार किया था। वह राज्य को भार मान रही है। मगर आज क्या भाई और क्या भौजाई, जरा—जरा सी बात के लिए छल—कपट करने से नहीं चूकते।

रामचन्द्र, सीता से कहने लगे—प्रिये! तुम वास्तव में असाधारण स्त्री हो। बड़े भाग्य से मुझे मिली हो। स्त्रियों पर साधारणतया यह दोषारोपण किया जाता है कि वे पुरुष को गिरा देती है, पुरुष को ऊर्ध्वगामी नहीं बनने देतीं—उसके पंख काट डालती है और यहां तक कि पुरुष को नरक में ले जाती है। मगर जानकी, तुम अपवाद हो। पुरुष की प्रगति में बाधा डालने वाली स्त्रियां और कोई होंगी, तुम तो मेरी प्रगति ही हो! तुम मेरी सच्ची सहायिका हो। जो काम मुझसे अकेले न हो सकता, वह तुम्हारी सहायता से कर सकूँगा।

जानकी! मै स्वयं राज्य को भार मानता हूँ। वह वास्तव में भार ही है। मैं राज्य पाना दंड पाना समझता हूँ। अगर वह सौभाग्य की बात समझी जाय तो सिर्फ इसीलिए कि राज्य के द्वारा

प्रजा की सेवा करने का अवसर मिलता है। जो राजा न होकर भी प्रजा की सेवा कर सकता है, उसे राज्य की आवश्यकता ही क्या है ? संभव है, मेरे सिर पर यह भार अभी न आवे; कदाचित् आया भी तो मैं अपने भाई के साथ लेशमात्र भी भेदभाव नहीं करूँगा। हम जिस प्रकार रहे, उसी प्रकार रहेंगे। अवध का राज्य क्या, इन्द्र का पद भी मुझे अपने भाइयों से अलहदा नहीं कर सकता।

कैकेयी की वरयाचना

राम और सीता मिलकर यह सोच रहे हैं। उधर दशरथ विचार कर रहे हैं कि कब सवेरा हो और कब मैं राम को राज्य सौंपकर दीक्षा ग्रहण करूँ! प्रजा हर्ष में मतवाली होकर राम का राज्याभिषेक देखने को उत्सुक हो रही है। उधर केकयी कोपभवन में प्रवेश कर चुकी है।

वास्तव में संसार का चरित बड़ा ही गहन है। राम को राज्य देना नीति के अनुकूल है; यह कौन नहीं जानता? ज्योतिषियों ने राज्यतिलक का शुभ मुहूर्त निकाला होगा। इस प्रकार राम के राज्यतिलक में विघ्न की संभावना नहीं थी। मगर इस विषम और दारुण संसार में क्या घटित नहीं होता! एक कवि कहता है—

क्वचिद् वीणानादः क्वचिदपि च हा हेति रुदितम्,
क्वचिद् रम्या रामा क्वचिदपि च जरा जर्जरतनुः।
क्वचिद् विद्वद्गोष्ठी क्वचिदपि सुरामत्तकलहः,
न जाने संसारः किममृतमयः किं विषमयः॥

संसार की विचित्रता पर विचार करता-करता कवि ऊब

जाता है और तब अन्त में कहता है—इस संसार को अमृत-मय कहें या विषमय ? दोनों में से कुछ भी कहना कठिन है। वास्तव में संसार का स्वरूप अनिर्वचनीय है। कहीं वीणा-नाद के साथ नाच-गान और राग-रंग हो रहा है तो कहीं हाहाकार की करुण ध्वनि कर्णगोचर होती है! कहीं इन्द्राणी-सी सर्वाङ्गसुन्दरी स्त्री है तो कहीं जरा की साक्षात् मूर्ति बुढ़िया खों-खों कर रही है। एक जगह विद्वान् बैठे हुए तत्त्व-चर्चा का आनन्द उठा रहे हैं तो दूसरी जगह शराब के नशे में चूर शराबी आपस में लड़-भिड़ रहे हैं! इस प्रकार संसार में एक ही साथ परस्पर विरोधी बातें दिखाई देती हैं। ऐसी स्थिति में संसार को अमृतमय कहें या विषमय कहें ?

सच तो यह है कि संसार में सदा से अमृत भी है और विष भी है। अच्छाई और बुराई, दिन और रात, धर्म और पाप हमेशा यहाँ रहे हैं, और रहेंगे। पर इस विचित्रता को देखकर हिम्मत नहीं हारना चाहिए। संसार में दोनों हैं, पर आपके सामने अमृत आने पर आप क्या यह कहकर रोने लगेंगे कि–हाय! संसार में तो ज़हर भी है। यह अमृत मेरे सामने क्यों आया है ! अथवा आप अमृत पाकर उसे पी जाएँगे ? बुद्धिमान् पुरुष तो यही सोचेगा कि संसार में विष भी है, मगर मेरे सौभाग्य से, मेरे सामने अमृत आया है–विष नहीं आया। विष आ जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। पर मुझे अमृत की प्राप्ति हुई है तो मुझे इसका

उपयोग और उपभोग कर लेना चाहिए।

कई लोग जिस काम को अच्छा मानते हैं, उसे करने की सुविधा होने पर भी नहीं करते और भाग्य का बहाना करने लगते हैं। लेकिन अगर कहीं उत्तम भोजन हो और आप के घर चने की रोटियां हों, तो उस समय आप अपना भाग्य देखकर रुक जाएँगे? या उस भोजन का निमंत्रण पाकर जीमने चले जायेंगे? उस समय आप यही सोचेंगे कि मेरे भाग्य में अगर उत्तम भोजन न होता तो मुझे निमन्त्रण ही क्यों मिलता? इस प्रकार जीमने के लिए अपना दुर्भाग्य समझकर जो नहीं रुकता और सौभाग्य की कल्पना करके जीमने चला जाता है, वह दूसरे श्रेष्ठ कर्त्तव्य को करने के लिए अपने दुर्भाग्य का बहाना करके क्यों रुक जाता है इस प्रकार का विचार प्रायः ऐसे कामों के लिए ही किया जाता है जिनमें स्वार्थ की आवश्यकता होती है।

कहने का तात्पर्य यह है कि संसार बड़ा विषम है। इसमे इतनी विविधता और विचित्रता है कि उस पर विचार करते-करते मस्तक थक जाता है और उस विचित्रता का कहीं अन्त नहीं दिखाई देता। एक ओर राम को राज्य देने की तैयारी हो रही है तो दूसरी ओर राम को राज्य न मिलने देने की तैयारी हो रही है। केकयी सोचती है—भरत को राज्य मिलना अमृत है, राम को राज्य मिलना विष है। प्रजाजन राम के राज्य में अमृत की कल्पना करते हैं। इस प्रकार एक के लिए

जो अमृत है वही दूसरे के लिए विष है! अब संसार को अमृतमय कहा जाय या विषमय?

दशरथ ने सोचा—बाहर की तैयारी तो देख ली, अब अन्दर जाकर रनवास की तैयारी देख आऊँ! इस प्रकार विचार कर राजा पहले पहल केकयी के महल की ओर चले। दशरथ वहां अमृत की आशा से गये थे। देखना चाहिए कि उन्हें क्या मिलता है?

दशरथ ने कैकेयी के महल में पैर रक्खा ही था कि दासियाँ दौड़कर उनके सामने आई। केकयी कहीं नजर न आई। दशरथ ने पूछा—रानी कहाँ है? दासियों ने घबराहट के साथ उत्तर दिया—महारानीजी कोपभवन में हैं। दशरथ को आश्चर्य हुआ आज इस शुभ अवसर पर कोप कैसा! क्या यह मंगल—मुहूर्त्त कोपभवन में बैठने का है?

रानी को कोपभवन में जानकर राजा को चिन्ता हुई। तुलसीदास कहते हैं, जिनके तेज-प्रताप से बड़े-बड़े शूरमा कांपते हैं, वही राजा दशरथ कैकयी का कोप सुनकर काँप उठे। यह काम का ही प्रताप है।

आखिर दशरथ रानी के पास पहुँचे। रानी की स्थिति देखकर सन्न रह गए। रानी ने अच्छे वस्त्र और आभूषण उतार फैंके हैं। वह कुमति के वश होकर नागिन की तरह फुफकार रही है। राजा ने सोचा—यह हाल आज तक कभी नहीं देखा। क्या आज मेरे घर में कलिकाल आ गया है? क्या मेरे

घर में ही सर्वप्रथम कुसमय का पदार्पण हुआ है !

दशरथ ने विचार किया—क्रोध से क्रोध की शांति नहीं हो सकती। अतएव कुपिता रानी को शान्ति और प्रेम के साथ समझाना चाहिए। यह विचार कर वह बोला—'प्रिये! आज तुम यहाँ कैसे? आज क्या उदास होने का अवसर है? क्या किसी ने तुम्हारा अपमान किया है? ऐसा हो तो बतलाओ, किसके बुरे दिन आए हैं? अगर यह बात नहीं है और किसी को कुछ देने की इच्छा है तो आज दूना-चौगुना दो। मगर इस प्रकार रूठना बड़े घर की रानियों के लिए योग्य नहीं है। कहते हैं—बड़े घर की बेटियां बड़ी होती हैं। वह बिगड़ी बात को सुधार लेती है। सो अगर कोई बात बिगड़ गई हो तो उसे सुधार लो। उठो, बताओ, क्यों इस प्रकार उदास हो?

यह कहते हुए दशरथ ने हाथ पकड़ कर रानी को उठाने की चेष्टा की। मगर रानी ने झटका देकर अपना हाथ छुड़ा लिया। तब दशरथ ने कहा—मैं सरल हृदय का हूँ। मै कपट नहीं जानता। मैं यह बात सदा स्मरण रखता हूं कि युद्ध में तुमने मेरी बहुत सहायता की थी। युद्ध मे जब मेरा सारथी मारा गया था और घोड़े बेकाबू होकर भाग रहे थे, उस समय तुम्हीं ने घोड़ो की लगाम सँभाली थी। तुम्ही ने सारथी का कार्य किया था और रथ की धुरी को अपनी साड़ी से मजबूत बाँध कर मेरा रथ चलाया था। तुम्हारी इस सहायता से ही मैंने

उस युद्ध में विजय पाई थी। तभी से मैं तुम्हारे ऊपर बहुत प्रीति रखता हूँ। लेकिन तुम इतनी उदास और नाराज क्यों हो? आज तो विशेष आनन्द का दिन है।

कैकेयी ने मन में सोचा-राजा को उस युद्ध की बात स्मरण है तो मेरे वरदान की बात भी स्मरण होगी। यह सोच कर वह उठ बैठी। कहने लगी—आज विशेष आनन्द-अनुभव करने का दिन कैसे है? दशरथ बोले—

भामिनि भयउ तोर मन भावा,
घर-घर उत्सव रंग बधावा।
रामहि देउं कालिह युवराजू,
सजहु सुलोचनि! मंगल साजू।

प्रिये! तुम यह भावना किया करती थीं कि प्रिय पुत्र रामचन्द्र कब युवराज बनेंगे! तुम राम को युवराज बनाने के लिए कई बार मुझ से कह चुकी हो। अब कल ही तुम्हारी कामना पूर्ण होने का मंगलमय मुहूर्त है। इस कारण आज अयोध्या में घर-घर आनन्द मनाया जा रहा है। तुम भी उठो और तैयारी करो। मुझ से भूल हुई कि मैंने यह शुभ संवाद पहले तुम्हारे पास न भेजा। खैर, उठो। वस्त्राभूषण पहनो और उत्सव का आनन्द लो।

दशरथ की यह निश्छल हृदय से निकली बात सुनकर कैकेयी सोचने लगी-'मंथरा ने ठीक ही कहा था। इस प्रकार रानी को मंथरा की बात पर विश्वास हो रहा है पर अपने

पति की बात पर नहीं। जब कुबुद्धि आती है तो महापुरुष की बात पर विश्वास नहीं होता, बुरे और क्षुद्र पुरुष की बात पर बहुत जल्दी विश्वास जम जाता है। कैकेयी के लिए राजा पूज्य है। उनका पति है लेकिन रानी उसकी बात मानने को तैयार नहीं और मन्थरा जैसी साधारण दासी को अपनी 'गुराणी' मान रही है!

राम कल ही युवराज बन रहे हैं, यह सुनकर कैकेयी के मन में घोर डाह पैदा हो गई। रानी अनेक बार राम को युवराज बनाने का प्रस्ताव कर चुकी थी इससे पहले राम के प्रति उसका हृदय एक दम साफ था। अब वह इस युव-राजपदवी का किस मुँह से विरोध कर सकती है? फिर भी दशरथ का कथन सुनते ही उसका हृदय जलने लगा।

कैकेयी ने कहा—नाथ! अभी आपने उस युद्ध का स्मरण किया है। मगर क्या आपको वरदान वाली बात भी याद है? आपने प्रसन्न होकर मुझे एक वरदान दिया था न? क्या उसे अब देने को तैयार हैं?

दशरथ—हाँ वह तुम्हारी धरोहर मेरे पास सुरक्षित है। उसे मैं कैसे भूल सकता हूँ?

रघुकुल-रीति सदा चलि आई,
प्राण जाय पर वचन न जाई।
नहिं असत्य सम पातकपुंजा,
गिरि सम होहि न कोटिक गुंजा॥

रानी ! तुम रघुकुल की कुलवधू हो। क्या तुम्हें इस कुल की यह मर्यादा नहीं मालूम कि प्राण जाय तो जाय मगर वचन नहीं जा सकता। संसार सत्य पर अवलम्बित है। जैसे करोड़ों गुंजाफल मिलकर पहाड़ के बराबर नहीं हो सकते, उसी प्रकार दूसरे बहुत-से पापों का समूह मिलकर भी असत्य के बराबर नहीं हो सकता। अर्थात् असत्य बहुत बड़ा पाप है। मैं क्या सत्य का त्याग कर असत्य का आश्रय लूँगा ?

कैकेयी ने कहा—ठीक है, तो मैं अपना वरदान अब मांगती हूँ।

कैकेयी के वरदान मांगने से पहले कवि कल्पना करता है:-

भूप—मनोरथ सुभग वन, सुख सुविहँग समाज
भिलहनि जनु छोड़न चहति, वचन भयंकर बाज ॥

अर्थात्—राम को राज्य देने का राजा का मनोरथ एक सुन्दर बगीचा है। उस बगीचे में जो सुख है अर्थात् अवध की प्रजा आदि के मन में जो आनन्द है वह आनन्द अच्छे पक्षियों के समान है। लेकिन कैकेयी रूपी भीलनी सुख रूपी पक्षीसमूह को अपना शिकार समझ कर, उसका वध करने के लिए वचन रूपी बाज छोड़ना चाहती है अर्थात् कैकेयी ऐसी बात कहना चाहती है जिससे दशरथ के मनोरथ रूपी बाग के सुख रूपी पक्षी मारे जाने वाले हैं।

सुखपूर्वक बगीचे में किलोल करने वाले पक्षियों को मारने

वाली भीलनी को लोग बुरा कहते हैं। और जिसके लिए भीलनी की उपमा दी गई है उस कैकेयी की निन्दा करते हैं। मगर उन्हें ऐसा करने से पहले अपनी ओर देख लेना चाहिए। जो लोग कैकेयी की निन्दा करते हैं वे अपनी मौज के खातिर दूसरों को विपदा में तो नहीं डालते ?

दशरथ ने रानी से कहा-कहो रानी, क्या चाहती हो ?

कैकेयी हाथ जोड़कर कहने को उद्यत हुई। तब दशरथ ने कहा-इस समय हाथ जोड़ने की क्या आवश्यकता है ? अपना ऋण लेने के समय हाथ जोडने की जरूरत नहीं है।

रानी--पति का विनय करना पत्नी का धर्म ही है। मुझे इस धर्म का पालन करना ही चाहिए।

राजा—ठीक है। जो मांगना चाहो, मांग लो।

रानी-मेरी मांग यही है कि कल जो उत्सव होने वाला है वह भरत के लिए किया जाय और राम के बदले भरत को राज्य दिया जाय।

जगाद नाथ ! पुत्राय, मम राज्यं प्रदीयताम्।

अर्थात्-नाथ ! मेरे पुत्र भरत को राज्य दीजिए।

रंग में भंग का कारण

जो कैकेयी कुछ समय पहले तक राम को अपना ही पुत्र समझती थी और जो राम को युवराज बना देने का कई बार प्रस्ताव कर चुकी थी, उस कैकेयी मे अचानक यह परिवर्तन क्यों हो गया? जिस परिवार में सौतिया-डाह का बीज भी नहीं था, उसी मे एकाएक डाह का विशाल वृक्ष कैसे खड़ा हो गया? राम को राज्य देने मे उनके किसी भाई का विरोध नहीं था। प्रजा हृदय से यही चाहती थी। ज्योतिषी ने अपनी समझ में उत्तम से उत्तम मुहूर्त्त निकाला ही होगा। फिर सारा गुड़ गोबर कैसे हो गया? रंग मे भंग होने का वास्तविक कारण क्या हुआ?

कैकेयी के चित्त मे राम के राज्य के विरुद्ध भावना क्यों उत्पन्न हुई? यह भावना और शक्ति कहाँ से आई? कहा जा सकता है कि मंथरा के उकसाने से केकयी में यह भावना उत्पन्न हुई थी। मगर यह समुचित समाधान नहीं है। इस समाधान के बाद भी प्रश्न बना रहता है कि आखिर मंथरा के मन मे यह भावना क्यो उत्पन्न हुई? राम ने मंथरा

का क्या बिगाड़ा था ? और भरत के राजा हो जाने से मंथरा को क्या लाभ था ? वह तो स्वयं कहती है कि चाहे राम राजा हों, चाहे भरत राजा हों, मैं दासी मिटकर रानी होने से रही !

इस विसंगति की संगति बिठलाने के लिए कोई देवों द्वारा मंथरा को ऐसी बुद्धि देने की बात कहते हैं। जैनरामायण में स्पष्ट रूप से यही कहा गया है कि भरत की दीक्षा रोकने के इरादे से ही रानी कैकेयी ने यह वर मांगा था । उसे राम के प्रति तनिक भी द्वेष नहीं था और न कौशल्या से बदला लेने का उसका इरादा था । भरत पर राज्य का भार डाल कर उसे संसार में बनाए रखने के विचार से ही कैकेयी ने ऐसा किया । तुलसीरामायण में कैकेयी के चरित्र का जो चित्रण किया गया है, उससे उसकी क्षुद्रता टपकती है, जब कि जैनरामायण के चित्र में उसकी पुत्रवत्सलता एवं पुत्र-वियोग की कातरता ही प्रधान दिखलाई देती है । जैनरामायण के अनुसार कैकेयी वर मांगते समय इतनी लज्जित होती है कि वह अपनी जीभ से याचना करने में असमर्थ हो जाती है और नीचा मुख करके जमीन पर लिख देती है कि भरत को राज्य दीजिए।

इस प्रकार कैकेयी के दो चित्रों में कुछ भिन्नता होने पर भी मूल बात एक-सी है और वह यह कि कैकेयी ने महाराज दशरथ से भरत के लिए राज्य मांग लिया । इस मांग के

जो कारण ऊपर बतलाये गये हैं, उनके अतिरिक्त एक बात मेरे ध्यान में आती है। मैं कहता हूं कि राम से ही कैकेयी में यह भावना और शक्ति आई थी।

यह पहले कहा जा चुका है कि राम को राज्य रुचिकर नहीं था। जब उन्हें राज्याभिषेक का समाचार मिला तो वे उदास हो गए थे। उनके मित्र जब बधाई देने के लिए उनके पास दौड़े आये तो उन्होंने कहा-सम्पत्ति और विपत्ति के समय इस प्रकार हर्ष या विषाद करना बुद्धिमानों को नहीं सोहता। यह तो मूर्खों का काम है। बुद्धिमान् वही है जो प्रत्येक परिस्थिति में समभाव धारण करता है। अगर आप सम्पत्ति में हर्ष मानेंगे तो विपत्ति में विषाद भी आपको घेर लेगा । जो सम्पत्ति को सहज भाव से ग्रहण करता है वह विपत्ति को भी सहज भाव से ग्रहण करने मे समर्थ हो सकता है। उसे विपत्ति की व्यथा छू नहीं सकती। ससार में सम्पति भी है, विपत्ति भी है। इनमें हर्ष-शोक का अनुभव करना सच्चे ज्ञान का फल नहीं है।

आगे राम फिर कहने लगे आप नहीं जानते कि मेरे जीवन का लक्ष्य क्या है ? राज्य करना मेरे जीवन का साध्य नहीं है। अधर्म का नाश करके धर्म की स्थापना करना ही मेरे जीवन की एक मात्र साधना है।

इस समय अधर्म फैल रहा है और धर्म का नाश हो रहा है। मुझे अधर्म के स्थान पर धर्म की प्रतिष्ठा करना है।

मनुष्य क्या करने के लिए जन्मे हैं और क्या कर रहे हैं ?

राम के मित्रों ने कहा था—आप राज्य को अपने उद्देश्य में बाधक क्यों समझते हैं ? राज्यसत्ता की सहायता से सहज ही सब सुधार किया जा सकता है ! तब राम बोले—संसार के उत्थान का कार्य इस प्रकार नहीं होता । जिन प्राचीन महापुरुषों ने यह गुरुतर कार्य किया उन्होंने प्राप्त राज्य को भी पहले ठुकरा दिया था । तभी उन्हें अपने महान् उद्देश्य में पूर्ण सफलता मिल सकी । राज्य करना कोई बड़ी बात नहीं है । यह तो भरत या लक्ष्मण भी कर सकते हैं । फिर मुझे इस बन्धन में डालने की क्या आवश्यकता है ?

राम की इस बलिवती भावना ने ही अगर कैकेयी के हृदय पर असर किया हो तो क्या आश्चर्य है ? राम सोचते थे-अगर मैं राज्य लेने से इन्कार करता हूं तो पिताजी की आज्ञा का उल्लंघन होता है और राज्य स्वीकारता हूँ तो बड़ा काम रुकता है । अगर कोई ऐसा मार्ग निकल आता कि मुझे राज्य भी न लेना पड़ता और इन्कार भी न करना पड़ता तो क्या ही अच्छा होता ! शायद राम की यही भावना कैकेयी में काम कर रही हो । राम को राज्य न दिया जाय और भरत को राज्य दिया जाय, यह बात किसी बड़ी शक्ति द्वारा ही कही जा सकती थी । कैकेयी की मांग के पीछे किसी महान् शक्ति का हाथ अवश्य चाहिए । और वह महान् शक्ति अगर स्वयं राम की ही भावना हो तो जरा भी आश्चर्य नहीं ।

दशरथ की दुनिया

राज्य राम को न दिया जाए, यह बात सुनकर दशरथ को घबराहट हुई। हां, यह सोचकर वे दुखित हुए कि मेरे घर मे यह भेदभाव क्यो ?

आज तो इस प्रकार का भेदभाव घर-घर घुस रहा है। राम और भरत की माता तो खैर अलग-अलग थी, मगर आज तो एक ही माता से उत्पन्न भाइयों में पक्षपात और भेदभाव देखा जाता है। लोग अपने और अपने भाई के लड़के को भी अलग-अलग नजर से देखते हैं और उनके प्रति एक-सा व्यवहार नहीं करते। कहां तो 'वसुधैव कुटु-म्बकम्' का उदार आदर्श और कहां इतनी क्षुद्रता !

अपने घर में जिसे वे अभी तक आदर्श समझते आए थे, यह क्षुद्रता और भेदभाव देखकर राजा दशरथ सकुच गए फिर उन्होंने कहा—रानी, मैं तुम्हे वचन दे चुका हूँ। मैं अपने वचन के विरुद्ध नहीं जाऊँगा।

सत्य से ही थिर है संसार।
सत्य ही सब धर्मों का सार॥

राज्य ही नहीं प्राण परिवार ।
सत्य पर सकता हूँ सब वार ॥

रानी, ससार सत्य पर ही टिका हुआ है । समुद्र सत्य के वल पर ही रुका हुआ है । सूर्य, चन्द्र, वर्षा और पृथ्वी सत्य से ही सब के सहायक बने हुए है । न मालूम किसके सत्य से ये सब काम कर रहे हैं ?

दशरथ फिर कहते हैं—सत्य के लिए मैं राज्य और यहाँ तक कि प्राण भी निछावर कर सकता हूं, लेकिन मैं यह पूछता हूँ कि क्या राम तुम्हारा पुत्र नहीं है ? तुम बार-बार कहती थी कि वड़े भाग्य से राम-सा पुत्र और सीता-सी पुत्र वधू मिली है । फिर आज तुम्हारे मन में यह भेदभाव क्यों आया है ? अगर तुम्हारे अन्तःकरण मे भेदभाव नहीं है और सिर्फ भरत को दीक्षा लेने से रोकने के उद्देश्य से ही तुम भरत के लिए राज्य मांग रही हो तो मुझे वैसी व्यथा न होगी।

इतना कह कर दशरथ वड़े असमंजस पड़ गए । वह सोचने लगे-रानी को वचन दिया है, सो उसकी इच्छा के अनुसार भरत को राज्य देना ही होगा। मगर इस व्यवस्था को राम मानेंगे या नहीं ? और प्रजाजन इस परिवर्त्तन को स्वीकार करेंगे या नहीं ? कदाचित् यह सब, समझ भी गए तो लक्ष्मण का समझना कठिन होगा । अगर अकेला लक्ष्मण ही बदल गया तो वह सारे राज्य को हिला देगा। ऐसी स्थिति में क्या किया जाए ? रानी ने पहले ही वर मांग लिया

होता तो कोई प्रश्न न उठता। मगर अचानक सारी व्यवस्था को बदलना कितना कठिन है! इस समय राम को राज्य देने की बात सब पर प्रकट हो चुकी है और नगर में उत्सव मनाया जा रहा है। मैं स्वयं राम को राज्य देने की बात कह चुका हूँ। इधर रानी को भी कह चुका हूं कि इच्छा हो सो मांग लो। बड़ी विकट उलझन है। प्रातःकाल मैं दीक्षा लेना चाहता हूँ। और यह नया संकट खड़ा हो गया! किस प्रकार इससे छुटकारा पाऊँ?

लक्ष्मण का हर्ष

ज्येष्ठ भ्राता राम का कल प्रातःकाल ही राज्याभिषेक होगा, यह जानकर लक्ष्मण के हर्ष का पार न रहा। 'साकेत' काव्य मे लक्ष्मण की रानी का नाम 'उर्मिला' बतलाया है। जैन साहित्य में लक्ष्मण की अनेक रानियां होने का उल्लेख पाया जाता है, उनमें से एक का नाम 'उर्मिला' स्वीकार कर लेने में कोई हर्ज नहीं है। नाम के भेद से वस्तु में कोई भेद नही होता।

लक्ष्मण की पटरानी ने लक्ष्मण को बहुत आनन्दित देखकर पूछा-नाथ! आज इस अपूर्व हर्ष का क्या कारण है? आज आप अत्यन्त आनन्दित दीख पड़ते हैं।' लक्ष्मण बोले-प्रिये! आज हर्ष न हुआ तो फिर कब होगा।

बढे क्यों आज न हर्षोद्रेक,
राम का कल होगा अभिषेक।

धरा पर धर्मादर्शनिकेत,
धन्य है स्वर्ग सदृश साकेत ॥

पत्नी को उत्तर देते समय लक्ष्मण का कंठ गद्गद हो गया। पत्नी ने कहा-आप प्रत्येक प्रिय वस्तु में मुझे सदा से हिस्सा देते रहे हैं। ऐसा कोई अवसर नहीं बीता, जब आपने इष्ट वस्तु में से मुझे उचित भाग न दिया हो। फिर आज क्यों कंजूसी कर रहे हैं? अपने आनन्द मे मुझे भाग क्यों नही देते?

लक्ष्मण ने मुस्करा कर कहा-प्रिये! आज के हर्ष का क्या कहना है! आज जीवन में हर्ष का अभूतपूर्व अवसर है। कल राम का राज्याभिषेक होने वाला है!

खुद को राज्य मिलने पर तो बहुत लोग हर्षित होते होंगे, पर अपने भाई को राज्य मिलने के अवसर पर इतना हर्ष होना सामान्य बात नहीं है। लक्ष्मण सरीखे बन्धुवत्सल असाधारण पुरुष ही ऐसा हर्ष भोगने के लिए भाग्यशाली होते हैं। आज भी कुछ लोग ऐसे मिलेंगे जो अपने भाई का उत्कर्ष देखकर प्रसन्न होते हैं मगर जो लोग भाई को भाई की दृष्टि से नहीं देखते और भाई के उत्कर्ष को देखकर ईर्षा करते हैं, वे अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारते हैं! जो भाई के लड़के में और अपने लड़के में भेद मानता है, उसके लड़के भी यही पाठ सीखते हैं।

कल राम का राज्याभिषेक होगा, यह सुनकर लक्ष्मण

की रानी को बहुत प्रसन्नता हुई। वह कहने लगी-आपने ऐसा हर्ष समाचार भी मुझ से अब तक छिपा रक्खा था। राज्याभिषेक कल होने वाला है, मगर आप कहें तो मैं आज ही और यहीं राज्याभिषेक दिखला सकती हूँ।

लक्ष्मण-सो कैसे? क्या राज्याभिषेक किसी डिबिया में बन्द करके रख छोड़ा है, कि डिबिया खोली और राज्याभिषेक दिखा दिया!

रानी- जो मेरे पास नहीं है, वह ससार मे कहीं नहीं है! आप आज्ञा दें तो अभी राज्याभिषेक दिखा सकती हूं! वह डिबिया में बन्द तो है मगर वह डिबिया एक अलौकिक धातु की बनी है।

लक्ष्मण-अगर तुम आज और यहीं राज्याभिषेक दिखला सकती हो तो मैं तुम्हे ऐसा पारितोषिक दूँगा, जैसा तुमने कभी नहीं पाया होगा।

रानी-तो ठीक है थोड़ी देर ठहर जाइए।

इतना कहकर उर्मिला एकान्त में चली गई। उसने राज्याभिषेक का एक बहुत ही सुन्दर चित्र तैयार किया—ऐसा सुन्दर मानों साक्षात् राज्याभिषेक हो रहा हो!

कलाकार भविष्य को वर्त्तमान रूप दे देता है। कलाकार की सूक्ष्म और पैनी दृष्टि मे भूत-भविष्य वर्त्तमान की भांति प्रतिविम्बित होते है। उर्मिला चित्रकला में असाधारण निपुणता रखती थी। भारतवर्ष मे पहले कला का बड़ा मान था

और बहुत प्रचार था। आज तो लोभी लोगों ने कला का सर्वस्व ही लूट लिया है।

लक्ष्मण की रानी ने अपने चित्र में राज्याभिषेक के लिए एक अत्यन्त सुन्दर मंडप बनाया। मंडप में रत्नमय खंभे खड़े किये। खंभो पर मनोहर पुतलियां बनाईं और मणियो एवं रत्नों का प्रकाश दिखलाया। मंडप के बीचों-बीच एक सिंहासन चित्रित किया। सिंहासन पर राम और सीता को बिठलाया और दशरथ आदि को अभिषेक करते हुए दिखलाया। उसने राम की मुद्रा में ऐसी नम्रता प्रदर्शित की, मानों संसार का बोझ आजाने के कारण वे झुक गए हों! राम के अगल-बगल अनेक सरदार और उमराव आदि अभिषेक की सामग्री लिये खड़े दिखाये। यथास्थान सिपाही और चोबदार खड़े किये गये। नर-नारियों का और दास-दासियो का ऐसा सजीव चित्रण किया गया कि देखते ही बनता था। चित्र सामने आने पर ऐसा मालूम होता, जैसे साक्षात् राज्याभिषेक ही हो रहा है!

चित्र तैयार करके लक्ष्मण की रानी प्रसन्न होती हुई लक्ष्मण के पास आई। उसने कहा—देखो, कल का दृश्य आज ही दिखलाती हूं। यह कह कर उसने असीम आनन्द के साथ वह चित्र लक्ष्मण के हाथो में दे दिया। लक्ष्मण ने चित्र देखा तो हृदय गद्गद् हो गया। राम की भव्य और विनम्र मुद्रा देखकर उनके नेत्रों से आंसू बहने लगे यह स्नेह और श्रद्धा

के आंसू थे। लक्ष्मण मानों अपने आंसुओ रूपी मोतियों से राम का अभिषेक करने लगे।

थोड़ी देर तक चित्र देखने के पश्चात् लक्ष्मण ने कहा—प्रिये! तुम्हारे इन कमल से कोमल हाथों में यह कला है कि कल का दृश्य आज ही दिखा दिया! तुम्हारी उंगलियों की कला देखकर मैं गर्व के साथ मतवाले हाथी की तरह झूमने लगा हूं।

लक्ष्मण की बात सुनकर और अपनी प्रशंसा सुनकर रानी कुछ सकुचा गई। फिर मुस्किराहट के साथ बोली-प्राणनाथ! आपने मेरी उँगलियों को कमल बतलाया है और आप स्वयं मतवाले हाथी बन रहे हैं। मतवाला हाथी कमल को तोड़ डालता है, कहीं आप तो ऐसा नहीं करेंगे?

लक्ष्मण की पत्नी के इस कथन का अर्थ यह नहीं समझना चाहिए कि उसे लक्ष्मण के प्रति किसी प्रकार की आशंका या अश्रद्धा थी। राम ने सर्वसाधारण को समझाने के लिए भरत से कहा था कि परस्त्री त्याज्य है। क्या भरत परस्त्रीगामी था? नहीं, भरत को लक्ष्य करके राम ने संसार को यह उपदेश दिया था। इसी प्रकार लक्ष्मण की पत्नी का कथन समझना चाहिए कि आप मेरे हाथ को कहीं तोड़ मत देना। आपने मेरे साथ विवाह किया है और मेरा हाथ पकड़ा है। अब मेरा यह हाथ तोड़ना मत। यह आशय भी संभव है कि जिस हाथ से आपने मेरा हाथ पकड़ा है, उस हाथ से परस्त्री

को मत छूना। मतवाला हाथी विवेक भूल जाता है। वह अपने महावत को ही मार डालता है। आप राजपुत्र हैं, महान् शक्ति से सम्पन्न हैं। अगर आप कभी विवेक भूल गये तो छोटे लोग कुचल जाएँगे। आपके द्वारा गरीबों और दुखियों की रक्षा होनी चाहिए और परस्त्री आपके माता के समान होनी चाहिए।

उस बात को आप अपने विषय मे विचार कीजिए। आप भी कभी विवेक न भूले। आपने भी विवाह किया होगा और लग्नवेदिका पर खड़े होकर कहा होगा कि मैं परस्त्री को माता-बहिन के समान समझूँगा। लेकिन कभी मतवाले होकर यह प्रतिज्ञा भूल तो नहीं जाते? लक्ष्मण तो महापुरुष थे। उनके नाम से यह बात जगत् को समझाने के लिए कही गई है। अगर वे चेते हुए न होते तो क्या मर्यादा नहीं तोड़ सकते थे? मर्यादा जब भी टूटती है, बड़े से टूटती है। अभक्ष्य भक्षण और अपेय-पान आदि बड़े घरों से शुरु होता है। लोग मत्त होकर विवेक और मर्यादा का उल्लन्घन कर डालते हैं, मगर ऐसे लोग कभी उन्नत नहीं हो सकते।

पत्नी की बात सुनकर लक्ष्मण कुछ लज्जित-से हो गए। उनकी आँखों में आँसू आ गये। यह देखकर उनकी पत्नी ने कहा—क्या मेरी बात से आपको दुःख हुआ? लीजिए, यह चित्र संभालिए। आपने चित्र के लिए पुरस्कार देने को कहा था। लेकिन जब मैंने पुरस्कार मांगा तो आपको दुःख

हो गया।

लक्ष्मण ने कहा—मैं सोच रहा हूँ कि मैं दशरथ का पुत्र और राम का भाई हूं, अतः मुझमें सदैव विवेक कायम रहेगा। पर आज मत्त होने की बात मेरे मुख से कैसे निकल गई? तुमने ठीक मोके पर मुझे अच्छी चेतावनी दी। मत्त होने की तो बात दूर, मैं मत्त होने की बात भी कभी मुख से नहीं निकालूँगा।

पत्नी बोली—प्राणनाथ! अगर आप मत्त हाथी न बनेंगे तो मेरा हाथ कमल भी नहीं रहेगा। वह आपके कार्यों में सहायक होगा।

लक्ष्मण—मैं कल से ही राम का दास हो जाऊँगा। मुझमें फिर मस्ती रहेगी ही कैसे? सेवक को अभिमान कैसे हो सकता है?

पत्नी—आप सेवक होंगे तो मैं सेविका होऊँगी। इसी में जीवन की सार्थकता है।

लक्ष्मण-प्रातःकाल जल्दी ही जागना है। सेवक का कर्त्तव्य स्वामी से पहले जाग जाना है।

रात्रि व्यतीत हुई। प्रभात होने पर जल्दी जागकर लक्ष्मण राम के पास जाने लगे। उन्होंने अपनी पत्नी से कहा—प्रिये! मैं जाता हूँ। राम के उठने से पहले ही मुझे वहां उपस्थित हो जाना चाहिए।

लक्ष्मण चित्र हाथ में लेकर प्रसन्न होते हुए राम के पास

चले। राम उस समय सो रहे थे। लक्ष्मण जाकर बाहर खड़े हो गए।

यहां एक कवि की कल्पना का वर्णन करता हूं। मैं यह तो नहीं कहता कि यह बात लक्ष्मण ने कही थी। अगर लक्ष्मण ने न कही हो तो भी उनके नाम से कहने में कवि ने कोई अनुचित काम नहीं किया है। कवि की कल्पना को मैं लक्ष्मण के नाम से कहता हूँ—

जागिये रघुनाथ-कुँवर, पंछी वन बोले।
चन्द्रकिरण शिथिल हुई, चकवी पिय मिलन गई॥
त्रिविध मन्द चलत पवन, पल्लव-द्रुम डोले॥जागिये०॥
प्रात भानु प्रकट भयो, रजनी को तिमिर गयो।
भ्रमर करत गुंजगान, कमल-दल खोले॥जागिए०॥

यह बात कही तो है राम के भक्त ने, पर यहां लक्ष्मण के नाम से कहता हूं। लक्ष्मण कहते हैं—हे रघुनाथकुँवर! आप जागिये। आज आनन्द का दिन है और आप अभी तक सो रहे हैं! आज के आनन्द का मैं सजीव चित्र लेकर आया हूं।

चित्र बनाना एक कला है। चित्र चित्रकार की भावना का प्रतिबिंब है। कलाकार अपनी भावनाओं में रंग भर कर उन्हें बाह्य रूप देता है। यह आवश्यक नहीं कि उसकी भावना यथार्थता का स्वरूप ग्रहण करेगा ही, मगर वह अपनी भावनाओं को जितनी कुशलता के साथ अंकित कर सकता

है, उतना ही सुन्दर उसका चित्र माना जाता है। राम के राज्याभिषेक का सुन्दर चित्र अंकित किया गया था, मगर राज्याभिषेक नहीं हुआ और राज्याभिषेक के समय उन्हे वन जाना पड़ा।

आपको अगर थोड़ा-सा भी लाभ प्रातःकाल होने पर होने वाला हो तो आपको शायद रात में नींद ही न आवे। कदाचित् आवे भी तो बहुत जल्दी खुल जाए। मगर राम को तो राज्य मिलने वाला था। फिर भी वे इतनी देर तक क्यों सोते रहे? उनकी नींद जल्दी क्यों नहीं उचट गई? राम का हृदय बड़ा गंभीर था। उन्होंने अपने मित्रों को संपत्ति और विपत्ति के समय हर्ष और विषाद न करने की जो बात कही थी सो केवल कहने को ही नहीं थी। उनके हृदय में इस प्रकार का स्वभाव व्याप्त था। यही कारण है कि राज्य प्राप्ति के अवसर पर भी उनके हृदय मे किसी प्रकार का असाधारण या अभूतपूर्व भाव नहीं था। अतएव वे सदा की भांति इस रात्रि में भी सोये।

राम तो सोये थे, मगर भक्त उन्हे कैसे सोते रहने देता? इसीलिए लक्ष्मण उनसे कहते हैं—उठिए, वन में पक्षी भी चहचाहने लगे हैं। चन्द्रमा की किरणें फीकी पड़ गई हैं पर आपकी नींद अभी फीकी नहीं पड़ी? वह अब तक वैसी ही बनी है? रात व्यतीत हुई जानकर, चकवी चकवा से मिलने गई और आप सो रहे हैं? प्रभात काल की शीतल, मंद और सुगन्धित

पवन के चलने से वृक्षों की डालियाँ हिलने लगी है, मानो आपको बुला रही हैं। प्रातःकालीन सूर्य भी प्रकट हो चुका है। सूर्य अपने सूर्यवंश का राज्याभिषेक देखने के लिए चला आ रहा है। वह आपको राजसिंहासन पर बैठे देखने के लिए उत्सुक दिखाई देता है और आप सो रहे हैं! सूर्य के प्रकट होने से अन्धकार भाग गया है, मगर आपकी नींद नहीं भागी, भ्रमर गूँजते हुए आपकी विरुदावली बखान कर रहे हैं और कमल आपका स्वागत करने के लिए खिल गये है। फिर आप अभी तक क्यो सो रहे हैं?

लक्ष्मण आगे कहते हैं—

ब्रह्मादिक धरत ध्यान,
सुर नर मुनि करत गान।
जागन की वेरा भई,
नयन—पलक खोले ॥ जागिये० ॥

प्रातः काल होने पर जोगी भी जाग जाते हैं और अपने-अपने इष्ट का ध्यान करने लगते हैं। फिर आप अभी तक क्यों नहीं जागे हैं?

लक्ष्मण की वाणी का असर पड़ा और राम जाग गये। लक्ष्मण को खड़ा देखकर राम ने कहा-अरे लक्ष्मण, तुम कब से खड़े हो? तुम इतने जल्दी कैसे आ गये?

लक्ष्मण—प्रभो! मैं आज भी जल्दी न उठूँगा तो फिर कब उठूँगा? मैं आपसे भी यही प्रार्थना करता हूँ कि आप

प्रातःकालीन कार्यों से जल्दी निवृत्त हो लीजिए और माता-पिता का दर्शन करके सूर्यवंश सिंहासन को सुशोभित कीजिए। आज पिताजी आपको राज्य देकर दीक्षा लेने वाले हैं। अब आप ही प्रजा के पालक होंगे। प्रजा के पालन और संरक्षण का भार अब आपके ऊपर आ रहा है। इसलिए उठिये, विलम्ब मत कीजिए।

लक्ष्मण को इस विचार से बड़ा आनन्द हो रहा है कि आज राम राजा होंगे और मेरी पटरानी ने जो कल्पना-चित्र अंकित किया है, वह वास्तविक चित्र बन जायगा।

राम-लक्ष्मण ! आज तुम्हारे भीतर यह चंचलता क्यों है ?

लक्ष्मण-नहीं, मुझ मे चंचलता नहीं। हां, हर्ष तो अवश्य है।

राम-तुम मुझे राज्य मिलने का विचार कर हर्षित हो रहे हो मगर मुझे किसी और ही बात मे कल्याण दिखाई देता है।

लक्ष्मण-महाराज, मैं चाहता हूं कि आज शीघ्र ही वह दृश्य दिखाई दे जो आपकी अनुजवधू ने कल ही चित्रित कर दिया है। देखिए, वह चित्र यह है। मै इस चित्र को वास्तविक रूप में देखने के लिए उतावला हो रहा हूं।

राम-भैया, किसी भी अवसर पर गंभीरता नहीं त्यागनी चाहिए। हर्ष मानने वाले को विषाद घेर ही लेता है। तुम इस चित्र के अनुसार दृश्य साक्षात् देखना चाहते हो, मगर कौन जानता है कि अदृष्ट ने कौन-सा चित्र बना रक्खा है ? और

कौन कह सकता है कि यह चित्र वास्तविक होगा ही ?

राम कहते है–'लक्ष्मण ! आज न जाने क्यो मुझे अच्छी नींद आई। जब जागृदवस्था भी नहीं होती और स्वप्नावस्था भी नहीं होती–उस सुषुप्तावस्था मे जब आत्मा जाता है तब बडा आनन्द होता है। शरीर और मन की स्वस्थ दशा मे यानी विकार न होने पर स्वप्न नहीं आते और उस समय बडा आनन्द होता है।'

मन में संकल्प–विकल्प हों तो स्वप्न मे उन्हीं के अनुरूप दृश्य दिखाई देते हैं। कई लोगो ने स्वप्न में यह समझ कर कि मैं कपड़ा वेच रहा हूँ, कपड़े फाड़ डाले और वह भी पौषध की स्थिति में। एक श्रावक सराफी का धन्धा करते थे और पौषध करके सोये थे। स्वप्न में उन्होंने देखा कि मेरे जेवरों की पेटी चोर ले जा रहे हैं। वे पास में सोये आदमी का हाथ पकड़कर चोर–चोर चिल्लाने लगे। मतलब यह है कि मन मे जैसे संकल्प–विकल्प उठते हैं, नींद में स्वप्न भी वैसे ही दिखाई देते हैं। मन में विकार न होगा, मन स्वस्थ होगा तो निद्रा गहरी, शान्त और अच्छी आएगी।

नींद मे विकार का बीज नष्ट नहीं होता। सुषुप्तावस्था मे भी विकार का बीज बना ही रहता है। जगाने पर वह फिर उसी तरह का जंजाल खडा कर देता है। यह वात दूसरी है कि साधु के जागने पर साधु के काम हो और गृहस्थ के जागने पर गृहस्थ के काम हो, पर जंजाल का बीज नष्ट नहीं

हुआ है और जागृत-अवस्था होने पर वह ज्यो का त्यो खड़ा हो जाता है, ठीक उसी प्रकार जैसे ग्रीष्म ऋतु में जगल सूख जाता है पर वर्षा ऋतु में वर्षा होते ही फिर हरा हो जाता है। मगर विचारने योग्य बात यह है कि जंजाल का बीज नष्ट न होने पर भी सुषुप्तिदशा में जब इतनी शान्ति मालूम होती है तो बीज नष्ट हो जाने पर कितनी शान्ति मालूम होती होगी !

लक्ष्मण—प्रभो ! अब आप चलिए। पहले पितृदर्शन कर आवे। अन्यथा अभिषेक-कार्य में विलम्ब होजाएगा।

राम-लक्ष्मण ! जिसे तुम्हारा सरीखा भाई प्राप्त हुआ है, उसे राज्य की क्या परवाह है ? तुम तीन लोक की सकल सम्पदा से बढ़कर हो। तुम्हे पाकर मुझे राज्य की कोई लालसा नही है। लेकिन चलो, समय हो गया है। पिताजी के दर्शन कर आएँ।

राम और लक्ष्मण पिता का दर्शन करने चले। दोनों भाई उस राज महल में ऐसे जान पड़ते थे, जैसे दशरथ का राज-महल तो दिव्य आकाश है और उसमें यह दोनों सूर्य और चन्द्रमा हैं। आकाश के सूर्य-चन्द्र साथ नहीं रहते। सूर्य का उदय होते ही चन्द्र फीका पड़ जाता है। मगर दशरथ के महल रूपी आकाश में यह विशेषता है कि सूर्य और चन्द्रमा दोनो साथ-साथ प्रकाशित हो रहे हैं। तेज की दृष्टि से राम सूर्य और लक्ष्मण चन्द्र हैं और वीरता की

दृष्टि से राम, चन्द्र की तरह शीतल और लक्ष्मण सूर्य की तरह तेज हैं। वीरता के लिहाज़ से लक्ष्मण बढ़कर हैं।

पिता के पास जाते समय राम के मन में क्या विचार उठ रहे थे, यह कहना सभव नहीं है। बडों की बात कोई बडा ही कह सकता है। लेकिन लक्ष्मण के मन में यह विचार हो रहा था कि मैं पिताजी के पास जाकर यह चित्र उन्हें दिखाऊँगा और इस चित्र के अनुसार ही आज के उत्सव की आयोजना करने का आग्रह करूँगा। पिताजी अपनी पुत्रवधू का बनाया चित्र देखकर अवश्य ही प्रसन्न होंगे।

दोनों भाई पिता के महल में पहुँचे। वहा जाने पर विदित हुआ कि महाराज कैकयी के महल में है। राम ने कहा—चलो यह अच्छा ही हुआ। पिताजी के साथ माताजी के भी दर्शन हो जाएँगे। यह सोचकर दोनों कैकेयी के महल की ओर मुड़ गए।

जब राम और लक्ष्मण कैकेयी के भवन में पहुंचे तो उनका हृदय प्रसन्नता से परिपूर्ण था। मगर आते ही उनकी आंखों ने जो दृश्य देखा उससे उनके विस्मय का पार न रहा। उन्होंने देखा—पिताजी का चित्त एकदम मुरझाया हुआ है। उनके चेहरे पर घोर वेदना के चिह्न प्रकट हो रहे हैं, जैसे घायल मनुष्य के चेहरे पर वेदना प्रकट होती है। चेहरे पर असीम उदासी है, दैन्य है, शोक है। सिर नीचा किए धरती की ओर निहार रहे हैं।

दशरथ की यह दशा देखकर दोनों भाई अत्यन्त चिन्तित हुए। राम ने सोचा—'बात क्या है? मेरी मौजूदगी में और मेरे सामने ही पिताजी की यह दशा क्यों है? धिक्कार है मुझे, जिसके होते पिताजी को इतना दुखी होना पड़ रहा है।' लक्ष्मण विचार करने लगे—"यह मैं क्या देख रहा हूँ? आज तो पिताजी को प्रसन्न होना चाहिए था, पर ये इतने उदास और शोकातुर क्यों हैं? ऐसी क्या घटना हुई कि जिससे पिताजी का हृदय इतना आहत हो गया है?"

राम ने जाकर पिता को प्रणाम किया। राम को देखकर दशरथ ने कहा—राम, तुम आ गए? हे सूर्यवंश के गुरु सूर्य! आज तू उदित ही क्यों हुआ? एक ओर मैंने राम को राज्य देने की घोषणा करदी है और दूसरी ओर रानी कहती है कि भरत को राज्य दो। और मैं वचनबद्ध हूँ। ऐसे समय मुझे क्या करना चाहिए? हे सूर्य! अगर तू उगा न होता तो मैं इस संकट से बचा रहता। अगर मैं राम को राज्य न देकर भरत को राज्य दूंगा तो प्रजा क्या कहेगी? अगर मैं किसी को राज्य नहीं देता हूँ तो मेरा निमंत्रण पाकर आने वाले मेरे भाईबन्द क्या कहेंगे?

दशरथ इस प्रकार मन ही मन विचार कर रहे थे, तभी राम ने पूछा—पिताजी, आज आपको कौन-सी व्यथा सता रही है?

दशरथ मौन रहे। उनके मुख से बोल न निकल सका।

वे किस मुह से कहे कि मैं तुम्हें राज्य न देकर भरत को दे रहा हूँ ? और यह भी कैसे कहे कि मै तुम्हे राज्य दूंगा ? इस दुविधा मे बुरी तरह जकड़े हुए दशरथ के मुख से एक व्यथा-भरी लम्बी श्वास निकली। पिता को लम्बी सांस लेते देख कर राम ने सोचा—पिताजी को कोई बड़ा कष्ट है । इसी कारण वे मन ही मन कष्ट पा रहे हैं।

अब राम की दृष्टि कैकेयी की ओर गई। राम ने उसे प्रणाम करके कहा—माता, क्षमा करना। मुझे अब तक पता ही न था कि आप यहां बैठी है। इसी कारण आपको अब तक मैंने प्रणाम ही नहीं किया। मुझे क्षमा करो और यह बतलाओ कि पिताजी के हृदय-कमल-कुसुम मे क्या कांटा लगा है ? मैं बालक हूँ। नहीं जानता कि पिताजी क्यो व्यथित हो रहे है ? आप मेरी माता हैं। आपसे क्या छिपा है शीघ्र बत-लाइए तो मैं यथोचित प्रतीकार करने का प्रयत्न करूँगा ।

राम की कथा अनेक विद्वानो ने लिखी है। उन्होंने अपने अपने दृष्टिकोण के अनुसार कथा मे थोड़ा—बहुत परिवर्त्तन भी किया है। हमारे पास कोई ऐसा साधन नहीं, जिससे यह निर्णय किया जा सके कि किस कथा का कौन-सा भाग वास्तविक है और कौन-सा भाग कल्पित है ? अतएव यहाँ किसी एक कथा का आश्रय न लेकर अनेक कथाओ के अनु-सार राम—चरित का वर्णन किया जा रहा है। जिस कथा में जो भाग शिक्षाप्रद है, वह भाग उसमें से ले लिया गया है।

आचार्य रविषेण के पद्मचरित को देखने से ज्ञात होता है कि जब रानी कैकेयी ने वर मांगा था तो राम और लक्ष्मण वहां नहीं पहुँचे थे। कैकेयी ने दशरथ को कोई खरी-खोटी नहीं सुनायी और न राम के प्रति ही उसे कोई द्वेष उत्पन्न हुआ। बल्कि अत्यन्त लज्जित होकर रानी ने भरत के लिए राज्य मांगा था। अलबत्ता इस मांग से दशरथ को व्यथा पहुंची और ऐसा होना स्वाभाविक ही था और खास तौर पर राम को राज्य देने की घोषणा हो जाने के बाद यह परि-वर्त्तन शोक और दुविधा उत्पन्न करने वाला था। फिर भी कैकेयी के वर मांगने पर राजा उससे कहते हैं—

एवमस्तु शुचं मुञ्च निऋणोऽहं त्वया कृतः

रानी, ऐसा ही सही। तुम शोक का त्याग करो। तुमने आज मुझे ऋणहीन बना दिया। अर्थात् चिन्ता मत करो, राज्य भरत को ही दिया जाएगा।

इस प्रकार रानी को आश्वासन देकर राजा दशरथ ने राम को बुलवाया। उस समय का वृत्तान्त इस प्रकार है—

पद्मं लक्ष्मणसंयुक्तमाहूय च कृतानतिं ।
ऊचे विनियसम्पन्नम् किञ्चिद् विगतमानसः ॥
वत्स ! पूर्वम् रणे घोरे कलापारगयाऽनया ।
कृतं कैकय्या साधु सारथ्यं मम दक्षया ॥
तदा तुष्टेन पत्नीनां भूभृताञ्च पुरो मया ।

मनीषितं प्रतिज्ञातं नीतं न्यासत्वमेतया ॥
देहि पुत्रस्य मे राज्यमिति तं याचतेऽधुना ।
किमप्याकूत मापन्ना निरपेक्षा मनस्विनी ।
प्रतिज्ञाय तदेदानीं ददाम्यस्यै न चेन्मतं ।
प्रव्रज्यां भरतः कुर्यात् संसारालम्बनोज्झितः ॥
इयञ्च पुत्र शोकेन कुर्यात् प्राणविसर्जनम् ।
अमेच्च मम लोकेऽस्मिन्नकीर्त्तिर्वितथोद्भवा ॥
मर्यादा न च नामेयं यद्विधायाग्रजं त्वमं ।
राज्यलक्ष्मीवधूमङ्कम् कनीयान् प्राप्यते सुतः ॥

कैकेयी को यथोचित आश्वासन देने के पश्चात् दशरथ ने राम को बुलवाया। सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार शुभ लक्षणों से युक्त, विनय सम्पन्न और नमस्कार करते हुए राम दशरथ के पास पहुँचे। दशरथ ने कुछ उदासीनता के साथ राम से कहा-वत्स, तुम्हारी यह माता कैकेयी कला में बड़ी कुशल है। कुछ दिनों पहले एक भयंकर संग्राम में इसने मेरे सारथी का काम बहुत ही होशियारी के साथ किया था। इसकी चतुराई देखकर मुझे अत्यन्त सन्तोष हुआ। उस समय मैंने अनेक राजाओं के सामने और अपनी पत्नियों के सामने यह प्रतिज्ञा की थी कि तुम्हारी जो इच्छा हो सो मांगलो। मगर इसने इस वरदान को धरोहर के रूप में मेरे पास ही रहने

दिया। अब तुम्हारी यह माता वह वर मांग रही है। इसने यह मांग की है कि मेरे पुत्र-भरत-को राज्य दिया जाय। उस समय की हुई प्रतिज्ञा के बन्धन से मैं बन्धा हुआ हूं। कदाचित् यह याचना पूर्ण न करूँ तो भरत अपने को सब प्रकार के संसार सम्बन्धी बन्धनों से मुक्त समझेगा और दीक्षा ले लेगा। उसका दीक्षा ले लेना तो कोई बुराई की बात नहीं है बुराई तो यह है कि तुम्हारी यह माता कैकेयी अपने पुत्र के वियोग का शोक सहन नहीं कर सकेगी और अपने प्राण दे देगी इसके अतिरिक्त मेरी प्रतिज्ञा भी भंग हो जाएगी। लोग कहेंगे कि दशरथ ऐसा असत्यभाषी है कि उसने पहले तो रानी को इच्छानुसार वर मांगने का अधिकार दिया और जब रानी ने वर मांगा तो देने से मुकर गया। इस प्रकार दुनियां में मेरी अपकीर्त्ति फैल जाएगी।

एक तरफ तो रानी के मर जाने की और मेरी अपकीर्त्ति फैलने की संभावना है और दूसरी ओर अनीति है। अगर मैं तुम्हें राज्य न देकर भरत को राज्य देता हूँ तो बड़ा अन्याय होता है। राजाओं की यह मर्यादा नहीं है कि बड़े भाई की मौजूदगी में, उसे राज्य न देकर छोटे को राज्य दिया जाय! एक ओर कुंआ और दूसरी ओर खाई है।

तदहं वत्स! नो वेद्मि किं करोमीति पीडितः।
अत्यन्तदुःखवेगोरुचिन्ताग्राचान्तिरस्थितः॥

हे वत्स राम! मैं बड़ी दुविधा में पड़ा हूँ। मेरे हृदय में गहरा दुःख व्याप रहा है। मुझे भारी चिन्ता सता रही है, मैं किंकर्त्तव्यमूढ़ हो गया हूं! मुझे नहीं सूझता, क्या करूँ, क्या न करूँ?

बेटा, अगर मैं भरत को राज्य देता हूँ तो तुम्हारी क्या स्थिति होगी? तुम कहाँ जाओगे? क्या करोगे? कुछ सूझ नहीं पड़ता।

राम का आश्वासन

अपने पिता दशरथ से इस प्रकार की बात सुनकर राम को तनिक भी दुःख नहीं हुआ। उन्होंने सोचा-पिताजी को जो कष्ट है, उसे मैं दूर कर सकता हूँ। उन्हें दुविधा में से निकालने का उपाय मेरे हाथ में है, यह संतोष की बात है। यह सोच कर उन्हें प्रसन्नता हुई। राम की प्रसन्नता का एक कारण यह भी हो सकता है कि वे राज्य के बन्धन में पड़ना नहीं चाहते थे और उनकी वह चाह पूरी होने का अनायास ही अवसर आ गया था। कुछ भी हो, राम ने सद्भावना और प्रीति के साथ, दशरथ के चरणों की ओर देखकर कहा—

तात! रचात्मनः सत्यं त्यजास्मत्परिचिन्तनम्।
शक्रस्यापि श्रिया किं मे त्वय्यकीर्त्तिमुपागते॥
जातेन ननु पुत्रेण तत्कर्त्तव्यं गुहैपिणा।
येन नो पितरौ शोकं कनिष्ठमपि गच्छतः॥

पुनाति त्रायते चायं पितरं येन शोकतः ।
एतत्पुत्रस्य पुत्रत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥

अर्थात्–पिताजी ! आप अपने सत्य की रक्षा कीजिए। और हमारी चिन्ता का त्याग कीजिए । आपकी कीर्ति को कलंकित करके-आपके यश का नाश करके अगर इन्द्र का वैभव भी मुझे मिलता हो तो वह भी मेरे लिए अग्राह्य है। मिथिला का राज्य तो साधारण वस्तु है, आपकी प्रतिष्ठा को भंग करके मै इन्द्र का राज्य भी नहीं चाह सकता । बुद्धिमान् पुरुषो का यह कथन मैं भली भांति समझता हूँ कि सच्चा पुत्र वही है जो अपने पिता को शोक और दुःख से बचाता है। अगर मैं आपको इस दुख से मुक्त न कर सका तो मैं आपका पुत्र ही कैसा । अतएव आप चिन्ता मत कीजिए। भरत को राज्य देकर माताजी को संतोष दीजिए और आप निश्शल्य हो जाइए।

यह पद्मचरित्र का वर्णन है। इस वर्णन मे खूब सात्विकता है । तुलसीदास ने इस प्रसंग का वर्णन करते हुए कैकेयी का जो चित्र खीचा है, वह वैसा सौम्य नही है। दशरथ की रानी कैकेयी के अब तक के उच्च जीवन को देखते हुए उसकी निष्ठुरता और कठोरता कुछ संगत नहीं जान पड़ती। वह राम के प्रति जली-भुनी बतलाई गई है और दशरथ को भी मन मानी सुना रही है। ऐसा जान पड़ता है कि कल तक की कैकेयी कोई दूसरी है और आज की कैकेयी कोई और ही।

जो कैकेयी राम आदि पर जान देने को तैयार थी, वही उन्हे फूटी आंखो नहीं देख सकती। कैकेयी का यह चरित बड़ा विषम है। फिर भी इस वर्णन से यह शिक्षा अवश्य मिलती है कि स्वार्थ मनुष्य को अंधा कर देता है। स्वार्थ की भावना जब प्रबल हो जाती है तो वह पति, पुत्र, पत्नी आदि के हिताहित को नहीं देखने देती। उचित-अनुचित का विवेक तब तक ही रहता है, जब तक स्वार्थलोलुपता उग्र नहीं होती। तुलसी-रामायण के अनुसार इस प्रसंग का वर्णन इस प्रकार है—

जब राम ने दशरथ से उनके दुःख का कारण पूछा और दशरथ सिर्फ सांस लेकर रह गये-कुछ बोले नहीं, तो उन्होंने कैकेयी से पूछा—माताजी, आप बतलाइये, पिताजी के हृदय में कौन सा कांटा है? मैं उसे निकालकर पिताजी को सुखी करने का प्रयत्न करूँगा।

कैकेयी ने कहा—और कांटा कुछ नहीं है, मैं ही कांटा हूँ।

राम—माताजी, आप नाराज न हो, आप मेरी माता है। आप कैसे कांटा हो सकती है माता से कभी अपराध नहीं हो सकता। आप स्पष्ट कहिए, वास्तव में बात क्या है?

कैकेयी—तुम्हारे पिताजी ने पहले तो मुझे इच्छानुसार वर मांग लेने के लिए कह दिया था, मगर जब मैंने वर मांग लिया तो दुःख मना रहे हैं।

राम—ठीक है, ऐसा नहीं होना चाहिए। जब आपको वचन दिया है तो उसे पूरा करना ही उचित है। आप मुझसे स्पष्ट कहिए। मैं दलाल बनकर आपको दिलाऊँगा। आप निश्चिन्त रहिए।

कैकेयी—लेकिन तुम्हारे पिता की दृष्टि में उस समय मैं रानी थी, अब तुम्हारी मां-कौशल्या रानी हैं। मैं अब रानी नहीं रही। यही नहीं, बल्कि तुम्हीं इनके पुत्र हो, भरत पुत्र नहीं है।

कैकेयी के इस कथन पर राम ने विषादभरी हँसी हँस कर कहा—रघुकुल में ऐसा कदापि नहीं हो सकता कि दो रानियों में से एक रानी रहे और दूसरी रानी न रहे और एक पुत्र तो पुत्र हो और दूसरा पुत्र न हो। दाहिनी और बाई आंख-दोनों बराबर हैं। एक बड़ी और दूसरी छोटी नहीं मानी जा सकती।

कैकेयी—तुम्हारी बुद्धि तो ठीक है, पर तुम्हारे पिताजी यह नहीं सोचते। लो मैं तुमसे साफ कहती हूँ-महाराज ने मुझे वर देने को कहा था और वह धरोहर के रूप मे था। वह वर मैंने अब मांग लिया है। मुझे जो अच्छा लगा सो मैने मांग लिया। मैंने यह मांगा है कि भरत को राज्य दिया जाय, राम को नहीं। राम, तुम बताओ मैंने क्या बुरा मांगा है?

तुलसीदासजी ने लिखा है—

मन मुसकाय भानुकुलभानू ।
राम सहज आनन्दनिधानू ॥
बोले वचन विगत सब दूषण ।
मृदु मंजुल जनु वागविभूषण ॥

कैकेयी की बात सुनकर राम मुस्किराये। उनका चित्त आनन्द से भर गया। उन्होंने सोचा—मैं रात्रि मे यही विचार कर रहा था कि राज्य की विपदा मेरे सिर से कैसे टले ? मैं असमंजस मे पड़ा हुआ था। अब माताजी ने मेरी मुराद पूरी कर दी। मुझे पिताजी से कुछ नहीं कहना पड़ेगा।

राम के लिए यह कितना कठिन था ? राज्य हाथ से जा रहा है, संसार में अपवाद हो सकता है कि राम को किसी कारण अयोग्य समझ कर राज्य नहीं दिया गया और लोक-हँसाई होती है कि देखो, चले थे राजा बनने ! इन सब बातों की परवाह न करके राम प्रसन्न हैं वे सहज आनन्द के निधान हैं। वे बाहर के आनन्द को ही आनन्द नहीं मानते। सहजानन्दी है, उसे संसार का आनन्द नहीं चाहिए। सहजानन्द के अभाव मे बाहरी आनन्द दुःख का रूप धारण कर लेता है कबीर ने कहा है—

यह ससार कागद की पुड़िया,
बूंद लगे घुल जाना है ।
रहना नहीं देश बिगाना है ॥

यह संसार काँटन की वाड़ी,
उलझ-उलझ मर जाना है ।
रहना नहीं देश विगाना है ॥
यह संसार झाड अरु झंखर,
आग लगे जल जाना है ।
रहना नहीं देश विगाना है ॥

अगर आत्मा मे सहजानन्द न होगा तो वाहर की सुख-सामग्री तनिक भी सुख नहीं पहुँचा सकेगी । वाहरी चीजों मे सुख होता तो दशरथ को वैराग्य ही क्यो होता ? और इस समय उन्हे व्यथा हो रही है सो क्यों होती ? वे क्या देखना चाहते थे और क्या हो रहा है ? मगर राम सहजानन्दी हैं। संसार का कोई भी परिवर्त्तन सहजानन्द को भंग नहीं कर सकता ।

कैकेयी का कथन सुनकर राम हँस दिये। यद्यपि वह हँसी आनन्दायिनी थी, लेकिन कैकेयी के कलेजे में वह कांटे की तरफ चुभ गई। उसकी कल्पना में राम कपटी थे। कैकेयी मन ही मन सोचने लगी—बड़े को राज्य देना नीति है, यह सोच कर राम हँसता होगा, मगर वचन का पालन करना क्या नीति नहीं है ? इस प्रकार रानी ने न जाने क्या क्या सोचा होगा ! पर राम तो राम ही थे उन्होंने सहजानन्द के साथ कैकेयी के सब तीर सहन कर लिये। वे कहने लगे—माताजी, आपकी मांग ठीक ही है। आपको मांग करने का

अधिकार था। आपने कुछ बुरा नहीं मांगा। बल्कि आपने उदारता से काम लिया है कि भाई भरत के लिए ही राज्य मांगा। आपको तो किसी गैर आदमी के लिए भी राज्य मांगने का अधिकार था। भरत क्या कोई दूसरे हैं कि पिताजी उन्हें राज्य देने में दुःख अनुभव करें!

सुन जननी सोइ सुत बड़भागी।
जो पितु-मात-चरण अनुरागी॥

हे माताजी, तुमने मुझे भाग्यशाली बना दिया। मैं राज्य लेकर तुच्छ हो जाता, पर तुमने मुझे मिलता हुआ राज्य भरत को दिलवा कर मुझे बड़भागी बना दिया। शायद मैं अपनी ओर से भरत को राज्य न दे सकता, पर तुमने वह दिलवा कर मुझे बड़ा बना दिया है। माता, मैं कहाँ तक तुम्हारी प्रशंसा करूँ।

राम कहते हैं-जब तक माता-पिता खाने पीने को दें तब तक उनकी सेवा करने में कोई विशेषता नहीं है। विशेषता तो तब है जब माता-पिता द्वारा सभी कुछ छीन लेने पर भी पुत्र उनकी उसी प्रकार सेवा करता रहे जैसी पहले करता था। इस प्रकार सेवा करने वाला पुत्र ही वास्तव में बड़भागी है। माताजी, तुमने मुझे सचमुच बड़भागी बनने का अवसर दिया है।

भरत प्राणप्रिय पावहिं राजू,
विधि सब विधि सन्मुख मोहि आजू

मेरा भाग्य कितना अनुकूल है कि मेरा प्राणों के समान

प्यारा भाई भरत आज राजा बनेगा ! मेरे सौभाग्य से ही माता ने पिताजी से यह वर माँगा है।

जब राम इस प्रकार की बातें कह रहे थे, उस समय लक्ष्मण क्या सोचते थे ? वह सोच रहे थे—माता अभी तो कह रही थी कि मैं काँटा हूँ; मुझे निकाल फेंको और अभी-अभी तो राज्य मांगने लगी ! राम को कुल की परम्परा के अनुसार राज्य दिया जा रहा है; अतएव महाराज या राम को कोई अधिकार नहीं है कि वे भरत को राज्य दे दें। मैं देख लूँगा। राम को मिलने वाला राज्य दूसरा कौन लेता है !

राम राज्य लेना चाहते तो कह सकते थे-वर पिताजी ने दिया है तो उनकी चीज़ ले सकती हो। राज्य तो पिताजी का नहीं है। राज्य तुम कैसे ले सकती हो ? इस प्रकार कह कर राम अगर लाल आँख दिखा देते तो कैकेयी का पुत्र भरत भी उसका साथ न देता। राम क्रोध में आकर कह सकते थे-अगर तुम्हें शान्ति के साथ यहां नहीं रहना है तो अपने मायके चली जाओ। राज्य भरत को नहीं मिल सकता। लक्ष्मण ने क्रोध करके यह सब कहा भी था मगर हमें तो राम के चरित्र से मतलब है। राम के चरित्र को सुनने-समझने और उसका यथाशक्ति अनुकरण करने में ही जीवन की उन्नति है। राम ने कैकेयी पर तनिक भी क्रोध नहीं किया। वह कहने लगे—

भरत प्राणप्रिय पावहिं राजू,
विधि सब विधि सन्मुख मोहिं आजू।

जो न जाऊँ वन ऐसे हु काजा,
प्रथम् गनिय मोहिं मूढ़-समाजा।

इन चौपाइयों का अर्थ जिह्वा से कैसे समझाऊँ! राम कहते हैं—वाह माता! तू कितनी विवेकशीला और दूरदर्शिनी है कि तू ने पिताजी से यह वर मांगा। तू मुझे साक्षात् सरस्वती ही दिखाई देती है। जिस भाई भरत को मैं प्राण से भी अधिक प्रिय समझता हूं, उसके लिए राज्य मांग कर तू ने मेरी भावना पूरी कर दी। मैं सोच ही रहा था—

विमल वंश वड़ अनुचित एकू
अनुज विहाय वडेहिं अभिषेकू।

जिन्हें मैंने अव तक भाई समझा है, राज्य देने पर मैं उन्हीं का स्वामी कहलाता और वे सेवक कहलाते! यह कितनी अनुचित बात थी? भरत की भलाई के लिए मैं अपना सिर भी दे सकता हूं, राज्य तो क्या चीज है!

भारतीयों के सामने राम का यह आदर्श उपस्थित है। फिर कोई भाई अपने भाई को मारने के लिए तैयार तो नहीं होता! अगर कोई तैयार होता है तो उसने राम-कथा नहीं सुनी, राम-कथा में ही वह रचा-पचा है।

राम कहते हैं—माता! भरत के लिए राज्य मांगकर तू ने मेरी इच्छा पूर्ण कर दी है। मेरा भाग्य अच्छा है, विधाता मेरे अनुकूल है। इसी कारण तेरे मुख से राज्य मांगने की बात निकली है।

अगर मैं भरत को राज्य न देकर स्वयं राज्य ले लूँ तो मैं बड़ा मूर्ख ठहरूँगा। मेरी यह मूर्खता इस प्रकार होगी—

सेव एरण्ड कल्प तरु त्यागी।
परिहरि अमिय लेहिं विष मांगी॥
सो न पाय अस समय चुकाहीं।
देखु विचारि मात! मन माहीं॥

एक ओर कल्पवृक्ष हो और दूसरी ओर एरंड हो। दोनों में से किसी भी एक को लेने की स्वतंत्रता प्राप्त हो। ऐसे अवसर पर जिसकी बुद्धि विपरीत होगी, वही मूर्ख कल्पवृक्ष को छोड़कर एरंड लेगा। उसे कोई समझदार नहीं कह सकता। मगर ऐसा वज्र मूर्ख भी ऐसा सुयोग पाकर चूक नहीं करेगा। मैं भरत को राज्य क्या दे रहा हूँ, भरत को अपना बना रहा हूँ। अगर मैं भाई को छोड़ कर राज्य अपनाऊँ तो मैं मूर्खों का शिरोमणि गिना जाऊँगा।

राम कहते हैं—एक अमृत से भरा प्याला सामने हो और दूसरा विष से भरा हुआ हो। दोनों में से किसी भी एक प्याले को लेने की छुट्टी हो तो विष का प्याला लेना कौन पसंद करेगा? अगर कोई पसंद करता है तो वह मूर्ख ही गिना जायगा। जिस राज्य का त्याग करने से भाई का प्रेम मिलता है, पिता की प्रतिज्ञा पूरी होती है और आपकी मांग पूरी होती है और प्राणप्रिय भाई को राज्य मिलता है, उसका त्याग न करके अगर बदले में कलह, विग्रह और फूट

लूँ तो ऐसा करना अमृत त्याग कर विष लेने के समान ही होगा।

राम की बात सुन कर कैकेयी सोचने लगी–राम तो गजब है! जिनसे मैंने वर मांगा, वे राजा तो उदास हो गये हैं और जिनका राज्य जा रहा है वे राम यह उदारता प्रकट कर रहे हैं! इस प्रकार विचार कर कैकेयी का क्रोध शान्ति में परिणत हो गया। वह मन ही मन कहने लगी—अरे राम, तू क्या सचमुच ऐसा है? अरी मथरा! तूने मेरे घर में यह क्या आग लगा दी है!

राम कहते हैं—माता! आपने राज्य मांगा सो तो आनन्द की बात है, परन्तु एक बात की मुझे बहुत चिन्ता है।

थोरिहि बात पितहि दुख भारी।
होति प्रतीति न मोहिं महतारी॥
राउ धीर–गुन उदधि अगाधू।
भा मोहिते कछु बड अपराधू॥

माताजी! मुझे इस बात का दुःख है कि जरा-सी बात के लिए पिताजी को इतना दुःख हो रहा है। पिताजी की दृष्टि में मैं और भरत दो नहीं हो सकते। अतएव मुझे विश्वास नहीं होता कि इस छोटी–सी बात के लिए ही पिताजी को इतनी वेदना हो रही है! पिताजी में अपार धैर्य है। वे गुणों के निधान हैं। वे इस तुच्छ बात के लिए क्यों दुखी होते? जान पड़ता है, मुझसे कोई बड़ा अपराध हो गया है। मैं इसे

कैसे जानूँ ?

माता ! मैं तो स्वयं ही यह चाहता हूं कि भरत को राज-सिंहासन पर बैठा देखूँ। आप अपना मनोरथ सफल समझिए। आप थोड़ी देर के लिए महल में पधारिए। मैं पिताजी को सान्त्वना देकर उन्हे स्वस्थ करूँगा।

कैकेयी कहने लगी-राम, क्या सचमुच तुम राज्य त्यागने को तैयार हो ? या स्त्री समझ कर मुझे भुलावा दे रहे हो ? याद रखना, मैं भुलावे में आने वाली स्त्री नहीं हूं। जब भरत को राज्यासन पर बैठा देखूँगी, सब जगह भरत की दुहाई फिर जायगी और मैं राजमाता बन जाऊँगी, तभी मैं अपना मनोरथ सफल समझूँगी।

राम ने कहा—मां, तुम्हे इतने पर भी विश्वास नहीं हुआ तो लो, मैं आपके सामने प्रतिज्ञा करता हूँ कि यदि मैं आपका और महाराज दशरथ का पुत्र हूँ तो मैं हर्गिज राज्य स्वीकार न करूँगा और भरत को राज्य-सिंहासन पर बिठला दूँगा।

अब कैकेयी को विश्वास हो गया कि चाहे गंगा-जमना उलटी बहने लगे पर राम की यह प्रतिज्ञा नहीं टलेगी। यह विश्वास करके वह वहाँ से जाने को उद्यत हुई।

लक्ष्मण का कोप

लक्ष्मण अब तक अपने को संभाले हुए थे। कैकेयी को जाती देख और सारा मामला बिगड़ता देखकर उनसे नहीं रहा गया। उनका चेहरा लाल हो गया। क्रोध से कांपने लगे। कड़क कर बोले—माता, ठहरो। अभी मत जाओ। राम, तुम भी ठहरो। राज्य के विषय में इस प्रकार निर्णय करने का किसी को अधिकार नहीं है और पिताजी, आप भी मेरी बात सुन लीजिए।

लक्ष्मण का तमतमाता हुआ चेहरा और ऊंचे स्वर से कही हुई उनकी बात सुनकर कैकेयी सहम उठी। वह लक्ष्मण की बहादुरी को जानती थी और उसके तेज स्वभाव से भी परिचित थी। इस समय लक्ष्मण का रूप देख कर तो वह कांप उठी। उसने सोचा—लक्ष्मण न जाने क्या गजब ढा देगा! कैकेयी जहां की तहां बैठी रह गई।

इसके बाद लक्ष्मण कहने लगे—माता, आपने वरदान क्या मांगा है, इस कुल के लिए घोर अभिशाप मांगा है। इस अभिशाप की आग में न जाने किस-किस को ईंधन बनना

पड़ेगा ! यह वर मांग कर आपने आततायीपन प्रकट किया है। राज्य, स्त्री और धन को हरण करने वाले ही तो आततायी कहलाते है। ऐसे आततायी को राजा दंड देता है। यों तो मैं आपका पुत्र हूँ, पर न्याय की प्रतिष्ठा के लिए आतताई पिता को भी दंड देना पुत्र का कर्त्तव्य है ! मैं आततायी को कदापि दंड दिये बिना न छोड़ूँगा।

तुमने किसके बल-बूते पर यह दुस्साहस किया ? अगर आपको अपने भाई का बल प्राप्त है तो उसे भी बुला लेना। मैं उसे भी देख लूँगा। यह तो निश्चित है कि बिना सहायक के आप अकेली यह आततायीपन नहीं कर सकती पर मैं कहता हूँ-आप अपने सब सहायकों को एक साथ बुला लो। जिनकी सहायता के भरोसे आप यह स्वप्न देख रही हो, वे भी आज सौमित्र का बल देख लें। तुम्हारे बहाने उन कुचक्रियो को उनके कुचक्र का फल चखाने का अवसर मिलेगा।

मुझे एक बात का बड़ा आश्चर्य है। तुम भरत के लिए राज्य मांग रही हो, मगर विश्वास नहीं होता कि भरत जैसा साधुस्वभाव का व्यक्ति तुम्हारे कुचक्र मे शामिल हो सकता है। ना, भरत इस षडयंत्र में शामिल नहीं हो सकता ! यह तुम्हारी ही रचना है। भरत हमारा भाई है और हम सब पर सूर्यवंश की छाप लगी है। सूर्यवंशी कभी ऐसी नीचता नहीं कर सकता। तुम ही अपने पिता के संस्कारो का शिकार हो रही

हो या दूसरों ने तुम्हे होली का नारियल बनाया है। आश्चर्य है कि तुम्हारे पेट से भरत का जन्म कैसे हुआ ? पर कमल कीचड़ में उत्पन्न होता है। कमल को जन्म देकर भी कीचड़ तो कीचड़ ही रहता है।

मैं सब के सामने स्पष्ट कर देता हूं कि राम के सिवाय संसार मे किसी का सामर्थ्य नहीं जो इस राजसिहासन को छू सके।

पिताजी राम के अधिकार का राज्य किसे दे सकते है, मैं देख लूँगा। राज्य प्रजा के लिए है। प्रजा के कल्याण का बोझ है और यह बोझा वही उठाएगा जिसे प्रजा का विश्वास प्राप्त है और जिसमें उसे उठाने की शक्ति है ! राज्य किसी व्यक्ति विशेष की पूंजी नहीं है। वह चाहे जिसे नही सौंपा जा सकता। वह एक पवित्र धरोहर है जो कुल परम्परा के अनुसार ही दूसरों को सौंपी जाती है।'

राजा लोग राज्य को अपनी बपौती की वस्तु समझते हैं; पर वास्तव में प्रजा के कल्याण के लिए ही उन्हे राज्य सौंपा गया है। घर-घर की गायें लेकर ग्वाल उन्हे जंगल मे चराने ले जाता है, लेकिन गायें उसकी नहीं है। वह केवल चरा कर लाने वाला है और बदले में अपनी चराई ले लेता है। यही बात राजा के लिए है। राजा, प्रजा की रक्षा करके अपना हक ले ले पर उनको हानि न होने दे और प्रजा को अपनी पूंजी न समझ बैठे मगर आजकल तो उलटी गंगा बह रही

है। राजा भोग-विलास में डूबे रहते हैं। प्रजा के कल्याण की चिन्ता उन्हें तनिक भी नहीं है। तिस पर भी वे समझते हैं— प्रजा हमारे चूसने की ही चीज़ है।

लक्ष्मण क्रोध में बोल रहे हैं, मगर न्याय की बात ही कह रहे हैं। वह कहते हैं कि राज्य प्रजा की सुख-शांति के लिए है और राजमुकुट उसी के सिर पर रखा जाता है जो बड़ा होता है। यह परम्परा है। फिर दूसरा कोई राज्य का अधिकारी किस प्रकार हो सकता है? वास्तव में लक्ष्मण की कोई दलील कच्ची नहीं है।

दुनिया में कहावत है-समुद्र के तूफान को और पृथ्वी के कम्पन को कौन रोक सकता है? कदाचित् यह कहावत झूठी भी हो जाय-इन दोनों को कोई रोक भी दे मगर लक्ष्मण के वीर रस से भरे कोप को कौन रोक सकता है? पर संसार में सभी व्यवस्थाएँ हैं। आपको तो लक्ष्मण की वीरतापूर्ण बातें अच्छी लगी होंगी किन्तु जरा राम का भी बल देखो। शारीरिक बल में तो लक्ष्मण, राम से भी बढ़कर हैं किन्तु राम का असली बल भिन्न ही प्रकार का है। लक्ष्मण के कोप के तूफान को केवल राम ही रोक सकते हैं।

लक्ष्मण की बात सुनकर राम ने सोचा—लक्ष्मण कुपित हो गया है और वह गजब कर डालेगा। अतएव उन्होंने कैकयी की ओर से अपनी दृष्टि हटाकर लक्ष्मण की ओर देखा और कहा—सौमित्र! तुम यह क्या कर रहे हो? जरा संभलो

और देखो कि किधर जा रहे हो ? तुम किस दर्जे से किस दर्जे पर पहुँचना चाहते हो ? तुमने जितना कह लिया, वही बहुत है। अब तुम्हें चुप रहना चाहिए।

लक्ष्मण ने विचार किया—चलो अच्छा हुआ, इनसे भी दो बातें कहने का अवसर मिल गया। यह सोचकर वह बोले—क्या मैं चुप रहूँ ? चुप कैसे रहूँ जब कि माता आततायी बन गई है और आप उसके आततायीपन का समर्थन कर रहे हैं। मुझे जो शिक्षा मिली है और मैंने जो वीरता पाई है, वह इस तरह का अन्याय सह लेने के लिए नहीं है। अगर अन्याय सहना है तो कायरता ही भली, फिर यह वीरता कब काम आएगी ? मुझे आश्चर्य तो यह है कि न्यायसंगत बात कहने वाले को आप चुप करना चाहते हैं और सरासर अन्याय करने वाली माता को आप कुछ भी नहीं कहते, वरन् उनका साथ दे रहे हैं ! यह तो अन्याय को दंड न देकर न्याय को दंड देना है ! माता के सामने आप चाहे जितनी नम्रता धारण करें और उन्हें कुछ भी वचन दे, पर यह असंभव है कि भरत राजा हो जाय ! भरत को राज्य नहीं मिलेगा। होगा वही जो कुल की परिपाटी है। कुलधर्म के विरुद्ध कोई बात नहीं हो सकती। मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप अब यहां न ठहरें।। दिन निकल आया है। राज्याभिषेक का समय हो रहा है। आप सिंहासन को शीघ्र सुशोभित करें। अगर बात बढ़ती है तो बढ़ने दीजिए। मैं

आपके साथ चल रहा हूं और देखता हूँ, कौन आपके राज्य मे विघ्न डालता है ?

मैं जानता हूँ कि इस षडयन्त्र में और लोग भी शामिल होंगे । मैं अकेला ही उन सब की खबर लूँगा । मैं अकेला ही सारी पृथ्वी पर तूफान खड़ा कर सकता हूँ। आप मेरे पराक्रम को जानते हैं और मैं आपकी बगल में खड़ा हूँ। फिर आप सिंहासन पर क्यों नहीं बैठते ? जो लोग आपके राज्य का विरोध करेंगे वे सब मेरे धनुष और खड्ग के शिकार होंगे। मेरी क्रोधाग्नि उन्हे भस्म कर देगी । चलिए, देर हो रही है।

आप दयालु है। सोचते होंगे कि अपने सगे-संबंधियों को किस प्रकार दंड देंगे ? मगर आपको कुछ नहीं करना होगा। सब कुछ करने वाला आपका यह सेवक प्रस्तुत है। आप सिंहासन पर बैठकर मुझे आदेश भर दे दीजिए। फिर मैं सब को देख लूँगा ।

आप फिर संकोच में पड़े है ? इतने गहरे विचार की आवश्यकता ही क्या है ? आपका दास आपके सामने है वह सब को ठिकाने लगा सकता है ।

राज्य न त्यागने के लिए राम को अच्छा अवसर मिल रहा है। वह कह सकते थे—मैं क्या करूँ ? मैं तो राज्य छोड़ रहा था। पर लक्ष्मण नहीं मानता । राम, लक्ष्मण को सिखाकर भी नहीं लाये थे। वह तो स्वयं ही बिगड़ खड़े हुए थे। मगर

राम ने इस अवसर से लाभ नहीं उठाया।

आप अपनी स्त्री के साथ जंगल मे जा रहे हों और लुटेरा आकर आप से कहे कि अपने कपड़े दे दो, अन्यथा तुम्हारा सिर काटते हैं तो आप क्या करेंगे ? आप कपड़ा दे देंगे ?

वीर पुरुष किसी भी दशा में अपना अधिकार नहीं खोते। सच्चा वीर अपने अधिकार की रक्षा के लिए हँसते-हँसते प्राण दे सकता है। लुटेरे से डरकर जो अपने कपड़े दे देता है उसके लिए अपनी स्त्री की इज्जत बचाना भी कठिन हो जायगा। कायर को सभी अपना शिकार समझते हैं।

लक्ष्मण कहते हैं-'हम वीर है, कायर नहीं जो अपना हक़ खो दें। जो अपने हक़ के कपड़े देने को तैयार हो जाता है वह कायर है। हम क्षत्रिय प्राण दे देंगे पर अपने हक़ का राज्य नहीं देंगे। न्याय की बात हम सब मानेंगे। मगर अन्याय की बात विधाता की भी नहीं मानेंगे। आप माता को समझाने का प्रयत्न कर रहे है पर नागिन पुचकारने से नहीं मानती। उसे मनाने का और ही उपाय है। नागिन के विष के दांत उखाड़ने पड़ते हैं। मैं यह सब ठीक कर लूँगा।'

कदाचित् राम इस मौके पर आपसे सम्मति लेते तो आप उन्हें क्या सम्मति देते ? आप शायद यही कहते कि राज्य पर आपका अधिकार है; आपको एक औरत के कहने पर ध्यान नहीं देना चाहिए। आप राजसिंहासन पर बैठिए।

कौन क्या बिगाड़ सकता है ?

लक्ष्मण को प्रतिबोध

आज के जमाने मे यही बात सब को प्रिय लगती है। आजकल मार-काट को ही न्याय के कपड़े पहनाये जाते हैं। पर राम लोकोत्तर पुरुष थे। उनकी विचार शक्ति अलौकिक और गम्भीरता अथाह थी। उन्होंने कुपित लक्ष्मण की सब बातें शान्तिपूर्वक सुन लीं। उन्होंने सोचा-इस समय लक्ष्मण का जोश ठंडा हो जाने देना ही उचित है। उसे अपने दिल का गुब्बार निकाल लेने देना चाहिए। जब लक्ष्मण अपनी बात कह चुके तो राम हँसते हुए लक्ष्मण से कहने लगे-भैया लक्ष्मण, शान्त होकर मेरी बात सुन। मैं तेरी असाधारण वीरता को खूब जानता हूं। मगर तेरी वीरता शत्रुओं को जीतने के काम आनी चाहिए। आत्मीय जनों के लिए वह नहीं है। संसार की मोह-ममता ने तुझे बहका दिया है। इसलिए तू मेरी बात को तुच्छ और भूलभरी समझता है। शुद्ध बुद्धि से मेरी बात सुन और विचार कर।

लक्ष्मण ! तुम उत्तेजना के वश होकर अप्रिय बात कह रहे हो। शान्ति के साथ बात को तोलो तो वास्तविकता मालूम होगी। उत्तेजना की स्थिति में बात की वास्तविकता का पता नहीं चलता ! तुम किस पर यह क्रोध कर रहे हो, यह जानते हो ? चंचलता छोड़ो। मैं जो कुछ कहता हूँ, वह सुनो। शान्त होओ।

लक्ष्मण की बात उचित और न्यायसंगत थी। लेकिन वे अपने भाई के प्रति अत्यन्त विनीत थे। अतएव राम की बात सुनने के लिए वह शान्त हो गए।

जैन रामायण के अनुसार वन जाने का प्रस्ताव स्वयं राम ने ही किया था और तुलसी रामायण के अनुसार कैकेयी ने व उनके वनवास का भी वर मांगा था। पद्म चरित मे कहा है—

मयि स्थिते समीयेऽस्मिन लोके भास्करसम्मते।
आज्ञैश्वर्यमयी कांतिर्भरतेन्दोर्न जायते॥

राम कहते हैं—लोक मे मैं सूर्य के समान समझा जाता हूं और भरत चन्द्रमा के समान है। सूर्य की मौजूदगी मे चन्द्रमा की कांति फैलती नहीं, फीकी रहती है। अतएव अगर मै अवध में रहा तो भरत का ऐश्वर्य चमक नहीं सकेगा। अतएव—

अन्ते तस्या महारण्ये विंध्याद्रीमलयेऽथवा।
अन्यस्चित् चार्णवस्यान्ते पश्य मातः कृतं पदम्॥

माता मै किसी महान् अरण्य मे, विंध्यांचल या मलभ पर्वत में अथवा किसी समुद्र के निकट आश्रम बनाकर रहूंगा। मैं भरत के राज्य मे विघ्न नहीं डालूँगा।

स्वेच्छापूर्वक वनगमन के इस वर्णन से राम की महिमा शतगुणी बढ जाती है और कैकेयी के चरित में कालिमा भी नहीं आती। वस्तुतः जैनरामायण का यह विवरण बहुत ही

महत्वपूर्ण है। लेकिन वन गमन की मुख्य घटना दोनों जगह समान है।

इसी कारण राम, लक्ष्मण से कहते हैं—मेरे रहते भरत राज्य नहीं करेंगे, अतएव मैं वन जाने के लिए तैयार हूँ; यह जानकर तुम व्यर्थ क्रोध कर रहे हो। तुम समझते हो कि यह बात राम के विषय में हो रही है, इसी कारण तुम इसका विरोध कर रहे हो। अगर यही बात तुम्हारे संबंध में होती तो तुम क्या करते? इसी प्रकार बोलते या पिताजी की बात मान लेते? तुमने विचार नहीं किया कि पिताजी क्या राम के वैरी हैं, जो इस प्रकार का व्यवहार कर रहे हैं? जिस धर्म का पालन करने के लिए पिताजी इतना कष्ट सहन कर रहे हैं और उन्हें जो अनिष्ट है उसे भी करने के लिए तैयार हो गए हैं, उस धर्म को हम लोग इस कुल में उत्पन्न हो करके भी कैसे भुला सकते हैं? जिस धर्म को पिताजी पाल रहे हैं, मैं उसमें किस प्रकार बाधक हो सकता हूं?

लक्ष्मण! तुमने जो निन्दा की है सो और किसी की नहीं, सिर्फ धर्म की निंदा की है। तुम धर्मज्ञ और धर्मनिष्ठ पिता के पुत्र होकर ऐसा अनुजित व्यवहार कर रहे हो? तुम उनके पुत्र होकर भी धर्म का घात कर रहे हो? गुरुजनों का आदेश मुकुटमणि की भांति शिरोधार्य होना चाहिए। उसे ठुकराना उचित नहीं है। पिताजी जिस व्यवस्था के विचार मात्र से इतने व्यथित हो रहे हैं, धर्म के लिए वही व्यवस्था कर रहे हैं।

तुम उसी व्यवस्था को टाल रहे हो ? भैया, तुम्हारी बुद्धि आज इतनी चंचल क्यों है ?

अनुज ! हमारे और तुम्हारे सिर पर पिताजी का कुछ ऋण है या नहीं ? पिता का हमारे ऊपर जो ऋण है, उसके सामने यह राज्य मानो तृण है। उस ऋण के बदले यह तृण त्याग देना क्या कठिन है। राज्य क्या चीज है, पितृ-ऋण चुकाने के लिए मैं प्राण भी त्याग सकता हूं। तुम अपने मन को काबू मे करो। फिर यह सोचो कि ज्येष्ठ पुत्र को राज्य मिलना अगर कुल की रीति है तो पिता की आज्ञा का पालन करना क्या कुल की परम्परा नहीं है ? अगर मन पर शासन कर लिया तो अयोध्या छोड़ सारे संसार का राज्य अपना ही है। फिर इस तुच्छ राज्य के लिए इतनी चचलता धारण करके तुम कहते हो कि चलो, सिहासन पर बैठो ! और मैं आततायी को दंड दिये विना नहीं रहूंगा !

सौमित्र ! तुम समझते होगे कि राज्य न मिलने से आज भाई का गौरव घट गया है; लेकिन मैं कहता हूँ कि आज मुझे जो गौरव मिला है, वह संसार मे कभी किसी को नहीं मिला। इस गौरव को पाने के लिए मुझे बधाई दो और मेरी बात पर विचार करके शान्त होओ। मेरे प्यारे भ्राता ! आओ, आज हम हर्ष मनाएँगे।'

इतना कहकर राम ने लक्ष्मण को गले लगाने के लिए अपनी विशाल भुजाएँ फैला दीं। राम उस समय लक्ष्मण को

गले क्या लगा रहे थे, मानों त्रिलोकी की संपदा को गले लगा रहे थे। राम ने अगर राज्य ले लिया होता तो आज संसार उनके गुणों का गान न करता। मगर उन्होंने राज्य का त्याग करके संसार को आदर्श दिखा दिया। उनके उच्च त्याग के कारण ही तो आज हम लोग उनका यशोगान करते हैं।

राम ने कहा—आओ लक्ष्मण, मेरे कंठ से लग जाओ। इस तरह कहकर उन्होंने लक्ष्मण को अपनी बाहों में ले लिया। लक्ष्मण को अपनी अँकवार में ले लेने के बहाने मानों उन्होंने संसार को अपनी गोद ले लिया।

राम की बात सुनकर लक्ष्मण का क्रोध शान्त हो गया। उन्होने सोचा—

किमनेन विचारेण कृतेनानुचितेन मे।
ज्येष्ठस्तातश्च जानाति साम्प्रतासाम्प्रतं बहु॥

लक्ष्मण ने पहले आवेश मे आकर जो विचार किया, वह उन्हे अनुचित जान पड़ा। वे सोचने लगे—खैर, उक्त प्रकार का अनुचित विचार करने से क्या लाभ है! ज्येष्ठ भ्राता राम और पिताजी मुझसे अधिक समझदार हैं। मेरी अपेक्षा उचित-अनुचित का, न्याय-अन्याय का ज्ञान उन्हें अधिक है। उन्होंने जो निश्चय किया है सो उचित ही होगा।

सितकीर्तिसमुत्पत्तिर्विधातन्धा हि नः पितुः।
तूष्णीमेवानुगच्छामि ज्यायसं साधुकारिणम्॥

हमें ऐसा ही व्यवहार करना चाहिए जिससे पिताजी की उज्ज्वल कीर्ति इस भूमंडल मे सर्वत्र फैले। ज्येष्ठ भ्राता जो कुछ करते हैं वह कभी बुरा नहीं हो सकता। अतएव मुझे उन्हीं का अनुसरण करना चाहिए। मैं उनके साथ—साथ वन को जाऊँगा।

इस प्रकार राम और लक्ष्मण मे जो वार्त्तालाप हुआ, उसमें राम के तत्त्व की विजय हुई। राम का उपदेश लक्ष्मण को लक्ष्य करके दिया गया है। मगर वह सिर्फ लक्ष्मण के लिए नहीं है। लक्ष्मण अब इस संसार में नहीं हैं। उनके लिए ही उपदेश होता तो अनेक ग्रन्थों मे उसका उल्लेख करने की आवश्यकता ही न होती। वास्तव मे राम का अमर उपदेश सारे जगत् के लिये है। जो लोग माया के जाल में फँसे हैं और अपने स्वार्थ को ही सब से ऊपर समझते है उन्हें राम का यह उपदेश बहुत लाभदायक है।

लक्ष्मण राम के चरणों मे गिर गये। राम ने उन्हे प्रेम के साथ उठा कर फिर अपनी छाती से लगाया। सांसारिक दृष्टि से लक्ष्मण के विचार सत्य थे मगर तात्विक दृष्टि से राम के विचार सत्य थे। अतएव लक्ष्मण उनसे कहने लगे—अब मैं आपका अनुचर—सेवक ही रहूंगा और अपनी बुद्धि न दौड़ा कर आप जो कहेंगे, वही करूँगा।

लक्ष्मण का कथन सुनकर राम को संतोष हुआ। कैकेयी ने सोचा—चलो. तूफान आया था सो निकल गया।

दशरथ को पुनः आश्वासन

इस प्रकार लक्ष्मण को शांत हुआ देखकर राम और कैकेयी को प्रसन्नता हुई। दशरथ के मन मे लक्ष्मण के वचन सुनकर आशा का जो संचार हुआ था, वह समाप्त हो गया। उन्होंने सोचा था—लक्ष्मण मेरी बात सुधार रहा है। शायद मेरी आन्तरिक आशा सफल हो जाय। मगर जब लक्ष्मण शांत हो गए तब दशरथ ने निराशा के साथ सोचा—राम ने बना बनाया खेल फिर बिगाड़ दिया।

पिता को दुखी देखकर राम उनकी ओर मुड़े। कहने लगे—तात! आपका मुख-कमल क्यों मुरझाया हुआ है? माताजी ने आपकी उदासी का कारण मुझे बतला दिया है और हम दोनों मां-बेटे आपस मे समझ गये हैं, फिर आप उदास क्यों हैं? पुत्र का कर्त्तव्य पिता को धर्म में स्थिर करना भी है। बल्कि उसका यह सर्वोच्च कर्त्तव्य है। अतएव मैं आपसे कुछ प्रार्थना करना चाहता हूं।

तात! मैं यह प्रार्थना करना चाहता हूं कि आपका मुझ पर इतना मोह क्यों है? धर्म के सामने मैं क्या चीज हूँ? असली

वस्तु तो धर्म ही है । थोडी देर के लिए मान लीजिए कि आपकी आन्तरिक अभिलाषा पूरी करने के लिए माताजी की बात न मानी जाय और भरत को राजा न बनाया जाय; मैं स्वयं राजा बन जाऊँ; तो उस अवस्था मे कितना द्रोह होगा ? कदाचित् माता और भाई के साथ द्रोह न हुआ, फिर भी धर्म के साथ तो द्रोह होगा ही। फिर इस तुच्छ बात के लिए धर्म-द्रोह क्यों नहीं करना चाहिए ? मैं आपका पुत्र हूं, फिरे भी ढिठाई करके आप से यह निवेदन करने का दुस्साहस करता हूँ। यों तो सभी लोग पिता-पुत्र का सम्बन्ध मानते है मगर मैं मानता हूँ कि मेरा और आप का सम्बन्ध सांसारिक ही नहीं, धार्मिक भी है। क्या मै आपकी आज्ञा का पालन न करूँ ? अथवा माता को जो वचन दिया है उसे पूर्ण न होने दूं ? मैं आपके सत्य को भग नहीं होने दूँगा। आपका वचन मेरा भी वचन है।

राम अपने अधिकार का राज्य देकर के भी पिता के वचन का पालन करने के लिये तैयार हुए हैं और पिता के वचन को अपना ही वचन मान रहे हैं। इस पर आप लोगों को विचार करना है । आप को अपना दिल टटोलना है। आज संसार में कहां इतनी उदारता, पितृभक्ति और नैतिकता है ? आज के लोग अपने पिता के दस्तखत से भी मुकर जाते हैं और वकील लोग कोई न कोई मार्ग निकाल कर उसकी सहायता करके अनैतिकता को उत्तेजना देते हैं । ऐसा करने वालों

ने राम की कथा का महत्व नहीं समझा।

राम चाहते तो कह सकते थे कि राज्य आपकी निजी सम्पत्ति नहीं है। आपको उसका दान करने का अधिकार ही क्या है ? और जब आपने कैकेयी को वचन दिया था तब मेरा जन्म भी नहीं हुआ था। फिर मैं आपके वचन के कारण राज्य से वंचित कैसे हो सकता हूं ? लेकिन राम आधुनिक कृतघ्न लड़कों के समान नहीं थे। वे कहते हैं कि आपने जो वचन दिया है उससे मैं भी बँधा हुआ हूँ। अब अगर वचनभंग होगा तो धर्म के प्रति द्रोह होगा। मेरा और आपका अस्तित्व धर्म पर ही टिका है। धर्म डूबा तो आप और हम भी डूबे बिना नहीं रहेंगे। साथ ही अगर मैं आपकी आज्ञा अस्वीकार करूँगा तो यह जगत् को उलटा पाठ पढ़ाना होगा। संसार के लोग हँसेंगे और हमारे कुल की पवित्रता खंडित हो जायगी। संसार का समस्त वैभव नाशवान् है और धर्म अविनाशी है। नश्वर वैभव के लिए अविनाशी धर्म का उपहास होने देना उचित नहीं है।

साधारणतया देखा जाता है कि मतलब की बात में लोग लोकापवाद की परवाह नही करते। मगर ज्ञानी जन इस का भी विचार करते हैं। सीता सर्वथा निर्दोष थी, लेकिन लोकापवाद से बचने के लिए, एक धोबी के कहने पर उन्हें वन में भेजना पड़ा। जिन्होंने इतना महान् त्याग किया उन्होंने जगत् को लोकापवाद से बचने की शिक्षा कहकर नहीं, करके

दी है। सीता को वन में छोड़कर राम क्या कम दुखी हुए थे ? मगर लोकापवाद से बचने के लिए उन्होंने वह दुःख धैर्य के साथ सहन किया।

राम कहते हैं–पिताजी ! अगर माता को दिया हुआ वचन पूरा न किया गया तो दुनिया कहेगी कि यह सब कपट की महिमा है। मैं अभी प्रतिज्ञा कर चुका हूं कि भरत को राजगद्दी पर बिठलाऊँगा। अब उस प्रतीज्ञा को भंग करके यदि राज्य ले लूँ तो लोग यही समझेंगे कि वह सब राम की पोपलीला थी। भीतर से वह भी राज्य पर कब्जा जमाना चाहता था। इस प्रकार जगत् में धर्म पर अविश्वास फैल जाएगा। और संसार रसातल मे चला जायगा।

पिताजी ! दिये वचन का पालन न करना कपट होगा। ऐसा करने से माँ के प्रति अन्याय होगा। और हमारे वंश की यह मर्यादा नष्ट हो जाएगी।

रघुकुल रीति सदा चलि आई।
प्राण जाहिं पर वचन न जाई॥

राम वंश की रीति का पालन करने के लिए कहते हैं। इसका यह अर्थ नहीं समझना चाहिए कि पिता अगर रोगी है तो पुत्र को भी रोगी होना चाहिए। अगर पुत्र रोगी न हुआ तो कुल की रीति का भंग हो गया ! कुल की जो परम्परा उस कुल वालो के कल्याण के लिए पूर्वजों ने प्रचलित की है, जिसके सहारे पर उस कुल की उच्चता, धार्मिकता एवं नैतिकता टिकी

रहती है और जिससे दूसरों को भी अच्छी शिक्षा मिलती है, वही परम्परा अनुसरणीय है। उसे भंग नहीं होने देना चाहिए। उसे भंग करना अपने कुल को कलंक लगाना है।

राम ने फिर कहा-तात! आपने इस वंश की मर्यादा का उल्लेख करके माता को वचन दिया था। अब अगर हम उस मर्यादा का पालन नहीं करते तो पापमार्ग को बढ़ाने वाले ठहरते हैं। क्या हमारे लिए यही उचित होगा? आप यह न सोचें कि कैकयी ने रंग मे भंग कर दिया है। माता का इसमे तनिक भी दोष नहीं है। जब माता ने युद्ध में आपकी सहायता की तो आपने वर दिया तो उसे माँगने का उन्हे पूर्ण अधिकार है। मैं सत्य कहता हूं कि इसमे माता का लेश मात्र भी दोष नहीं है। आपको दुःख क्यों होता है? क्या आप मुझमें और भरत में अन्तर समझते हैं? वास्तव मे जो राम है वही भरत है और जो भरत है वही राम है। दाहिनी और बाई आँख में क्या फर्क है? जो सोना दाहिनी आँख से दिखाई देता है वही बाई आँख से भी दिखाई देता है बाई आँख से वह लोहा नजर नहीं आता। इस प्रकार जब दो आँखों में अन्तर नही है तो राम और भरत में क्या अन्तर हो सकता है? हम दोनों को एक ही समझिए। उठिए। धर्म-पालन करने के समय दुखी होना आपको शोभा नहीं देता। धर्म का अपमान मत होने दीजिए। उठकर भरत का राज्याभिषेक कीजिए, जिससे आपके वचन की रक्षा हो, माता की इच्छा सफल हो और मेरी

माख कायम रह सके। भरत को राज्य मिलने पर मैं इस उत्तरदायित्व से बचा रहूँगा तो दूसरा कोई महत्वपूर्ण कार्य करूँगा।

राम के इन विचारों मे कितनी सरलता और समता है? उन्होंने अपने विचारों से विप को भी अमृत बना दिया। इस प्रकार संसार में अनेक परिवर्तन होते रहते है। इसी से कहा है

न जाने संसारे किममृतमयं किं विपमयम् ?

राम के विचार सुनकर आप किस ओर रहोगे? अमृत की ओर या विप की ओर? स्वयं अपने शत्रु न बनकर राम की वाणी पर विचार करो तो बेडा पार हो जायगा।

राम का कथन सुनकर दशरथ से न रहा गया। वे राम से कहने लगे—'राम' तुम्हारा महत्त्व आज वास्तविक रूप मे प्रकट हुआ है। मुझे विश्वास हो गया है कि तुम साधारण मानव नहीं हो तुमसे संसार का कोई महान कल्याण होगा। तुम्हारे परमोच्च और उदारतर विचार ससार का पथप्रदर्शन करेंगे। तुमने इस समय संकट से पार किया है। वत्स! तुम जैसा पुत्र पाकर मैं धन्य हुआ और रघुकुल और ऊँचा उठ गया।

राम की वाणी की उपमा किस वस्तु से दीजाय? राम की तरह आप भी ज़हर को अमृत बनाना सीखो। अगर इतना न कर सको तो कम से कम इतना तो करो कि ज़हर मत बनाओ जो अच्छा काम करता हो उसे प्रोत्साहन दो, अगर

न दे सको तो धिक्कार भी मत दो।

भरत के राज्याभिषेक की तैयारी

अन्त में दशरथ ने मन्त्री को बुलवा कर भरत के राज्याभिषेक की तैयारी करने का आदेश दिया। उन्होंने कहा—मन्त्री, जल्दी करो! जिससे मैं दीक्षा भी ले सकूँ और मेरा वचन भी पूरा हो जाए।

दशरथ अपने मन्त्री को यह आदेश दे ही रहे थे कि उसी समय खबर पाकर भरत वहां आ पहुँचे। उन्होंने दशरथ से कहा—पिताजी, इस समय क्या प्रसंग चल रहा है?

राम-जो चल रहा है, अच्छा ही है। लो, मैं तुम्हें सुनाता हूं? पिताजी ने माता को एक युद्ध के समय वर दिया था। युद्ध मे पिता पर शत्रु टूट पडे थे। माता ने कुशलता के साथ पिता की रक्षा की थी माता की कृपा से ही पिता का जीवन रह सका था। उस समय पिताजी ने प्रसन्न होकर माता को वर देना स्वीकार किया था। माता ने वह वर अब मांग लिया है और पित.जी ने दिया है। बस, यही बात है।

भरत—मगर वह क्या है? क्या मैं यह जानने का अधिकारी नहीं?

राम—क्यों नहीं भाई, तुम अधिकारी क्यों नहीं हो! माता ने तुम्हारे लिए राज्य मांगा है। पिता ने मन्त्री को आज्ञा दे दी है कि भरत के राज्याभिषेक की तैयारी शीघ्र की जाय।

भरत ने मन्त्री को रोक कर कहा—ठहरो। जल्दी मत करो। मुझ से बिना पूछे ही राज्य कैसे ! मै राज्य का अधिकारी नहीं हूँ।

भरत ने दशरथ से कहा—पिताजी, मुझे राज्य नहीं चाहिए। राज्य तो दुःख का घर है। मैं आप से पहले ही कह चुका हूँ कि मुझे आपके साथ संयम ग्रहण करना है। आप स्वय जिस पथ पर अग्रसर होना चाहते हैं, वह अगर सत्य पथ है तो मैं भी उसी पर प्रयाण क्यों न करूँ ? आप जिस राज्य को पाने की तैयारी कर रहे हैं, मुझे उससे वंचित क्यो करते हैं ? संसार के भोगोपभोग मुझे नहीं रुचते। मैं आपके साथ ही मुनिदीक्षा अंगीकार करूंगा। मै त्रिलोकी का राज्य चाहता हूँ। अवध के राज्य से मुझे संतोष नहीं होगा।

दशरथ ने कहा—भरत, तुम्हारे विचार बहुत सुन्दर हैं। संयम का पालन करके अक्षय राज्य प्राप्त करना ही मनुष्य के जीवन का उद्देश्य होना चाहिए। लेकिन अच्छे कार्य के लिए भी उपयुक्त अवसर देखा जाता है। अतएव—

भज तावत्सुखं पुत्र ! सारं मनुजजन्मनः।
नवेन वयसा कान्तः वृद्धः सम्प्रव्रजिष्यसि ॥

अर्थात्—पुत्र ! अभी तुम नवयुवक हो। प्रव्रज्या लेने की उतावली मत करो। यौवन-अवस्था मे मनुष्य-जीवन के सार भूत सुखो का भोग करके वृद्धावस्था मे प्रव्रज्या ग्रहण करना।

भरत—पिताजी, क्यों मुझे वृथा मोह के जाल में फँसाते हैं ? मौत बालक तरुण और वृद्ध में भेद नहीं करती। कौन कह सकता है कि बुढ़ापे तक मैं जीवित रहूँगा ही ? अतएव-

अनुमन्यस्व मां तात नितान्तं जन्मभीरुकम् ।
करोमि विधिनारण्ये तपो निर्वृत्तिकारणम् ॥

अर्थात्—हे तात ! जन्म-मरण के भय से भीत हूं। वन में जा कर मोक्ष-प्राप्ति के लिए विधिपूर्वक तप करने की मुझे अनुमति दीजिए।

दशरथ—प्रिय पुत्र ! तुम्हारे उच्च विचार सुनकर मुझे प्रमोद होता है। वह पिता धन्य है, जिसके पुत्र ऐसे धर्मशील और उदार हृदय हैं। मगर तुम्हे ज्ञात ही है कि तुम्हारी माता ने तुम्हारे लिए राज्य मांगा है। अगर तुम राज्य स्वीकार न करके प्रव्रज्या अंगीकार करोगे तो वह तुम्हारे वियोग-शोक में अपना प्राण दे देगी। क्या अपनी माता को इस प्रकार कष्ट पहुँचाना पुत्र का कर्त्तव्य है ?

राम—भ्रात ! पिताजी ने उचित ही कहा है। अभी तुम्हारी उम्र तपस्या करने योग्य नहीं है। अतएव तुम राज्य स्वीकार कर लो और पिताजी की चन्द्रमा सरीखी निर्मल कीर्ति संसार में फैलाओ। शोक के आवेग में आकर अगर माता ने प्राण त्याग दिये तो कितना अनिष्ट होगा ? तुम सरीखे महाभाग पुत्र की मौजूदगी मे माता की यह दशा

होगी तो संसार क्या कहेगा ?

पिताजी की प्रतिज्ञा का पालन करने के लिये हम लोग अपना जीवन भी निछावर कर सकते हैं। ऐसी दशा में तुम विवेकशाली होने पर भी पिताजी के सत्य की रक्षा करने के लिए राज्य-लक्ष्मी ग्रहण नहीं करते ? पिताजी की कीर्ति अक्षुण्ण रखने के लिए जो शरीर त्याग सकता है वह राज्य ग्रहण न करे, यह आश्चर्य की बात है !

भरत ! एक बात मैं स्पष्ट कर देता हूँ। तुम्हें मेरी ओर से किसी किस्म की आशंका नहीं रखनी चाहिए। मैं अयोध्या का परित्याग कर दूँगा और तुम इच्छानुसार स्वतन्त्रता पूर्वक राज्य करना। मैं कहीं ऐसी जगह निवास करूँगा कि किसी को पता भी नहीं चलेगा। मेरी ओर से तुम्हें कोई बाधा नहीं होगी।

गुरुजनों की आज्ञा मानकर गृहस्थधर्म का पालन करते हुए प्रजा की रक्षा करो। इस समय कुल की कीर्ति कायम रखने का यही उपाय है।

भरत की अस्वीकृति

राम का कथन सुनकर भरत के हृदय मे उथल-पुथल होने लगी। वह कहने लगे—मैं तो पहले ही समझ चुका हूं कि संसार का ऐश्वर्य विपत्ति की जड़ है। इधर अयोध्या का राज्य मिलेगा, उधर ज्येष्ठ भ्राता का वियोग होगा ! जिस राज्य

के मंगलाचरण में ही ऐसा घोर अनर्थ मौजूद है, आगे चलकर उस से क्या बुराइयाँ पैदा न होगी ! मैं राजा बनूँगा और मेरे ज्येष्ठ भ्राता जंगलों में भटकते फिरेंगे ! धिक्कार है ऐसे राज्य को ! क्या यही कुल की मर्यादा है ? कुल की मर्यादा का लोप नहीं होने देना है तो राम को ही राजसिंहासन पर बैठना चाहिए राम ही राजा होने के योग्य हैं और वही अधिकारी है। मैं उनके पीछे छत्र लेकर खड़ा होऊँगा, शत्रुघ्न उन पर चँवर ढोरेगा और लक्ष्मण उनके मन्त्री होंगे। तभी अवध का राज-सिंहासन सुशोभित होगा।

यह बात तो जगत्-प्रसिद्ध है कि बड़ा भाई राजा होता है। फिर इस प्रसिद्ध बात के विरुद्ध गड़बड़ क्यों मचाई जा रही है ? राम को राज्य देने की तैयारी हो चुकी है, सब जगह ढिंढोरा पिट चुका है और अब मुझे राज्य दिया जाय, यह भी कोई बात है !

इसके अतिरिक्त, मैंने कब राज्य की अभिलाषा की थी ? माताजी को क्या पड़ी थी कि उन्होंने मेरे लिए राज्य माँगा ?

राम विरोधी हृदय तें प्रकट कीनी विधि मोहिं,

मुझे इस बात का बड़ा दुःख है कि मेरा जन्म राम-विरोधी हृदय से हुआ है यह मेरा दुर्भाग्य है, लेकिन माता की बात मान कर कुल और धर्म की मर्यादा का उल्लंघन करना किसी भी प्रकार उचित नहीं है। कुल की मर्यादा का

प्रत्येक परिस्थिति में पालन होना चाहिये ।

भरत की बात सुनकर लक्ष्मण प्रयत्न करके भी अपने आपको शांत न रख सके। कहने लगे—देखिए, भरत भी वही कहता है जो मैंने कहा था। आखिर जो उचित है वह अनुचित कैसे हो सकता है ?

भरत फिर कहने लगे—माता पूजनीया अवश्य है पर पिता के पीछे। वंश पिता से ही चलता है। माता ने मुझे जन्म दिया है परन्तु पिता के प्रति मेरा जो धर्म है उसे मैं नहीं भूल सकता। इसलिए राज्य तो राम को ही मिलेगा। अगर राम राजा न बनाये गये तो लोगों में पिताजी की हँसी होगी। लोग कहेंगे स्त्री की बातों में आकर जो करना चाहिए था उससे उलटा कर बैठे।

भरत की उक्तियाँ भी पोच नहीं है। उसके कथन में औचित्य है, सत्य है और विनम्रता भी है। उसका तर्क सहज ही खंडित नहीं किया जा सकता। महाराज दशरथ, भरत की उक्ति सुनकर फिर दुविधा में पड़ गए। सोचने लगे—यह फिर नया विघ्न उत्पन्न हो गया ? कैकेयी, राम और लक्ष्मण ने भरत को राज्य देना स्वीकार कर लिया तो भरत राज्य लेना स्वीकार नहीं करता। अब क्या करना चाहिए ?

इस प्रकार विचार कर दशरथ ने कहा—वत्स भरत ! क्या तुम मुझे प्रतिज्ञा से पतित करना चाहते हो ? मैं किसी साधारण कारण से राम का राज्य तुम्हें नहीं सौंप रहा हूं। मैं प्रतिज्ञा

के बंधन मे बंधकर ही ऐसा कर रहा हूं रघुकुल की यही रीति है कि प्राण चाहे जाए पर प्रण न जाए। तुम्हारी मां मेरा सारथी है।

ग्रंथकारों ने बुद्धि को आत्मा का सारथी बताया है उन्होंने शरीर को रथ और इंद्रियों को जोड़ा कहा है। आत्मा शरीर रूपी रथ में बैठा हुआ है। बुद्धि सारथी बनकर रथ को चला रही है। और मुक्ति की ओर ले जाती है। मुक्ति की साधना क लिए ही शरीर-रथ मिला है इस अनुपम रथ को पाकर भी अगर कोई मुक्ति की ओर जाने के बदले नरक के मार्ग पर चलता है तो वह रथ से विपरीत काम लेता है।

दशरथ कहते हैं—मेरा रथ और रथ के घोडे अस्तव्यस्त हो रहे थे। उस समय तुम्हारी माता ने सारथी बनकर मेरी रक्षा की थी। बुद्धि जब बिगड़ जाती है तो वह मोक्ष में पहुँचाने के बदले नरक में पहुँचा देती है, उसी तरह मेरे रथ के घोडे बिगड़ कर भाग रहे थे और रथ टूटने ही वाला था मेरे रथ की धुरी टूट भी गई थी उस समय तुम्हारी माता ने सारथी बनकर मेरी बड़ी सहायता की और मेरा रथ पार लगाया। उसी की बदौलत मैं शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर सका था। और अपने प्रणों की रक्षा कर सका था। तुम्हारी माता के इस कार्य के उपलक्ष्य में मैंने वर दिया था। भोग-विलास या कामान्धता के वश होकर वर नहीं दिया था। हम दोनों ही उस वचन में बद्ध है। ऐसी स्थिति में मेरा वचन-भंग करना

तुम्हारे लिए क्या उचित होगा ?

भरत कहने लगे-यह सब ठीक है, पर मैं भी सूर्यवंशी हू-इक्ष्वाकु कुल में मैंने जन्म लिया है। मैं अपनी संयम लेने की प्रतिज्ञा किस प्रकार तोड सकता हू ? मै माता से प्रार्थना करूँगा कि वे इस वर के बदले मे और कुछ माग लें। अगर उन्हे राज्य ही मांगना है तो लक्ष्मण या शत्रुघ्न के लिए मांगें। मै इस खटपट मे नहीं पड़ना चाहता। मै आपके साथ दीक्षा लूँगा।

भरत का पक्का इरादा सुन कर राम को बडी चिन्ता हुई। उन्होंने सोचा-भरत अड़ गया है। अब किस प्रकार बिगडी बात सुधारी जाय ?

हालांकि राम के लिए यह बड़ा अच्छा मौका था। वह कह सकते थे कि राज्य देने की मेरी इच्छा होने पर भी अगर भरत नहीं लेता तो मैं क्या करूँ ? मगर राम जो कुछ कह रहे थे, सच्चे मन से कह रहे थे। उनके कथन में तनिक भी दिखावा नहीं था। अतएव उन्होंने भरत से कहा-भरत, तुम यह क्या कह रहे हो ? तुम राज्य के लोभी नहीं हो, यह मैं जानता हूँ। अगर तुम्हारे हृदय में राज्य का लोभ होता तो तुम दोषी कहला सकते थे। मगर यह सोच कर राज्य स्वीकार कर लो कि वृद्ध पिताजी के आत्मकल्याण मे विघ्न नहीं होना चाहिए। तुम्हें राज्य देने मे मेरी पूर्ण सहमति है। मैं अपनी ओर से तुम्हे आश्वासन दे ही चुका हूं। जैसे तुम, वैसे

हम। हम में और तुम मे क्या अन्तर है ? भाई, पिता के श्रेयम में विघ्न डालने वाला सुपुत्र नहीं कहलाता।

राम-चरित्र कितना पावन है! उसमे कैसी सुन्दर और कल्याण कर शिक्षाएँ भरी हैं! भेदभाव के विरुद्ध यह कितना अच्छा आदर्श है? इसी से कहते हैं—

शिक्षा दे रही जी हमको
रामायण अति प्यारी,
राज-तख्त को गेंद बनाकर
खेलन लगे खिलाडी!
इधर राम उधर भरत ने,
दोनों (ने) ठोकर मारी ॥शिक्षा०॥

राम और भरत के लिए राज्य भी एक खेल की चीज़ बन रही है! गेंद खेलने वाला गेंद को ठोकर मार कर अपने सामने वाले की ओर भेजता है और सामने वाला भी इसी तरह ठोकर लगा कर दूसरे की ओर भेज देता है। गेंद दोनों ओर से ठुकराई जाती है और इसी में खेल का मज़ा है। अगर एक आदमी गेंद पकड कर बैठ जाय और दूसरे को न दे तो खेल होगा ही नहीं। यहां राम और भरत राज्य रूपी गेंद को ठुकरा रहे हैं राम कहते हैं—भरत को राज्य लेना चाहिए और भरत कहते हैं—नहीं, मुझे नहीं, राम को राज्य अंगीकार करना चाहिए।

पाठक! राम और भरत के साथ अपनी तुलना करो। क्या

इस प्रकार की उदारता तुम्हारे अन्तःकरण में है ? तुम तुच्छ से तुच्छ चीज को अपने अधिकार में लेने के लिए भाई से झगड़ते तो नहीं हो ? जिस देश में राम और भरत का ऊँचा आदर्श है उस देश के निवासी भाइयों में आपस का कलह होना बड़े खेद की बात है ! ऐसा महान आदर्श भारत को छोड कर अन्यत्र कहाँ मिल सकता है ?

राम कहते हैं—पिताजी के दिये वचन का पालन करना हमारा और तुम्हारा कर्त्तव्य है। पिता की आज्ञा न मानना अनुचित है। इसलिए हे भरत ! तुम इन्कार मत करो। राज्य स्वीकार कर लो।

भरत—पिता की आज्ञा मानकर राज्य त्याग देने के कारण आप विनीत ठहरते हैं और मैं आज्ञा न मानने से अविनीत सिद्ध होता हूं लेकिन आपकी बात कुछ और है। पिता की आज्ञा मानने से आपको राज्य का त्याग करना पड़ता है किन्तु राज्य लेकर मैं तो एकदम भिखारी बन जाऊँगा ! मुझे अपना हृदय ही कुचलना होगा, अतएव कृपा करके आप यह आग्रह मत कीजिए।

इस प्रकार कहते-कहते भरत की आंखों से आसू बहने लगे। उनका हृदय गद्‌गद हो गया। राम के चरण छूकर और हाथ जोड़कर कहने लगे-भ्राता ! आप मेरे पिता, माता, भ्राता और रक्षक हैं। मै आपको पिता से भी अधिक सम-झता हूँ। मै आपके सामने अधिक क्या कहूँ। सौ बात की

एक बात यही है कि आपके होते में राजसिंहासन पर नहीं बैठ सकता। मै आपको उस पर बैठा देखना चाहता हूँ। आप ही दया करके उसे स्वीकार करें। माता ने वर मांग लिया और पिता ने दे दिया। मैं राज्य पा चुका हूँ। अब मैं अपना राज्य आपके चरणों मे अर्पित करता हूँ। मेरी यह तुच्छ भेंट स्वीकार करके आप राजसिंहासन को अलंकृत कीजिए। राज्य तो आपको ही स्वीकार करना होगा। मै राज्य नहीं करूँगा।

भरत की बाते सुनकर कैकेयी हैरान थी। वह सोच रही थी-मेरा पुत्र भरत तो विचित्र मूर्ख है! मैं पति के सामने, राम-लक्ष्मण और अवध की प्रजा के सामने बुरी बनी, मैंने इतना प्रपंच किया, अब यह कहता है कि मैं राज्य नहीं लूँगा। यह लड़का बड़ा अभागा जान पड़ता है।

कैकेयी की आँखे देखकर राम ने समझ लिया कि भरत की बाते माता को रुचिकर नहीं है। माता अब भी भरत को ही राजा बनाना चाहती है और भरत राज्य लेने को तैयार नहीं होता। बड़ी विचित्र परिस्थिति है! अब समस्या किस प्रकार हल की जाए?

राम की वनगमनप्रतिज्ञा

जब कोई विकट समस्या सामने हो और उसके सुलझाने का उपाय न सूझता हो, तब कोई न कोई उपाय खोज

निकालना ही पंडिताई है। राम ने इस समस्या का हल सोच लिया। उन्होंने मन ही मन कहा-ठीक तो है, भरत से मैं बड़ा हूँ। मेरे सामने वह राजसिंहासन पर कैसे बैठ सकता है! और जब तक माता की इच्छा पूरी न हो, तब तक वह भी किस प्रकार संतुष्ट हो सकती है? भरत के राजा न होने पर उनके माँगे वर का क्या फल हुआ? पिताजी के दिये वचन का भी कैसे पालन हो सकता है? मैं ने जो स्वप्न देखा था, उसके अनुसार जगत् के कल्याण का अवसर आ गया है। यही अनुपम अवसर है। यह सोच कर राम ने कहा-भरत! तुम्हारा कहना सही है। मैं तुम्हारी कठिनाई को समझता हूं और उसे दूर करने का उपाय भी मैं किये देता हूं।

राम ने दशरथ से कहा-पिताजी! भरत की बात ठीक है। मेरे रहते राज्य ले लेने से उसे कलंक लगेगा। अतएव मुझे अभी वन जाने की आज्ञा दीजिए। मेरी अनुपस्थिति में भरत राज्य लेगा तो उस पर कलंक नहीं आएगा, माता का मनोरथ पूरा हो जाएगा और आपका वचन भी रह जाएगा। इसमें तनिक भी संकोच मत कीजिए। इस उलझन को सुलझाने का और कोई इससे अच्छा उपाय नहीं है। इससे मेरा भी कल्याण होगा और मैं अपना महान कर्त्तव्य पूरा कर सकूँगा।

भरत सोचने लगा-'चौबेजी छब्बे बनने चले और दुबे ही रह गए! मैं तो यह चाहता हूँ कि राम राज्य ग्रहण करें और राम स्वयं वन जाने का प्रस्ताव उपस्थित करते हैं! कैसी

मुसीवत है !

दशरथ सोचते हैं-'धन्य राम ! तेरा-सा सपूत बेटा पाकर मैं निहाल हो गया। जिसका शरीर मक्खन-सा कोमल है वह जंगलों में भटकता फिरेगा और वह भी अपने भाई को राजा बनाने के लिए !

जिनकी लगन राम से लगी है उनकी बात और है तथा जिनकी लगन हराम से है उनकी बात और है। एक ही वस्तु को देखकर राम से भी लगन लग सकती है और हराम से भी। कहावत है—

राम नाम जपना ।
पराया माल अपना ॥

इस तरह का जपना राम का जपना है या हराम का जपना है ? जो लोग हराम के लिए राम से प्रीति करते हैं, समय आने पर वे खराब भी हो जाते हैं। ज्यों ही उन्हें हराम नहीं मिला कि राम से उनका प्रेम टूटा !

कैकेयी को पहले राम पर प्रीति थी पर हराम से अर्थात राज्य से प्रीति होते ही राम की प्रीति टूट गई। जो हराम को ही सर्वस्व समझेगा वह राम की प्रीति से वंचित हो जायगा।

राम फिर कहने लगे—'वास्तव में भरत का कहना यथार्थ है। वह मेरे रहते राज्य नहीं ले सकता। मेरे लिए भी यह उचित न होगा कि भरत को राज्य देकर मैं घर में बैठा रहूँ। राजा, प्रजा की सेवा के बदले में ही राज्य का टुकड़ा खा सकता

है अगर मैं प्रजा की सेवा किए बिना ही टुकड़े खाऊँगा तो वह हराम का खाना होगा। अतएव मैं अयोध्या में न रह कर किसी वन में जाता हूँ और वन-फल खाकर अपना निर्वाह करूँगा। जो लोग पाप में पड़े हुए हैं, उन्हें पाप से बचाऊँगा। भरत यहाँ का काम करेंगे। मैं जंगल का काम करूँगा। भरत को राज्य देकर मैं यहाँ रहा तो भरत पर प्रजा का प्रेम नहीं उमड़ेगा और प्रजा मेरी ओर ही झुकी रहेगी।

राम के इस अद्भुत त्याग की बात ने दशरथ के हृदय को ऐसी गहरी ठेस पहुंचाई कि वे उसे न सहन कर सके। घोर हार्दिक पीड़ा के कारण उन्हें मूर्छा आ गई। वे पृथ्वी पर गिर पड़े। भरत अपने आंसू न रोक सके। उनकी बुद्धि मानो निश्चेष्ट हो गई।

राम ने सोचा—इसी अवसर पर मेरा चला जाना उचित है। पिताजी की मूर्छावस्था में ही अगर मैं न चला गया तो इनका मोह दूर न होगा। जब तक मैं यहां रहूंगा कोई निर्णय न हो पायगा।

किसी बालक की थाली में माता ने भूल से रस की कटोरी रख दी। बालक का स्वास्थ्य देखते हुए रस खाना उसके लिए अहितकर है। मगर बालक का रस पर बहुत मोह है। वह थाली में रस आने पर छोड़ नहीं सकता। ऐसी हालत में माता क्या करती है? बालक जब इधर-उधर देखने लगता है तो चुपके से वह रस की कटोरी उठा लेती है। इसी तरह

राम ने सोचा—पिता और भरत का मोह मुझे वन नहीं देगा अतएव इसी समय मेरा हट जाना योग्य है।

इस प्रकार सोचकर राम वहां से चलने लगे। तब व जो सरदार आदि उपस्थित थे, उन्होंने कहा—आप पधा तो हैं, मगर महाराज को समझा कर पधारिए। कहीं ऐस न हो कि इसी दशा मे महाराज की मृत्यु हो जाय। हृदय में कोई साधारण चोट नहीं है।

सरदारों की बात सुनकर राम रुक गए। उन्होंने दश को उठाकर कहा—पिताजी, आप इतने दुखी क्यों होते हैं सत्पुरुष सत्य को पालने के समय कहीं मूर्छित होते हैं! मेरा वन जाना मंगलमय है या अमंगलमय? वन-वास में हानि ही क्या है? वह तो परम सौभाग्य से मिलता है। फिर मै तो धर्म का पालन करने के लिए—सत्य की रक्षा के लिए वन जा रहा हूं। इसमे अमंगल क्या है? आप प्रसन्नतापूर्वक म आज्ञा दीजिए। चिन्ता मत कीजिये। जिस प्रकार क्षत्रिय अ वीर पुत्र को युद्ध में जाने की सहर्ष अनुमति देते है और व्य पारी अपने पुत्र को व्यापार के निमित्त विदेश मे जाने प्रसन्नतापूर्वक आज्ञा देते हैं, उसी प्रकार आप प्रसन्न होकर मुझे वन में जाने की अनुमति दीजिए।

दशरथ की मूर्छा हटी और राम ने सोचा—'मै यहा व रहा तो संभव है पिताजी फिर मोहवश मूर्छित हो जाएँ। यह सोचकर राम वहां से चल दिये।